X
41

महाकवि केशव की—

कवि प्रिया

महाकवि केशवदास

की

कवि-प्रिया

[सटीक]

सगुन पदारथ अर्थयुत, सुबरनमय सुभसाज।
कंठमाल ज्यों कविप्रिया, कंठ करो कविराज॥

टीकाकार

श्री लक्ष्मीनिधि चतुर्वेदी, एम० ए०

साहित्य रत्न, शास्त्री, हिन्दी प्रभाकर, कविरत्न

आचार्य

मधुसूदन-विद्यालय-इंटर कालेज,

सुलतानपुर

प्रकाशक

मातृ-भाषा-मन्दिर, दारागंज, प्रयाग

प्रथमबार] सन् १९५२ [मू० ४॥)

व्यवस्थापक
पं० हर्षवर्द्धन शुक्ल
मातृ-भाषा-मन्दिर,
दारागंज, प्रयाग।

मुद्रक
कृष्ण स्वरूप सक्सेना
कुमार प्रिंटिंग वर्क्स
दारागञ्ज-प्रयाग।

राजकीय संग्रहालय पुस्तकालय, लखनऊ
X
पुस्तक संख्या 41
State Museum Library, Lucknow

दो शब्द

राष्ट्र भाषा के पद पर प्रतिष्ठित हो जाने के बाद हिन्दी के प्राचीन साहित्यिक ग्रंथों का पठन-पाठन परमावश्यक हो गया है। प्राचीन ग्रंथ प्रायः ब्रजभाषा में हैं, इससे आज कल की हिन्दी के वातावरण में उनका समझना जटिल हो गया है। उनमें केशवदास को समझना तो और भी कठिन है। उनके लिए प्रसिद्ध है कि "कवि को देन न चहै बिदाई। पूछै केसव की कविताई"। खिझकर लोग उनको "कठिन काव्य का प्रेत" भी कहते हैं

तुलसी, सूर, कबीर, बिहारी और देव आदि महाकवियों के ग्रंथों की टीकायें मिलती हैं, पर अभी तक केशवदास के ग्रंथों की कोई प्रामाणिक टीका उपलब्ध नहीं थी, इससे भारतीय विश्व-विद्यालयों और अन्य शिक्षण-संस्थाओं के विद्यार्थियों और अध्यापकों को भी उनकी दुरूह कविता का अर्थ समझने में बड़ी कठिनाई पड़ती थी। हर्ष की बात है कि स्थानीय मधुसूदन विद्यालय इंटर कालेज के आचार्य पं० लक्ष्मीनिधि चतुर्वेदी, एम० ए०, शास्त्री, साहित्य-रत्न, हिन्दी-प्रभाकर, कविरत्न ने यह कमी पूरी कर दी है। मैंने उनकी लिखी टीका देखी है। टीका अच्छी और उपयोगी है। मूल पाठ में कहीं-कहीं अशुद्धियाँ रह गई हैं। अगले संस्करण में शुद्ध और बहुत ही प्रामाणिक पाठ देना चाहिये।

रामनरेश त्रिपाठी

बसंत निवास सुलतानपुर,
२८-९-५२

महाकवि केशवदास

[१६१८-१६७४]

[संक्षिप्त परिचय]

अन्य महाकवियों की भाँति महाकवि केशवदास जी के जीवन-चरित्र में अनुमान से काम नहीं लेना पड़ता, क्योंकि उन्होंने कविप्रिया में अपना विस्तृत परिचय स्वयं ही दिया है। यह सनाढ्य ब्राह्मण थे। उनका गोत्र भारद्वाज और अल्ल 'मिश्र' थी। उनके पूर्वज ब्रजमण्डल के डीग कुम्हेर नामक स्थान के निवासी थे। ओरछा के संस्थापक राजा रुद्रप्रताप के समय उनके पितामह कृष्णदत्त मिश्र ओरछा में आकर बस गये। उन्हें राजा रुद्रप्रताप ने पुराण-वृत्ति पर नियुक्त किया था। राजा रुद्रप्रताप के उत्तराधिकारी मधुकरशाह हुए जिन्होंने इनके पिता काशीनाथ मिश्र का बड़ा सम्मान किया। वह उन्ही के दरबार में रहते थे। केशवदास जी के दो भाई और थे। बड़े बलभद्र मिश्र और छोटे कल्याणदास। मधुकर शाह के बाद उनके जेष्ठ पुत्र राम शाह ओरछा की गद्दी पर बैठे। उनके आठ भाई थे, जिनमें इन्द्रजीत पर उन्हें अधिक विश्वास था। राज्य का सारा भार उन्होंने इन्हीं पर डाल रखा था। राज्य की देख-भाल यही करते थे। इन्हीं इन्द्रजीत ने महाकवि केशवदास जी का बड़ा सम्मान किया और २१ ग्राम भेंट में दिए। वह इन्हें अपना गुरू मानते थे। इसी नाते राजा रामशाह भी इन्हें आदर की दृष्टि से देखते थे।

केशवदास जी बड़े स्वाभिमानी तथा निस्पृह थे। अपनी निस्पृहता के दो उदाहरण उन्होंने 'कविप्रिया' में दिए हैं। एक बार जब यह राजा इन्द्रजीत के साथ तीर्थ यात्रा को गये, तब उन्होंने प्रयाग में इनसे

कुछ मांगने को कहा तो इन्होंने केवल यही मांगा कि 'आपकी कृपा के सिवा मुझे और कुछ न चाहिए। 'आप जैसी कृपा मुझपर करते आए हैं, वैसी सदैव करते रहिए।' दूसरी बार जब यह बीरबल महाराज के यहां गये, तब उन्होंने भी कुछ मांगने के लिए कहा। तब भी इन्होंने धन की कामना नही की और केवल यहीं कहा कि 'आपके दरबार में मुझे कोई न रोके।'

इनका कुल विद्वानों का कुल था। इनके सभी पूर्वज संस्कृत के प्रकांड पंडित थे। इनके एक पूर्वज भाऊराम ने वैद्यक के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'भाव प्रकाश' की रचना की थी। पिता काशीनाथ मिश्र ने ज्योतिष की प्रसिद्ध पुस्तक 'शीघ्रबोध' लिखी।

इन्होंने कुल मिला कर नौ ग्रन्थों की रचना की जिनके नाम (१) रामचन्द्रिका (२) कविप्रिया (३) रसिक प्रिया (४) विज्ञान गीता (५) रत्नबावनी (६) वीर सिंह देव चारित्र (७) जहांगीर जस चन्द्रिका (८) नख-शिख तथा (९) राम अलंकृत मंजरी हैं। इनमें से अन्तिम दो पुस्तकें प्राप्य नहीं है। शेष सात पुस्तकों में से 'रामचन्द्रिका', 'कविप्रिया, तथा रसिक प्रिया एवं विज्ञानगीता को विशेष प्रसिद्धि प्राप्त हुई।

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या	पृष्ठ संख्या
१—गणेश वन्दना	२—नृपवंश वर्णन
२—ग्रन्थ रचना काल	१२—कवि वंश वर्णन
१८—शब्द विरोधी वधिर	१५—काव्य दूषण
१९—छन्द विरोधी पंगु दोष	२०—अर्थ हीन मृतक दोष
२१—गनागन फल वर्णन	२२—गण देवता वर्णन
२३—द्विगुण वर्णन	२५—गणा गण के उदाहरण
२६—गुरु लघु भेद वर्णन	२८—हीन रस दोष
३५—कवि भेद वर्णन	३६—कवि रीति वर्णन
३८—चांदनी के सम्बन्ध झूठ वर्णन	३९—कवि विनय वर्णन
४०—सोलह शृंगार	४३—काव्यालंकार
४४—श्वेत वर्णन	४६—जरा (वृद्धावस्था) वर्णन
४८—पीत वर्णन	४९—श्याम वर्णन
५१—अरुण वर्णन	५३—धूम्र वर्णन, नील वर्णन
५४—मिश्रित वर्णन, (श्वेत और काला)	५६—श्वेत और पीत वर्णन,
	६०—कुटिल वर्णन
५८—वाएर्य वर्णन	६१—त्रिकोण वर्णन
६२—सुवृत्त वर्णन	६३—तीक्ष्ण और गुरु वर्णन
६५—कोमल वर्णन	६६—कठोर वर्णन
६७—निश्चल वर्णन	६८—चंचल वर्णन
६९—सुखद वर्णन	७०—दुखद वर्णन
७१—मगद वर्णन	७२—शीतल वर्णन
७३—नम्र वर्णन	७४—सुरूप वर्णन
७५—क्रूर स्वर वर्णन	७६—सुस्वर वर्णन
७७—मधुर वर्णन	७७—अबल वर्णन

पृष्ट संख्या	पृष्ट संख्या
१७७—अचल वर्णन	७८—चलिष्ट वर्णन
७९—सत्यभूठ वर्णन	८१—मंडल वर्णन
८२—अगति सदागति वर्णन	८४—गणेशजी का दान वर्णन
८५—महादेव का दान वर्णन	८५—विधि का दान वर्णन
८६—गिराका दान वर्णन	८७—सूर्य का दान,
८८—रामचन्द्र का दान वर्णन	८९—राजा व लका दान वर्णन
९०—हरिश्चन्द्र का दान वर्णन	९०—अमर सिंह का दान वर्णन
९१—बीरबल का दान वर्णन	९२—विभीषण का दान वर्णन
९३—भू म-भूषण वर्णन	९४—नगर वर्णन
९५—वन वर्णन	९६—बाग वर्णन
९७—गिरि वर्णन	९८—आश्रम वर्णन
१००—सरिता वर्णन	१०१—तड़ाग वर्णन
१०२—समुद्र वर्णन	१०३—सूर्योदय वर्णन
१०५—चन्द्रोदय वर्णन	१०६—षट् ऋतु वर्णन-बसन्त
१०८—ग्रीष्म वर्णन	१०९—वर्षा वर्णन
१११—शरद वर्णन	११२—हेमन्त वर्णन
११४—शिशिर वर्णन	११६—श्रीभूषण वर्णन,
११८—राज पत्नी वर्णन	११९—राज कुमार वर्णन
१२०—पुरोहित वर्णन	१२१—दलपति वर्णन
१२२—दूत वर्णन	१२३—मंत्री वर्णन
१२४—मंत्री मति वर्णन	१२५—प्यान वर्णन
१२७—हय वर्णन	१२८—गज वर्णन
१२९—संग्राम वर्णन	१३०—आखेट वर्णन
१३२—जल केलि वर्णन	१३४—विरह वर्णन
१३७—स्वयंबर वर्णन	१३८—सुरति वर्णन

पृष्ट संख्या	पृष्ट संख्या
१४०—विशिष्टालंकार वर्णन	१४१--स्वभाव. रूप वर्णन
१४२—गुण वर्णन, विभावना	१४३--विभावना दूसरी
१४४—हेतु, स्वभाव	१४५--अभाव हेतु,
१४६—विरोध	१४७—विरोधाभास लक्षण
१४९—विशेष	१५२—उत्पेक्षा
१५५—आक्षेपालंकार,	१५६—वर्तमान प्रतिषेध,
१५७—अधैर्याक्षेप	१५८—धैर्या क्षेप
१५९—संसया क्षेप	१६०--मरणा क्षेप
१६१—आशिषा क्षेप	१६२--धर्मा क्षेप
१६३--उपाया क्षेप, शिक्षा क्षेप	१६४--चैत्र, वैशाख वर्णन
१६५—जेठ वर्णन	१६६—अषाढ़वर्णन, सावनवर्णन
१६७—भादो वर्णन, कुवार वर्णन	१६८—कार्तिक वर्णन
१६९—मार्ग शीर्ष वर्णन, पूस वर्णन	१७० – माघ वर्णन, फागुन वर्णन
	१७२ – क्रम अलंकार
१७४ – गणना अलंकार	१८१ – अशिषालंकार
१८२ – प्रेमालंकार	१९२ – श्लेषअलंकार, अभिन्नपद
१९३ – भिन्नपद श्लेष	१९४ – उपमा श्लेष
१९५ – श्लेष के अन्यभेद, अभिन्न क्रिया श्लेष	
१९६ – भिन्न क्रिया श्लेष	१९७ – विरुद्ध कर्मा श्लेष
१९८ – नियम श्लेष	१९९ – विरोधी श्लेष, सूक्ष्म अलंकार
२०० – लेशालंकार	
२०१ – निदर्शना	२०२ – ऊर्जालंकार
२०३ – रसवत अलंकार	२०४ – वीर रसवत
२०५ – रौद्र रसवत	२०६ – करुणा रसवत
२०७ – भयानक रसवत	२०८ – अद्भुत रसवत

पृष्ठ संख्या — पृष्ठ संख्या

२१० — हास्य रसवत
२११ — शान्त रसवत
२१२ — अर्थान्तरन्यासके चारभेद
२१८ — व्यतिरेक
२१९ — युक्त व्यतिरेक
२२० — सहज व्यतिरेक,
२२३ — उक्ति अलंकार
२२५ — अन्योक्ति
युक्ति अलंकार के भेद
२२६ — व्याधि करणोक्ति
२२९ — विशेषोक्ति
२३२ — सहोक्ति
२३७ — अमित अलंकार
२३९ — पर्यायोक्ति
२४२ — समाहित अलंकार
२४३ — सुसिद्धालंकार
२४५ — प्रसिद्धालंकार, विपरीतालंकार
२४७ — अथरुपक
२४८ — रुपक के भेद, अद्भुत रुपक
२४९ — विरुद्ध रुपक
२५० — रुपक रुपक
२५१ — दीपकअलंकार, दीपकके भेद
२५२ — मणि दीपक
२५३ — माला दीपक
२५५ — प्रहेलिकाअलंकार,
२५६ — प्रभाकर मंडल वर्णन
२५८ — परिवृत्तालंकार
२६१ — उपमालंकार.
२६२ — संशयोपमा, हेतूपमा
२६३ — अभूतोपमा
२६४ — अद्भुतोपमा
२६५ — विक्रियोपमा
२६६ — दूषणोपमा
२६७ — भूषणोपमा
२६९ — मोहोपमा
२७० — नियमोपमा
२७१ — गुणाधिकोपमा
२७२ — अतिशयोपमा
२७३ — उत्प्रेच्छितोपमा
२७४ — श्लोषोपमा
२७५ — धर्मोपमा
२७६ — विपरीतोपमा
२७७ — निर्णयोपमा
२७८ — लाक्षणिकोपमा
२७९ — असंभवितोपमा
२८० — विरोधोपमा
२८१ — मालोपमा
२८२ — परस्परोपमा

इसे सत्त्व-गुण का सार या सत्य की शुभसत्ता या सिद्धियों की ख्याति अथवा सुबुद्धि की वृद्धि मानें। अथवा ज्ञान की गरिमा या विवेक का महत्त्व अथवा दर्शनशास्त्र का दर्शन ही समझें। या पुण्य का प्रकाश या वेदविद्या की शोभा अथवा (केशवदास कहते हैं कि) संसार में यश का निवासस्थान मानें। इसे कामदेव को मारनेवाले (श्रीशिव जी) के पुत्र (श्री गणेश जी) के मुख का दाँत मानें या विघ्नों को नष्ट करने का उपाय समझें।

ग्रन्थ-रचना-काल

दोहा

प्रगट पञ्चमी को भयो, कवि-प्रिया अवतार।
सोरह से अट्ठावनो, फागुन सुदि बुधवार ॥४॥
नृप कुल बरनौ प्रथम ही, अरु कवि केशव वंश।
प्रगट करी जिन कवि-प्रिया, कविता को अवतंश ॥५॥

संवत् १६५८ में फालगुन सुदि पंचमी बुद्धवार को कवि प्रिया का आरंभ किया गया है। सबसे पहले इसमें राजवंश का वर्णन किया गया है। इसके बाद केशव कवि के वंश का वर्णन है जिन्होंने कविता की शोभा इस 'कविप्रिया' की रचना की है।

नृपवंश वर्णन

ब्रह्मादिक की विनय ते, हरण सकल भुविभार।
सूरजवंश करयो प्रगट, रामचन्द्र अवतार ॥६॥
तिनकेकुल कलिकालरिपु, कहि केशव रणधीर।
गहरवार विख्यात जग, प्रगट भये नृप वीर ॥७॥
करण नृपति तिनके भये, धरणी धरमप्रकास।
जीति सबै जगती करयो, वाराणसी निवास ॥८॥
प्रगट करणतीरथ भयो, जगमें तिन के नाम।
तिनके अर्जुनपाल नृप, भये महोनी ग्राम ॥९॥

गढ़कुँड़ार तिनके भये, राजा सोहनपाल।
सहजकरण तिन के भये, कहि केशव रिपुकाल ॥१०॥
राजा नौनिकदे भये, तिन के पूरणसाज।
नौनिकदे के सुत भये, पृथुज्यों पृथ्वीराज ॥११॥
रामसिंह राजा भये, तिन के शूर समान।
राजचन्द्र तिनके भये, राजा चन्द्र प्रमान ॥१२॥
राय मेदिनीमल भये, तिन के केशवदास।
अरिमद मरदन मेदिनी, कीन्हों धरम प्रकास ॥१३॥
राजा अर्जुनदे भये, तिन के अर्जुन रूप।
श्रीनारायण को सखा, कहैं सकल भुविभूप ॥१४॥
महादान षाड़श दये, जीती जग दिशिचारि।
चारौ वेद अठारहौ सुने पुराण विचारि ॥१५॥
रिपुखण्डन तिन के भये, राजा श्री मलखान।
युद्ध जुरे न मुरे कहूँ, जानत सकल जहान ॥१६॥
नृप प्रतापरुद्र सु भये, तिन के जनु रणरुद्र।
दया दान को कल्पतरु, गुणनिधि शीलसमुद्र ॥१७॥
नगर ओरछो जिन रच्यो, जगमें जागति कृत्ति।
कृष्णदत्त मिश्रहि दई, जिन पुराणकी वृत्ति ॥१८॥
भरतखण्ड मण्डन भये, तिन के भारतचन्द।
देश रसातल जात जिहिं, फेरयो ज्यों हरिचन्द ॥१९॥
शेरशाहि असलम के, उर शाली शमशेर।
एक चतुरभुज हू नयो, ताको शिर तेहि वेर ॥२०॥

ब्रह्मादिक की विनय से समस्त पृथ्वी का भार दूर करने के लिए सूर्यवंश में श्रीरामचन्द्र का अवतार हुआ। उसी सूर्यवंश के अन्तर्गत जगत-प्रसिद्ध गहरवार कुल में, कलियुग के वैरी और रणधीर राजा वीरसिंह प्रकट हुए। उनके पुत्र राजा करण हुए जिन्होंने पृथ्वीपर

धर्म का प्रकाश फैलाया और सारे जगत को जीतकर काशी में निवास किया। वहाँ उनके नाम से करण-तीर्थ अब भी प्रसिद्ध है। उनके पुत्र अर्जुनपाल राजा हुए, जो महोनी गाँव में रहने लगे। उनके पुत्र राजा साहनपाल हुए जिन्होंने गढकुँडार में निवास किया। उनके पुत्र सहज करण हुए जो शत्रुओं के लिए काल स्वरूप थे। उनके पुत्र राजा 'नौनिकदेव' हुए और नौनिक देव के पुत्र पृथु के समान 'पृथ्वीराज' हुए। उनके पुत्र सूर्य के समान राजा रामसिंह हुए और 'रामसिंह' के पुत्र चन्द्रमास्वरूप राजचन्द्र हुए। 'राजचन्द्र' के पुत्र राय 'मेदिनीमल' हुए जिन्होंने शत्रुओं का घमंड चूर करके पृथ्वी पर धर्म का प्रकाश फैलाया। उनके पुत्र अर्जुन स्वरूप राजा अर्जुन देव हुए जिन्हें पृथ्वी के सभी राजा श्रीनारायण का मित्र ही कहा करते थे और जिन्होंने षोड़श महा-दान दिये तथा चारों दिशाओं के राजाओं को जीत लिया और चारों वेद तथा अठारहों पुराणों को सुना। उनके पुत्र, वैरियों को मारनेवाले श्री मलखानसिंह हुए जो कभी युद्ध होने पर पीछे नहीं मुड़े और जिन्हें सारा जगत जानता था। उनके पुत्र युद्ध में रुद्ररूप धारण करनेवाले 'प्रतापरुद्र' हुए जो दया तथा दान के कल्पतरु और गुणों के कोष तथा शील के समुद्र थे। उन्होंने 'ओरछा' नगर बसाया जिससे संसार में उनकी कीर्त्ति फैली तथा कृष्णदत्त मिश्र को पुराण सुनाने की वृत्ति प्रदान की। उनके पुत्र भारतवर्ष की शोभा-स्वरूप भारतीचंद हुए जिन्होंने हरिचंद के समान देश को रसातल जाने से बचा लिया और शेरशाह असलेम की छाती में तलवार घुसेड़ दी। अपने समय में उन्होंने श्री चतुर्भुज नारायण को छोड़ और किसी दूसरे को सिर नहीं झुकाया।

उपजि न पायो पुत्र तेहि गयो सु प्रभु सुरलोक।
सोदर मधुकरशाह तब, भूप भये भुविलोक ॥२१॥
जिन के राज रसा बसे केशव कुशल किसान।
सिन्धु दिशा नहिं वारही पार बजाय निशान ॥२२॥

तिनपर चढ़िआये जे रिपु, केशव गये ते हारि।
जिनपर चढ़ि आपुन गये, आये तिनहिं सँहारि ॥२३॥
सबलशाह अकबर अवनि, जीतिलई दिशि चारि।
मधुकरसाहि नरेश गढ़, तिन के लीन्हें मारि ॥२४॥
खान गनै सुल्तान को, राजा रावत बाद।
हारयो मधुकरसाहि सों, आपुन साहिमुराद ॥२५॥
साध्यो स्वारथ साथही, परमारथ सो नेह।
गये सो प्रभु वैकुंठमग, ब्रह्मरन्ध्र तजि देह ॥२६॥
तिनके दूलहराम सुत, लहुरे होरिलराउ।
रिपुखण्डन कुलमण्डनौ, पूरण पुहुमि प्रभाउ ॥२७॥
रनरूरो नरसिंह पुनि, रतनसेनि सुनि ईश !
बांध्यो आपु जलालदीं, बानो जाके शीश ॥२८॥
इन्द्रजीत, रणजीत पुनि, शत्रुजीत बलवीर।
बिरसिंह देव प्रसिद्ध पुनि, हरिसिंहौ रणधीर ॥२९॥
मधुकरसाहि नरेश के, इतने भये कुमार।
रामसिंह राजा भये, तिन के बुद्धि उदार ॥३०॥
घर बाहर बरणहि तहाँ, केशव देश विदेश।
सब कोई यहई कहैं, जीतै राम नरेश ॥३१॥
रामसाहि सों शूरता, धर्म न पूजै आन।
जाहि सराहत सर्वदा, अकबर सो सुलतान ॥३२॥
कर जोरे ठाढ़े तहाँ, आठौ दिशि के ईश।
ताहि तहाँ बैठक दियो, अकबर सो अवनीश ॥३३॥
जाके दरशन को गये, उघरे देव किवाँर।
उपजी दीपति दीप की, देखति एकहिबार ॥३४॥
ता राजा के राज अब, राजत जगती माँह।
राजा, राना; राउ सब, सोवत जाकी छाँह ॥३५॥

तिन के सुत ग्यारह भये, जेठ साहि संग्राम।
दच्छिण दच्छिणराज सों, जिन जीत्यो संग्राम ॥३६॥
भरतखण्ड भूषण भये, तिन के भारतसाहि।
भरत, भगीरथ, पारथहि, उनमानत सब ताहि ।३७।
सुत सोदर नृप रामके, यद्यपि बहु परिवार।
तदपि सबै इन्द्रजीत शिर, राजकाज को भार ॥३८॥
कल्पवृच्छ सो दानि दिन, सागर सो गम्भीर।
केशव शूरो सूरसो, अर्जुन सो रणधीर ।३९॥
ताहि कछावाकमल सो, गढ़ दीन्हों नृप राम।
विधि सों साधत बैठि तहँ, भूपति वाम, अवाम ।४०॥

उनके कोई पुत्र उत्पन्न नहीं होने पाया कि वह स्वर्ग लोक सिधार गये। तब उनके सगे भाई मधुकरशाह राजा हुए। उनके राज्य में किसान कुशलपूर्वक निवास करते थे। उन्होंने सिन्धु नदी के इस ओर ही नहीं, प्रत्युत उस ओर-दूसरे किनारे पर भी अन्य राजा के राज्य में विजय का डंका बजाया। उनपर जो शत्रु चढ़कर आये, वे हार कर गये और जिन पर उन्होंने स्वयं चढ़ाई की, उन्हें वे मार कर आये। महाप्रतापी अकबर ने पृथ्वी की चारों दिशाओं को जीत लिया था, परन्तु मधुकरशाह ने उसके क़िले भी अपने अधीन कर लिए। सुलतान (अकबर) को तो वह साधारण खान (सरदार) समझते थे और अन्य राजा-रावों को तो कुछ गिनते ही न थे। स्वयं मुरादशाह मधुकरशाह से हार गये थे। उन्होंने अपने स्वार्थसाधन के साथ ही साथ परमार्थ से भी स्नेह किया और वह ब्रह्मरंध्र मार्ग द्वारा (तालूफटजाने से) शरीर छोड़कर स्वर्ग सिधारे। उनके बड़े पुत्र दूलहराम तथा छोटे होरिलराव हुए जो वैरियों को मारने वाले और अपने वंश की शोभा थे तथा समस्त पृथ्वी पर उनका प्रभाव था। फिर (तीसरे) रण-बांकुरे नृसिंह और (चौथे) रत्नसेन थे, जिन्होंने जलालुद्दीन अकबर शाह को हराया था और जिनकी बड़ी प्रशंसा थी।

फिर (पाँचवे) शत्रुओं को जीतनेवाले इन्द्रजीत और (छठवें) बलवान शत्रुजीत थे तथा (सातवें) प्रसिद्ध वीरसिंह देव और (आठवें) रणधीर हरिसिंहदेव थे। मधुकरशाह के इतने पुत्र हुए उनमें रामसिंह राजा हुए जो बड़ी उदारबुद्धिवाले थे। उनकी घर-बाहर तथा देश-विदेश सभी स्थानों में, लोग प्रशंसा करते हुए यही कहा करते थे 'कि राजारामसिंह सदा विजयी रहते हैं।' रामसिंह से वीरता और धार्मिकता में, कोई दूसरा बराबरी नहीं कर सकता था। और जिनकी प्रशंसा स्वयं सुलतान अकबर करते थे। जहाँ पर आठो दिशाओं के राजा हाथ जोड़े खड़े रहते थे, वहाँ पर अकबर जैसे बादशाह ने उन्हें सम्मानपूर्वक बैठाया था। जिनके (श्रीबद्रीनाथ जी के) दर्शनार्थ जाने पर देव-मंदिर के दरवाजे स्वयं खुल गये थे और उनके एक बार देखते ही दीपक में भी ज्वाला उत्पन्न हो गई थी। उसी राजा का राज्य अब इस पृथ्वी पर सुशोभित हो रहा है और उसकी छाया (आश्रय) में राजा, राना, राव, सभी सुखपूर्वक सोते हैं। उनके ग्यारह पुत्र हुए जिनमें सबसे बड़े संग्राम सिंह थे, जिन्होंने दक्षिण के राजा से संग्राम जीता था। उनके पुत्र भारतीशाह हुए जो भरतखंड की शोभा थे और जिन्हें लोग भरत, भगीरथ और अर्जुन की उपमा दिया करते थे। यद्यपि राजा रामसिंह के बेटे, भाई तथा और बहुत सा परिवार था तथापि राज-काज का सारा भार इन्द्रजीत पर था। वह कल्प-वृक्ष से दानी, समुद्र के समान गम्भीर, सूर्य जैसे तेजस्वी और अर्जुन जैसे रण-धीर थे। राजा रामसिंह ने उन्हें अपना कछोवागढ़ प्रदान किया था जहाँ बैठकर वह शत्रु और मित्र से यथाविधि वर्त्ताव करते थे।

कियो अखारो राज को, शासन सब संगीत।
ताको देखत इन्द्र ज्यों, इन्द्रजीत रणजीत ॥४१॥
बाल वयक्रम बल सब, रूप शील गुण वृद्ध।
यदपि भरो अवरोध पट, पातुर परम प्रसिद्ध ॥४२॥

रायप्रवीण प्रवीण अति, नवरंगराइ सुवेश।
अति विचित्रनैना निपुण, लोचन नलिन सुदेश ॥४३॥
सोहत सागर राग की, तानतरंग तरंग।
रंगराइ रँगवलित गति, रँगमूरति अँग अँग ॥४४॥
तंत्री, तुम्बुर, सारिका, शुद्ध सुरनि सों लीन।
देवसभा सी देखिये, रायप्रवीण प्रवीन ॥४५॥
सत्या, रायप्रवीणयुत, सुरतरु, सुरतरु गेह।
इन्द्रजीत तासों बँध्यो, केशवदास सनेह ॥४६॥
सुरी, आसुरी, किन्नरी, नरी रहति सिरु नाइ।
नवरस नवधाभक्ति स्यों, शोभित नवरँग राइ ॥४७॥
हाव-भाव संभावना, दोला सम सुखदाय।
पियमन देति झुलाय गति, नवरस नवरंगराय ॥४८॥
भैरवयुत गौरी सँयुत, सुरतरंगिनी लेखि।
चन्द्रकला सी सोहिये, नैनविचित्रा देखि ॥४९॥
नैन बैन रति सैन सम, नैनविचित्रा नाम।
जयन शील पति मैन मन, सदा करति विश्राम ।५०।
नागरि सागर राग की, सागर तानतरंग।
पति पूरणशशि दरसि दिन, वाढ़ति तान तरंग ॥५१॥
तानति तानतरंग की, तन मन वेधति प्राण।
कलाकुसुमशर शरन की, अति अयानि तनत्राण ॥५२॥
रंगराय की आंगुरी, सकल गुणन की मूरि।
लागत मूढ़ मृदंग मुख, शब्द रहत भर पूरि ॥५३॥
रंगरायकर मुरजमुख, रँगमूरति पद चारु।
मनो पढ़्यो है साथही, सब संगीत विचारु ॥५४॥
अँग जिते संगीत के, गावत गुणी अनंत।
रँगमूरति अँग अंग प्रति, राजत मूरतिवंत ॥५५॥

रायप्रवीण प्रवीण सों, परवीणन कहँ सुःख।
अपरवीण केशव कहा, परवीणन मन दुःख ॥५६॥
रतनाकर लालित सदा, परमानन्दहि लीन।
अमल कमल कमनीय कर, रमा कि रायप्रवीन ॥५७॥
राय प्रवीण कि शरदा, शुचि रुचि रंजित अंग।
वीणा पुस्तक धारणी, राजहँस सुत संग ॥५८॥
वृषभवाहिनी अंगयुत, वसुकि लसत प्रवीण।
शिव सँग सोहति सर्वदा, शिवा कि रायप्रवीण ॥५९॥
नाचत गावत पढ़त सब, सबै बजावत वीण।
तिन में करत कवित्त यक रायप्रवीण प्रवीण ॥६०॥
सवितजू कविता दई, जाकहँ परम प्रकास।
ताके कारज कविप्रिया, कीन्हीं केशवदास ॥६१॥

राज्य का भली-भाँति शासन प्रबन्ध करने के बाद इन्द्रजीतसिंह ने संगीत का अखाड़ा जमाया और वह उस अखाड़े में इन्द्र के समान ही आनन्द लेते थे। यद्यपि रूप, शील और गुण में बढ़ी हुई नवयुवती बालाओं से उनका अन्तःपुर भरा हुआ था, परन्तु उनमें छः वेश्यायें बहुत प्रसिद्ध थीं। उनमें (पहली) अत्यन्त चतुर प्रवीणराय, (दूसरी) सुन्दर वेशवाली नवरंगराय, (तीसरी) अत्यन्त निपुणा और कमल जैसे नेत्रवाली विचित्रनयना, (चौथी) राग के समुद्र की लहर के समान तानतरंग, (पाँचवीं) आनन्दमूर्ति रंगराय तथा (छठवीं) सर्वांगसुन्दरी रंगमूर्ति थी। इनमें चतुर प्रवीणराय की वीणा देवसभा के समान प्रतीत होती थी, क्योंकि जिस प्रकार देवसभा तंत्री (वृहस्पति) तुँबुरु गन्धर्व, सारिका अप्सरा और शुद्ध (सत्वगुणवाले) देवताओं से युक्त रहती है उसी प्रकार उसकी वीणा भी तंत्री (तार), तुँबुरु (तूंबा), सारिका (खोरिया) और शुद्ध स्वरों से युक्त है। रायप्रवीण सत्या (सत्यभामा) के समान है, क्योंकि जिस प्रकार उसके घर

में सुरतरु (पारिजात वृक्ष) था, उसीप्रकार इसके घर में सुरतरु (स्वरों का वृक्ष) है। (ऐसी वीणा है, जिसमें सातो स्वर निकलते हैं)। जिस प्रकार उसपर इन्द्रजीत (श्रीकृष्ण, जो इन्द्र को जीत कर पारिजात लाये थे) अनुरक्त थे, उसी प्रकार इस प्रवीणराय से इन्द्रजीतसिंह स्नेह बद्ध हैं। नवों रसों और नवों प्रकार की भक्ति के सहित नवरंगराय वेश्या ऐसी सुशोभित होती थी कि उसे देखकर नारियाँ, किन्नरियाँ, असुर तथा देव स्त्रियाँ सिर झुका लेती थीं। नये ढंग के हाव-भाव में नवरंगराय अपने प्रियतम के मन को झुला देती है, इसलिए झूला जैसी सुखदायक है। नयनविचित्रा चन्द्रकला के समान सुशोभित है, क्योंकि जिसप्रकार चन्द्रकला, भैरव, गौरी (पार्वती) और सुरतरंगिनी (गंगा) से युक्त है, उसी प्रकार वह भी भैरव तथा गौरी रागों से युक्त है और सुरतरंगिनी अर्थात् स्वरों की तो मानो नदी ही है। नयन विचित्रा नाम की वेश्या नयन और बचन में रति-समय की चेष्टाओं के समान है तथा अपने कामदेव स्वरूप पति के मन को जीतनेवाली है तथा उसके मन में सदा विश्राम करती है। तानतरंग वेश्या बड़ी चतुर तथा रागों की सागर है और अपने पूर्ण चन्द्रमा जैसे पति के दर्शन के दिन उसके मन में रागों की लहरें उठा करती हैं। तानतरंग की तानें तन, मन और प्राणों को बेध डालती हैं। वे तानें कामदेव के बाणों की कला रखती हैं जिनसे बचने के लिए अज्ञान ही तनत्राण (कवच) का कामदेता है अर्थात् अज्ञानी ही उन कलाओं से बच सकता है। रंगराय की उँगलियाँ सब गुणों की मूल हैं जो मूढ़ मृदंग के मुख में लगते ही उसे शब्दों से भरपूर कर देतीं हैं। रंगराय के हाथों, मृदग के मुख तथा रंगमूर्ति के सुन्दर पैरों ने मानो एक साथ ही संगीत विद्या को पढ़ा है। संगीत के जितने अंग हैं और जिन्हें अनन्त गुणी जन गाया करते हैं, वे सब रंगमूर्ति के अंग-अंग में मूर्तिमान रहते हैं। रायप्रवीण की वीणा से प्रवीणों (चतुरों) को सुख होता है।

अप्रवीणों की तो बात ही क्या कहूँ उसके विरोधियों की वीणाओं तक को मन में दुःख होता है (कि हम इसके हाथ से न बजाई गईं)। यह रायप्रवीण है या लक्ष्मी है, क्योंकि जिस प्रकार लक्ष्मी, रत्नाकर (समुद्र) से लालित हैं उसी प्रकार यह भी रत्नाकर (रत्नों के समूह) से लालित रहती है। जिस प्रकार लक्ष्मी परमानन्द (भगवान् विष्णु) में लीन रहती हैं उसी प्रकार यह भी अत्यन्त आनन्द में लीन रहती है। जिस प्रकार लक्ष्मी के हाथों में निर्मल कमल रहता है उसीप्रकार यह भी हाथों में कमल नामक कंकण पहने रहती है। यह प्रवीण राय है या शारदा है ? क्योंकि, जिस प्रकार शारदा का शरीर स्वच्छ कान्ति से युक्त है उसी प्रकार इसका शरीर भी शृंगार से सुशोभित है। जैसे शारदा वीणा और पुस्तक धारण करती हैं, वैसे यह भी वीणा और पुस्तक लिये रहती है। जिस प्रकार शारदा राज हंस के पुत्र अर्थात् राजहंस के साथ रहती हैं, उसी प्रकार यह भी हंस-सुत अर्थात् सूर्य वंशी-राजा के साथ रहा करती है। यह राय प्रवीण है या पार्वती, क्योंकि जिस प्रकार शिव की अर्द्धाङ्गिनी होने के कारण पार्वती वृषवाहिनी (बैल पर सवार) हैं उसी प्रकार यह भी वृष वाहिनी (धर्म पर सवार) है। जिस प्रकार उनके अंग में वासुकि (नाग) पड़ा रहता है उसी प्रकार इसके अंग में भी वासुकि (सुगंधित पुष्पहार) रहता है। वह जैसे शिव के संग रहती है, वैसे यह भी शिव (सुशोभितरूप) के साथ रहती है। वैसे तो सभी वेश्याएं नाचती, गाती, पढ़ती और वीणा बजाती हैं परन्तु उनमें काव्य रचना अकेली रायप्रवीण करती है। श्री सूर्य देव ने उसे कविता करने की प्रकाशमयी प्रतिभा दी है। उसी की शिक्षा के लिए केशवदास ने यह 'कविप्रिया' बनाई है।

दूसरा प्रभाव

कविवंश वर्णन

ब्रह्मादिक के विनय ते, प्रकट भये सनकादि।
उपजे तिनके चित्त ते, सब सनाढ्य की आदि ॥१॥
परशुराम भृगुनंद तब, तिनके पायँ पखारि।
दिये बहत्तरि ग्राम सब, उत्तम विप्र विचारि ॥२॥
जगपावन वैकुंठपति, रामचन्द्र यह नाम।
मथुरा-मंडल में दिये, तिन्हैं सात सै ग्राम ॥३॥
सोमवंश यदुकुल कलश, त्रिभुवनपाल नरेश।
फेरि दिये कालकाल पुर, तेई तिनहिं सुदेश ॥४॥
कुंभवार उद्देश कुल, प्रकटे तिन के बंस।
तिन के देवानन्द सुत, उपजे कुल अवतंस ॥५॥
तिनके सुत जगदेव जग, थापे पृथ्वीराज।
तिनके दिनकर सुकुल सुत, प्रगटे पंडितराज ॥६॥
दिल्लीपति अल्लावदी, कीन्हीं कृपा अपार।
तीरथ गया समेत जिन, अकर कियो कै बार ॥७॥
गया गदाधर सुत भये, तिनके आनँदकन्द।
जयानन्द तिनके भये, विद्यायुत जगबन्द ॥८॥
भये त्रिविक्रम मिश्र तब, तिनके पण्डितराय।
गोपावल गढ़ दुर्गपति, तिनके पूजे पाँय ॥९॥
भावशर्म तिनके भये, तिनके बुद्धि अपार।
भये शिरोमणि मिश्र तव, षटदरशन अवतार ॥१०॥
मानसिंह सों रोष करि, जिन जीती दिशि चारि।
ग्राम बीस तिनको दये, राना पायँ पखारि ॥११॥

तिनके पुत्र प्रसिद्ध जग, कीन्हें हरि हरिनाथ।
तामरपति तजि और सों, भूलि न ओड्यो हाथ ॥१२॥
पुत्र भये हरिनाथ के, कृष्णदत्त शुभ वेष।
सभा शाह संग्राम की जीती गढ़ी अशेष।१३॥
तिनको वृत्ति पुराण की, दीन्हीं राजा रुद्र।
तिनके काशीनाथ सुत, सो भे बुद्धिसमुद्र ॥१४॥
जिनको मधुकरशाह नृप, बहुत कियो सनमान।
तिनके सुत बलभद्र बुध, प्रकटे बुद्धिनिधान ॥१५॥
बालहि ते मधुशाह नृप तिनसों सुन्यो पुरान।
तिनके सोदर द्वै भये, केशवदास कल्यान ॥१६॥
भाषा बोलि न जानहीं, जिनके कुल के दास।
भाषा कवि भो मंदमति, तेहि कुल केशवदास ॥१७॥
इन्द्रजीत तासों कह्यो, मांगन मध्य प्रयाग।
मांग्यो सब दिन एक रस, कीजै कृपा सभाग ॥१८॥
योहीं कह्यों जु वीर बर, मांगु जु मन में होय।
मांग्यो तब दरबारमें, मोहिं न रोकै कोय ॥१६॥
गुरु करि मान्यो इन्द्रजित, तनमन कृपा विचारि।
ग्राम दये इकबीस तब, ताके पायँ पखारि ॥२०॥
इन्द्रजीत के हेतु पुनि, राजा राम सुजान।
मान्यो मन्त्री मित्र कै, केशवदास प्रमान ॥२१॥

ब्रह्माजी के चित्त से सनकादि प्रकट हुए और उनके चित्त से सनाढय ब्राह्मणों की उत्पत्ति हुई। (अर्थात् ब्रह्माजी के मानसिक पुत्र सनकादि थे और सनकादि के माननिक पुत्र सनाढय ब्राह्मण हुए)। भृगुनन्द परशुराम ने उन्हें उत्तम ब्राह्मण समझ कर पैर पखारे और ७२ गाँव दिये। जग-पावन वैकुंठपति श्री रामचन्द जी ने मथुरा मण्डल में उन्हें ७०० गाँव प्रदान किये। फिर सोमवंश के यदुकुल-श्रेष्ठ तथा त्रिभुवन पालक श्री कृष्ण महाराज ने भी कलियुग में उन्हें वही (मथुरा

मण्डल) देशप्रदान किया। उनके वंश के उद्दंसकुल में कुंभवार उत्पन्न हुए। उनके पुत्र-अपने वंश की शोभा-देवानन्द हुए। उनके पुत्र जयदेव और जयदेव के पुत्र पंडितराज दिनकर हुए। उनपर दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन बड़ी कृपा रखता था। उन्होंने गया समेत अनेक तीर्थों की यात्रा बहुत बार की थी। उनके पुत्र आनन्दकंद गया गदाधर हुए और उनके पुत्र जयानन्द हुए जो विद्वान और जगत्प्रतिष्ठित थे। उनके पुत्र पंडितराज त्रिविक्रम मिश्र हुए जिनके पैरों की पूजा गोपाचल किले के राजा ने की थी। उनके पुत्र भावशर्मा हुए जो बड़े बुद्धिमान थे। भावशर्मा के पुत्र शिरोमणि मिश्र हुए जो षट् दर्शनों के मानों अवतार ही थे। मानसिंह पर क्रोध प्रकट करके उन्होंने चारों दिशाओं को जीता और राणा ने उनके पैर धोकर बीस गाँव प्रदान किये। उनको भगवान् ने जगत्-प्रसिद्ध हरिनाथ पुत्र दिया, जिन्होंने तोमरपति के छोड़ और किसी के आगे भूलकर भी हाथ नहीं फैलाया। हरिनाथ के शुभ वेसवाले कृष्णदत्त हुए जिनको राजा रुद्र ने पुराण की वृत्ति प्रदान की। उनके पुत्र बुद्धि के समुद्र काशीनाथ हुए जिनका राजा मधुकरशाह ने बड़ा सम्मान किया और बालक पन से ही मधुकरशाह ने उनसे पुराणों को सुना। उनके दो भाई और हुए जिनके नाम केशवदास और कल्याण दास थे। जिसके कुल में (संस्कृत को छोड़) लोग भाषा को बोलना तक न जानते थे उसी कुल में भाषा-कवि मंदमति केशवदास उत्पन्न हुआ। उससे जब इन्द्रजीत ने, प्रयाग में कुछ मांगने के लिए कहा तब उसने कहा कि 'आप इसीप्रकार सदा कृपा करते रहिए'। इसी प्रकार बीरबल ने भी कहा था 'कि तुम्हारे मन में जो कुछ हो मांग लो'। तब यही मांगा था कि 'आपके दरबार में मुझे कोई न रोके।' उसको इन्द्रजीत ने अपना गुरू समझकर सदा तन मन से कृपा की और उसके पैर धोकर इक्कीस गाँव प्रदान किये। उन्हीं इन्द्रजीत के हितू राजा रामशाह जी ने केशवदास को अपना मंत्री तथा मित्र समझकर आदर किया।

तीसरा प्रभाव

[काव्य-दूषण]

दो०। समुझैं बाला बालकन, बर्णन पन्थ अगाध।
कविप्रिया केशव करी, छमियहु कवि अपराध ॥१॥

केशवदास कहते हैं कि मैंने इस कविप्रिया पुस्तक को इसलिए लिखा है कि जिससे कविता के अगाध रहस्य को स्त्री तथा बालक भी समझ सकें, अतः कविगण मेरा अपराध क्षमा करें।

अलंकार कवितान के, सुनिगुनि विविध विचार।
कविप्रिया केशव करी, कविता को शृंगार ॥२॥

कविता के अलंकारादि विविध गुणों को विचारपूर्वक सुनने और समझने के बाद 'केशव' ने, कविता की शोभा इस कविप्रिया को लिखा है।

सगुन पदारथ अरथयुत, सुबरन मय, शुभ साज।
कंठमाल ज्यों कविप्रिया, कंठ करहु कविराज ॥३॥

हे कविराज ! इस 'कविप्रिया' को गले के हार के समान गले में पहन लो (कंठस्थ करलो)। इसमें काव्य के गुण (ओज, प्रसाद, माधुर्य) का डोरा है। काव्यार्थ ही इसके पदार्थ (मणि-माणिक्य-रत्नादि) हैं और सुन्दर अक्षर ही इसके सोने के गुरियाँ हैं और यह भली भाँति सजाया गया है।

चरण धरत चिंता करत, नींद न भावत शोर।
सुबरण को सोधत फिरत, कवि, व्यभिचारी, चोर ॥४॥

कवि, व्यभिचारी और चोर सदा सुबरण (सुँदर अक्षर, सुन्दर रंग, और सोना) ढूंढ़ते रहते हैं। कवि, छन्द का एक एक चरण

रचते समय अच्छी तरह सोचता-विचारता है। उसे न नींद अच्छी लगती है और न कोलाहल सुहाता है। वह सुन्दर अक्षर खोजता है। व्यभिचारी, एक एक चरण (पैर) सोच-समझ कर रखता है। उसको (दूसरों की) नींद (निद्रा) तो अच्छी लगती है परन्तु कोलाहल अच्छा नहीं लगता। वह सुन्दर रंग की नायिका खोजता है। चोर भी एक-एक चरण (पैर) रखते समय सोचता-विचरता है (संभल कर पैर रखता है कि कहीं कोई आहट न सुनले) और उसे भी दूसरों की नींद (निद्रा) अच्छी लगती है और कोलाहल नहीं सुहाता। वह सोना ढूंढता रहता है।

राजत रंच न दोष युत, कविता, बनिता मित्र।
बुंदक हाला परत ज्यों, गंगा घट अपवित्र ॥५॥

कविता, स्त्री तथा मित्र में थोड़ा सा भी दोष हो तो वे इस प्रकार अच्छे नहीं लगते जिस प्रकार मदिरा की एक बूंद के पड़ते ही गंगा जल का भरा हुआ पूरा घड़ा अपवित्र हो जाता है।

विप्र न नेगी कीजई, मुग्ध न कीजै मित्त।
प्रभु न कृतघ्ना सेइये, दूषणसहित कवित्त ॥६॥

ब्राह्मण को नेगी (अधिकारी) और मूर्ख को मित्र, न बनाना चाहिए। कृतघ्न स्वामी की सेवा न करनी चाहिए तथा दोष युक्त कविता नहीं रचनी चाहिए।

दोषों के नाम और लक्षण

अन्ध, बधिर अरु पंगु तजि, नगन, मृतक मतिशुद्ध।
अन्ध विरोधी पन्थ को, बधिर जो शब्दविरुद्ध ॥७॥

हे मतिशुद्ध (शुद्ध बुद्धि वाले) तुम 'अन्ध,' 'बधिर,' 'पंगु,' 'नग्न,' तथा मृतक (इन पाँच दोषों) को छोड़ दो। कविता के पन्थ का विरोधी 'अन्ध' दोष है अर्थात् कविता की बंधी हुई प्राचीन परम्पराओं से हटना अन्ध दोष कहलाता है। विरुद्ध (परस्पर विरोधी) शब्दों का प्रयोग 'बधिर' दोष है।

छन्द विरोधी पंगु गुनि, नगन जो भूषण हीन।
मृतक कहावै अरथ बिन, केशव सनहु प्रवीन ॥८॥

'केशव' कहते हैं कि हे प्रवीणराय सुनों। छन्द-शास्त्र के विरुद्ध रचना 'पंगु' तथा भूषण-हीन (अलंकार-रहित) 'नग्न' और अर्थ रहित मृतक कहलाती है।

उदाहरण

(१) पंथविरोधी 'अन्ध' दोष।

सवैया

कोमलकंजसे फूल रहे कुच, देखतही पति चन्द विमोहै।
बानर से चल चारु विलोचन, कोये रचे रुचि रोचन कोहै॥
माखन सो मधुरो अधरामृत, केशव को उपमाकहुँ टोहै।
ठाढ़ी है कामिनी दामिनसी, मृगभामिनिसी गजगामिनिसोहै ॥९॥

कोमल-कंज जैसे कुच फूल रहे हैं जिन्हें देख कर पति रूपी चन्द्र मोहित होता है। बन्दर जैसे चंचलनेत्र है और उन नेत्रों के कोए रोरी जैसे लाल हैं। अधरामृत मक्खन सा है। बिजली जैसी गजगामिनी नायिका मृगभामिनी (हिरनी) जैसी खड़ी है।

[इसमें कुचों का वर्णन करते हुए उन्हें कमल के समान कहा गया है जो कवि परम्परा के विरुद्ध है अतः पंथविरोधी अन्ध दोष है। कमल के साथ पति को चन्द्र कहना भी पंथविरोध है क्योंकि कमल और चन्द्रमा का परस्पर विरोध है। इसी प्रकार नेत्रों को बन्दर के नेत्रों की उपमा तथा कोयों को रोरी जैसा लाल कहना भी पंथ-विरुद्ध दोष है। ओंठों को मक्खन जैसा बतलाना कवि परम्परा के विरोधी है, क्योंकि ओंठों को मक्खन जैसा श्वेत और कोमल होना भद्दा समझा जाता है। 'गजगामिनी स्त्री मृग-भामिनी (मृगी) जैसी खड़ी है' इस वाक्य में भी पंथविरोध है]

(२) शब्दविरोधी बधिर ।

सवैया

सिद्ध सिरोमणि शंकर सृष्टि, संहारत साधु समूह भरी है।
सुन्दर मूरत आतमभूतकी, जारि घरीक में छार करी है॥
शुभ्र विरूप विलोचन सो, मति केशवदास के ध्यान अरी है।
बन्दत देव अदेव सबै, मुनि गोत्रसुता अरधंग धरी है॥१०॥

सिद्ध सिरोमणि शङ्करजी साधु-समूह-भरी सृष्टि का संहार करते हैं। उन्होंने आत्म-भूत (कामदेव) की सुन्दर मूर्ति को घड़ी भर में जलाकर क्षार कर डाला है। उनका शुभ्र, त्रिलोचन तथा विशेष सुंदर रूप केशवदास के ध्यान में समाया हुआ है। जिन्होंने गोत्रसुता (पार्वती) को अर्द्धाङ्ग में धारण किया है, उनकी बन्दना देव, अदेव तथा मुनि सभी करते हैं।

[यहाँ सिद्धशिरोमणि शङ्कर जी के साथ 'संहारत' क्रिया का प्रयोग करना अनुचित है। शङ्कर का अर्थ कल्याणकारी होता है, अतःइस क्रिया का प्रयोग दोष है। आत्म-भूत का अर्थ कामदेव के अतिरिक्त पुत्र भी होता है, इसलिए इस शब्द का प्रयोग भी ठीक नहीं हुआ है। इसी प्रकार त्रिलोचन के साथ शुभ्र तथा विरूप शब्दों के प्रयोग भी अनुचित प्रतीत होते हैं। 'अरी' का अर्थ बैरी भी हो सकता है, इसलिए इसका प्रयोग भी ठीक नहीं हुआ है। 'गोत्रसुता' का अर्थ पुत्री भी हो सकता है इसलिए यह प्रयोग भी अनुचित प्रतीत होता है। ये सभी शब्द परस्पर विरोधी अर्थ देने के कारण 'बधिर' दोष के अन्तर्गत आते हैं।]

दोहा

तौलत तुल्य रहै न ज्यों कनक तुला, तिल आधु।
त्योंही छन्दोभंग को सहि न सकै श्रुति साधु॥११॥

जिस प्रकार सोने को तोलने की तराजू (कांटा) आधे तिल का भी भार भेद नहीं सह सकती, उसी प्रकार शुद्ध कविता को सुनने के अभ्यासी कान तनिक भी छन्दोभंग को नहीं सह सकते।

(३) छन्दविरोधी पंगु दोष ।

सवैया

धीरज मोचन लोचन लोल, बिलोकिकै लोककी लीकति छूटी ।
फूटि गये श्रुति ज्ञान के केशव, आंखि अनेक विवेक की फूटी ॥
छांड़िदई शरता, सब काम, मनोरथके रथकी गति खूटी ।
त्यों न करै करतारउबारक, ज्यों चितवै वह बारबधूटी ॥१२॥

धैर्य को छुड़ाने वाले उन चंचल नेत्रों को देखकर मुझसे लोक की मर्यादा छूट गई । 'केशव' कहते हैं कि ज्ञान के कान और विवेक के अनेक नेत्र भी फूट गये । कामदेव ने अपनी शूरता (बाण चलाने की कला) छोड़ दी और मनोरथ के रथ की चाल रुक गई । जिस प्रकार उस वेश्या ने मेरी ओर देखा है, उस प्रकार, ईश्वर न करे, वह फिर देखे ।

[इस छन्द में पिंगलशास्त्र के नियमानुसार सात भगण और दो गुरु होने चाहिए, परन्तु इसमें इस नियम का निर्वाह नहीं किया गया । 'लीकतिछूटी' और 'करतारउबारक' में भी छन्दोभंग दोष है ।]

(४) अलंकारहीन नग्न दोष ।

सवैया

तोरितनी टकटोरि कपोलनि, जोरिरहे कर त्यों न रहौंगी ।
पान खवाइ सुधाधर प्याइकै, पांइ गह्यो तस हौं न गहौंगी ॥
केशव चूक सबै सहिहौं मुख चूमि चले यहु पै न सहौंगी ।
कै मुख चूमन दै फिर मोहि, कै आपनी धायसों जाइकहौंगी ॥१३॥

कोई नायिका अपने नायक से कहती है कि तुमने जैसे मेरी कंचुकी की तनी तोड़कर और कपोलों को टटोलकर हाथ जोड़ लिए, वैसा मैं न करूँगी । तुमने जैसे पान खिलाकर अधरामृत पिलाया और फिर पैर पकड़ लिए, वैसे भी मैं न करूँगी । 'केशवदास' नयिका की ओर

से) कहते हैं कि मैं तुम्हारी सभी चूक सहलूँगी परन्तु तुम जो मेरे मुख को चूमकर चल दिये, यह मैं सहन न करूँगी। अतः या तो मुझे फिर अपना मुख चूमने दो, नहीं तो मैं अपनी धाय से जाकर कह दूँगी।

[इस छन्द में कोई भी चमत्कारपूर्ण अलंकार नहीं है अतः नग्न दोष है]

(५) अर्थहीन मृतक दोष ।

सवैया।

काल कमाल करील करालनि. शालनि चालनि चाल चली है।
हाल बिहालन ताल तमाल, प्रबालक बालक बाललली है॥
लोल विलोल कपोल: अमोलक, बोलक मोलक कोलकली है।
बोल निचोल कपोलनि टोलति, गोल निगोलक लोल गली है॥१४॥

[इस छन्द में सभी शब्द अर्थ शून्य हैं, अतः इसमें अर्थहीन 'मृतक' दोष है।]

कुछ अन्य दोष

दोहा

अगन न कीजै हीनरस, अरु केशव यतिभंग।
व्यर्थ अपारथ हीन क्रम. कवि कुल तजौ प्रसंग ॥१५॥

'केशवदास' कहते हैं कि हे कवियों ! तुम 'अगण' 'हीनरस' 'यतिभंग' 'व्यर्थ,' 'अपार्थ', और 'हीन क्रम' दोषों के प्रयोगों को छोड़ दो।

वर्ण प्रयोग न कर्णकटु, सुनहु सकल कविराज।
शब्द अर्थ पुनरुक्तिके, छोड़हु सिगरे साज ।१६॥

सब कविराज सुनो ! कर्णकटु (कानों को अप्रिय लगने वाले) वर्णों का प्रयोग न करो तथा शब्द तथा अर्थ की पुनरुक्ति को भी छोड़ दो।

देशविरोध न वरणिये, कालविरोध निहारि।
लोक न्याय आगमन के, तजौ विरोध विचारि ॥१७॥

'देशविरोध', 'काल विरोध', 'लोकविरोध', न्याय और आगम (शास्त्र) के विरोधों को भी विचारपूर्वक छोड़ दो।

(१) गनागनफल वर्णन।

केशव गन शुभ सर्वदा, अगन अशुभ उरआनि
चारिचारि विधि चारु मति, गन अरु अगन बखानि ॥१८॥

'केशवदास' कहते हैं कि गण (सुगण) सर्वदा शुभ माने जाते हैं और 'अगण' (कुगण) क सदा अशुभ समझना चाहिए। बुद्धिमानों ने 'गण' और 'अगण' को चार-चार तरह का बतलया है।

गनागन नाम वर्णन

भगन, नगन, पुनि भगन, अरु यगन, सदा शुभ जानि।
जगन. रगन अरु सगन पुनि, तगनहि अशुभ बखानि ॥१९॥

'मगण', 'नगण', 'भगण' और 'यगण' इन्हें सदा शुभ समझा जाता है अर 'जगण', 'रगण', 'सगण', तथा 'तगण' को अशुभ माना गया है।

गनागनरूप वर्णन।

मगन त्रिगुरुयुत त्रिलघुमय. केशव नगन प्रमान।
भगन आदिगुरु आदिलघु, यगन बखानि सुजान ॥२०॥

'केशवदास' कहते हैं कि तीनों गुरु अक्षरों से युक्त 'मगण' और तीनो लघु अक्षरों वाला 'नगण' कहलाता है। जिसके आदि में गुरु होता है उसे 'भगण' तथा जिसके आदि में लघु होता है उसे 'यगण' कहते हैं।

जगन मध्यगुरु जानिये, रगन मध्यलघु होइ।
सगन अंतगुरु अंतलघु. तगन कहत सब कोइ ॥२१॥

जिसके मध्य में गुरु हो उसे 'जगण' और जिसके मध्य में लघु हो उसे 'रगण' समझिए। इसी प्रकार जिसके अंत में गुरु होता है उसे 'सगण' और जिसके अंत में लघु होता है उसे 'तगण' कहते हैं।

आठौं गन के देवता, अरु गुन दोष विचार।
छंदोग्रंथनि में कह्यो, तिनको बहु विस्तार ॥२२॥

इन आठों गणों के देवता तथा गुण-दोषों का भी छन्द-ग्रन्थों में विचारपूर्वक वर्णन किया गया है। उनका बड़ा विस्तार है।

गण देवता वर्णन।

मही देवता मगन को, नाग नगन को देखि।
जल जिय जानहु यगनको, चंद भगन को लेखि ॥२३॥

'मगण' का देवता पृथ्वी, 'नगण' का शेषनाग, 'यगण' का जल और 'भगण' का चन्द्र समझो।

सूरज जानहु जगन को, रगन शिखीसम मान।
वायु समुझिये सगनको, तगन अकाश बखान ॥२४॥

'जगण' का देवता सूर्य और 'रगण' का अग्नि जानो। इसीप्रकार 'सगण' का वायु तथा 'तगण' का आकाश समझो।

गण मित्रामित्र वर्णन।

मगन नगन को मित्रगनि, यगन भगन को दास।
उदासीन ज त जानिये, र स रिपु केशवदास ॥२५॥

'केशवदास' कहते हैं कि 'मगण' और 'नगण' का नाम मित्र समझो तथा 'यगण' और 'भगण' की दास संज्ञा मानो। इसी तरह 'जगण' और 'तगण' की संज्ञा उदासीन तथा 'रगण' और 'सगण' की शत्रु जानो।

गण देवता तथा फल वर्णन

छप्पय

भूम भूरि सुख देय, नीर नित आनँदकारी।
आगि अंग दिन दहै, सूर सुख सोखै भारी।
केशव अफल अकाश; वायु किल देश उदासै।
मंगल चन्द अनेक, नाग बहु बुद्धि प्रकासै ॥

यहिविधि कवित्त फल जानिये कर्ता अरु जा हित करै।
तजि तजि प्रबन्ध सब दोष गन, सदा शुभाशुभ फल धरै ॥२६॥

'पृथ्वी' अत्यन्त सुख देती है और 'जल' सदा आनन्द कारी होता है। 'अग्नि' प्रतिदिन अंग को जलाती है और 'सूर्य' मुख को सुखा डालता है अर्थात् दुखदायी होता है। 'केशवदास कहते हैं कि 'आकाश' निष्फल होता है तथा 'वायु' देश से उचाटन कर देता है। 'चन्द्र' अनेक मंगलों को देनेवाला और 'नाग' बुद्धि को बढ़ाने वाला है। इस तरह कविता के शुभाशुभ फलों को जानना चाहिए। ये फलाफल कविता करनेवाले तथा जिसके लिए कविता की जाय दोनों के लिए हैं अतः अपनी रचना में सभी दोषों को छोड़ते हुए शुभाशुभ फलों पर सदा विचार कर लेना चाहिए।

द्विगण वर्णन

जो कहुँ आदि कवित्त के, अगन होइ बड़ भाग।
तात द्विगत विचार चित, कीन्हों वासुकिनाग ॥२७॥

हे बड़भाग! यदि कहीं कवित्त के आरम्भ में 'अगण' आ ही पड़े तो उसके निवारण के लिए वासुकि नाग ने विचार कर 'द्विगण' का नियम बनाया है।

कवित्त

मित्र तें जु होइ मित्र, बाढ़ै बहु रिद्धि-सिद्ध.
मित्र तें जु दास त्रास युद्ध में न जानिये।
मित्र तें उदास गन होत, गात दुख देत.
मित्र तें जु शत्रु होइ मित्र बन्धु हानिये ॥
दास तें जु मित्र गन काज सिद्ध केशौदास,
दास तें जु दास बस जीव सब मानिये।
दास तें उदास होत धन नास आस-पास,
दास तें जु शत्रु मित्र शत्रु सो बखानिये ॥२८॥

मित्र गण के साथ यदि मित्र गण हों तो ऋद्धि-सिद्ध बढ़ती हैं। 'मित्र गण' के साथ 'दास गण' होने पर युद्ध में त्रास नहीं होता (हारना नहीं पड़ता)। मित्र गण के साथ उदासीन गण आवें तो गोत्र या कुटुम्ब को दुख देते हैं और जो मित्र गण तथा शत्रु गण साथ हों तो बन्धु-हानि होती है। 'केशवदास' कहते हैं कि यदि दास गण और मित्र गण साथ पड़ें तो कार्य सिद्ध होता है और जो दास गण साथ-साथ पड़ें तो सभी जीवों को वश में कर लेते हैं। यदि 'दास गण' और 'उदासीन गण' साथ-साथ हों तो आस-पास धन का नाश होता है तथा 'दास गण' और शत्रु गण के एक साथ होने पर मित्र भी शत्रु जैसा हो जाता है।

कवित्त

जानिये उदास तें जु मित्र गन तुच्छ फल,
प्रगट उदास तें जु दास प्रभुताइये।
होइ जो उदास तें उदास तो न फलाफल,
जो उदास ही तें शत्रु तो न सुख पाइये॥
शत्रु तें जु मित्रगन ताहि सो अफलगन,
शत्रु तें जु दास आशु बनिता॰ नसाइये।
शत्रु तें उदास कुल नाश होय केशौदास,
शत्रु तें जु शत्रु नाश नायक को गाइये॥२९॥

यदि 'उदासीन गण' और 'मित्रगण' साथ हों तो तुच्छ फल समझो। 'उदासीनगण' और 'दास गण' के मेल से प्रभुता प्राप्त होती है। यदि उदासीनगण साथ-साथ हों तो फलाफल कुछ नहीं होता और जो उदासीनगण तथा 'शत्रु गण' का साथ हों तो सुख नहीं मिलता। जो 'शत्रु गण और 'मित्रगण' एक साथ हों तो विफल होते है और यदि शत्रु गण का 'दास गण' के साथ मेल हुआ तो शीघ्र ही स्त्री का नाश हो जाता है। 'केशवदास' कहते हैं कि 'शत्रु गण' और 'उदासीन

State Museum
LUCKNOW.

गण के साथ से कुल का नाश और 'शत्रु गण' के साथ 'शत्रु गण' पड़ने पर नायक का नाश हो जाता है।

गणागण के उदाहरण।

दोहा

राधा राधारमन के, मन पठयो है साथ।
ऊधव! ह्यां तुम कौनसों, कहौ योगकी गाथ ॥१०॥
कहा कहौं तुम पाहुने, प्राणनाथ के मित्त।
फिर पीछे पछिताहुगे, ऊधौ समुझौ चित्त ॥३१॥
दोहा दुहूं उदाहरन, आठौ आठौ पाय।
केशव गन अरु अगनके, समुझौ सवै वनाय ॥३२॥

हे उद्धव! राधा ने अपना मन राधा-रमण (श्रीकृष्ण) के साथ भेज दिया है अतः तुम यहाँ किससे योग की बात कहते हो। हे उद्धव क्या कहूँ! तुम पाहुने हो और प्राणनाथ (श्रीकृष्ण) के मित्र हो। अपने हृदय में विचार करो नही तो फिर पीछे पछताओगे। 'केशवदास' कहते हैं कि इन दोनों दोहों के आठ चरण गणऔर अगणके उदाहरण हैं; इन्हें अच्छी तरह समझ लो।

इन दोहों में जो गणागण का मेल दिखलाया गया है, वह इस प्रकार है:—

(१) राधारा धारम = मगण + भगण (मित्र और दास)
(२) मनप ठयोहै = नगण + यगण (दास और मित्र)
(३) ऊद्धव ह्यांतुम = भगण + भगण (दास और दास)
(४) कहौ यो गकीगा = यगण + यगण (दास और दास)
ये शुभ गण हैं
(५) कहाक हौं तुम = जगण + मगण (उदासीन और दास)
(६) प्राणना थकेमि = रगण + यगण (शत्रु और दास)
(७) फिरिपीछेपछि = सगण + भगण (शत्रु और दास)
(८) ऊधौस मुझौ चि = तगण + यगण (उदासीन और दास)

ये अशुभ गण हैं।

कवित्त संख्या २८ और २६ के अनुसार पहले और दूसरे उदाहरण का फल विजय होगा क्योंकि मित्र गण और दास गण साथ साथ पड़े हैं। तीसरे और चौथे उदाहरण में दास गणों का मेल हुआ है अतः परिणाम सर्वजीवों को वश में करनेवाला होना चाहिए। पाँचवें उदाहरण में उदासीन और दासगणों का साथ है; इसलिये परिणाम प्रभुता प्राप्ति होगा। छठें और सातवें उदाहरण में शत्रु और दास गण साथ साथ आ पड़े हैं इसलिए इसका परिणाम वनितानाश होना चाहिए। आठवें उदाहरण में उदासीन और दास गणों का मेल है, अतः परिणाम प्रभुता-प्राप्ति होना चाहिए।

छठे और आठवें उदाहरण में 'मि' 'चि' ह्रस्व होते हुए भी दीर्घ माने गये हैं क्योंकि पिंगलशास्त्र के अनुसार संयुक्त अक्षर के पहले का अक्षर दीर्घ माना जाता है। 'केशवदास' जी भी नीचे लिखे दोहे में यही बात कहते हैं:—

गुरु-लघुभेद वर्णन

संयोगी के आदि युत, बिंदु जु दीरघ होय।
सोई गुरु लघु और सब, कहैं सयाने लोय ॥३३॥

सयाने (चतुर या बुद्धिमान) लोग कहते हैं कि संयुक्ताक्षर के पहलेवाला अक्षर, बिंदु (अनुस्वार) युक्त तथा स्वयं दीर्घ अक्षर ही गुरु कहलाते हैं। इनके अतिरिक्त और सभी 'अक्षर लघु' हैं।

दीरघहू लघु कै पढ़ै, सुखहो मुख जिहिं ठौर।
सोऊ लघु करि लेखिये, केशव कवि सिरमौर ॥३४॥

'केशवदास' कहते हैं कि हे कवि शिरोमणि! जहाँ दीर्घ अक्षर को लघु करके पढ़ने में मुख को सुविधा होती हो, वहाँ उसे भी लघु ही समझना चाहिए।

उदाहरण

सवैया

पहिले सुखदै सबही को सखी, हरिही हितकै जुहरी मति मीठी।
दूजे लै जीवनमूरि अक्रूर, गयो अँग अंग लगाय अँगीठी॥
अबधौं केहिकारण ऊधव ये, उठिधाये लै केशव झूँठी बसीठी।
माथुर लोगनिके सँगकी यह वैठक तोहिं अजौं न उबीठी॥३५॥

हे सखी। पहले तो हरि (श्री कृष्ण) ने सबको सुख दिया और प्रेम करके सुबुद्धि हर ली। फिर अक्रूर आकर उन जीजनमूरि (श्री कृष्ण) को ले गये और इस तरह मानो उन्होंने अंग-अंग में अंगीठी लगा दी (जलन उत्पन्न कर दी-दुख दे दिया)। 'केशवदास' (सखी की ओर से) कहते हैं कि अब यह ऊधव झूठा संदेश लेकर क्यों आये हैं ? मथुरा के लोगों के साथ का उठना-बैठना तुझे अब भी अरुचिकर नहीं हुआ ?

(इस सवैया के पहले चरण में 'को' को दीर्घ लिखा गया है परन्तु उसका उच्चारण ह्रस्व की तरह होता है। इसी तरह दूसरे चरण में 'जे' और' 'लै' अक्षर ह्रस्व की तरह पढ़े जाते हैं। तीसरे चरण में 'ये' और 'लै' का उच्चारण भी ह्रस्व ही होता है।)

संयोगी के आदि युत, कबहुँक बरन विचारु।
केशवदास प्रकासबल, लघुकरि ताहि निहारु॥३६॥

केशवदास कहते हैं कि संयुक्तअक्षर के आदि के अक्षर को भी कभी-कभी अपनी बुद्धि के बल से 'लघु' ही समझना चाहिए। अर्थात् कभी-कभी संयुक्ताक्षर के पहले का अक्षर भी लघु माना जा सकता है)

उदाहरण

दोहा

अमल जुन्हाई चन्दमुखि, ठाढ़ी भई अन्हाय।
सौतिनिके मुखकमल ज्यौं, देखि गये कुम्हिलाय॥३७॥

चन्द्रमुखी जब स्नान करके खड़ी हुई तब उसकी चन्द्रमुख की निर्मल चाँदनी को देख कर सपत्नियों के मुखकमल मुर्झा गये।

[इस दोहे में 'जुन्हाई' तथा 'अन्हाय' शब्दों के 'जु' तथा 'अ' अक्षर संयुक्ताक्षर के पहले होने के कारण दीर्घ माने जाने चाहिए परन्तु यहाँ वे 'लघु' ही हैं।]

(२) हीनरस दोष

दोहा

बरनत केशवदास रस, जहाँ विरस ह्वै जाय।
ता कवित्तको हीनरस, कहत सकल कविराय ॥३८॥

'केशवदास' कहते हैं कि जहाँ किसी रस का वर्णन करते करते विरस हो जाय अर्थात् उसका पूर्ण परिपाक न हो तो उस कवित्त को सभी कविराज 'हीन रस' कहते हैं।

उदाहरण

सवैया

दै दधि, दीन्हों उधार है केशव, दान कहा जब मोललै खैहैं।
दीन्हें बिना तौ गई जु गई, न गई न गई घरही फिरि जैहैं ॥
गो हित बैर कियो, कबहो हित, बैर किये बरू नीके ह्वै रैहें।
बैरकै गोरस पेचहुगी अहो, बेंचो न बेंचो तो ढारि न दैहें ॥९॥

(केशवदास जी एक गोपी और श्री कृष्ण का उत्तर-प्रत्युत्तर वर्णन करते हुए लिखते हैं कि) श्रीकृष्ण ने जब कहा कि 'दही दो; तब गोपी ने उत्तर दिया कि मैं तों उधार दे चुकी (अर्थात् उधार न दूँगी, मोल लो)। तब श्रीकृष्ण बोले कि हम दान लेने वाले कैसे, जो मोल लेकर खायँ। और 'दान दिये बिना तो तुम जा चुकी!' गोपी ने उत्तर दिया कि—'बिना दान दिए मैं जाऊँ या न जाऊँ, कोई चिन्ता नहीं; यदि न गई तो घर ही को लौट जाऊँगी।' तब श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया कि 'तुमने मानों इस के लिए बैर किया।' वह बोली मेरा तुम्हारा प्रेम ही कब था? मैं तों तुमसे बैर करके ही सुखी

रहूँगी'। इस पर श्रीकृष्ण बोले कि 'तो बैर करके गोरस बेचोगी ?' तब गोपी ने उत्तर दिया कि 'यदि न बेच पाऊँगी तो फेंक न दूँगी। अर्थात् न बेच सकूँगी तो अपने काम में लाऊँगी; तुम्हें न दूँगी। [इस उदाहरण में शृंगार रस का आभास होने पर भी उपूर्ण परिपाक नहीं हुआ है। केवल मनोरंजक वार्तालाप मात्र है। अनुभाव तथा संचारी भाव कहीं दृष्टिगोचर नहीं होते, अतः इसमें हीन-रस दोष है।]

(३) यति-भंग दोष

और चरण के बरण जहँ. और चरण सों लीन।
सो यतिभंग कवित्त कहि, केशवदास प्रवीन ॥४०॥

जहाँ किसी एक चरण के अक्षर कटकर दूसरे चरण में चले जायं वहाँ 'केशवदास' उसे यतिभंग पूर्ण कवित्त कहते हैं अथवा 'केशवदास' कहते हैं कि हे प्रवीनराय ! वह यति-भंग पूर्ण कवित्त कहलाता है।

उदाहरण

दोहा

हर हरि केशव मदन मो, हन घनश्याम सुजान।
यों ब्रजवासी द्वारका, नाथ रटत दिनमान ॥४१॥

ब्रजवासी गण दिन-रात 'हर-हरि' 'केशव,' 'मदनमोहन,' 'घन-श्याम,' 'सुजान' और 'द्वारिकानाथ' रटा करते हैं। (इसमें मदनमोहन' का 'मदनमों' एक ओर आगया है और 'हन' दूसरी ओर चला गया है। इसी तरह 'द्वारकानाथ' के भी दो भाग हो गये हैं। 'द्वारका' एक हो गया है और 'नाथ' दूसरी ओर। अतः यति-भंग दोष है)

(४) व्यर्थ दोष

एक कवित्त प्रबन्ध में. अर्थ विरोध जु होय।
पूरब पर अनमिल सदा. व्यर्थ कहैं सब कोय ॥४२॥

जब एक ही कवित्त में अर्थ विरोध हो और पूर्वा पर अनमिल हो अर्थात् पूर्वापर ठीक-ठीक बैठता न हो, तब सब लोग उसे व्यर्थ दोष कहते हैं।

उदाहरण

मरहट्टा छन्द

सब शत्रु सँहारहु जीव न मारहु. सजि योधा उमराव।
बहुबसुमतिलीजै मो मति. कीजै लीजै अपनो दाँव ॥
कोउ न रिपु तेरो सब जग हेरो तुम कहियतु अतिसाधु।
कछु देहु मँगावहु भूख भगावहु हौ पुनि धनी अगाधु ॥४३॥

समस्त योधा उमराव सज कर शत्रुओं को मारो, तथा जीव न मारो, मेरी राय मानो, बहुतों की सम्मति लो। (शत्रु) से अपना दाँव लो। तुम्हारा कोई बैरी नहीं है। सब संसार देख डाला-तुम बड़े साधु कहलाते हो। कुछ मुझे मँगवा दो, मेरी भूख दूर कर दो, क्योंकि तुम अगाध धनी हो।

[इस छन्द में सभी बातें परस्पर विरोधी हैं। पहले कहा गया है कि 'शत्रु संहारो' फिर कहा गया है कि 'जीव न मारो'। ये दोनों परस्पर विरोधी हैं। इसीतरह 'लीजै अपनो दाँव' कहने के बाद 'कोउ न रिपु तेरो' कहना विरोध है। 'अगाध धनी से 'कुछ मांगना' भी विरोध है; उससे हुत माँगना चाहिए। अतः व्यर्थ दोष है।]

अपार्थ दोष

अर्थ न जाको समुझिये, ताहि अपारथ जानु।
मतवारो उनमत्त शिशु. कैसे वचन बखानु ॥४४॥

जिसका अर्थ न समझ सकों, उसे 'अपार्थ दोष' जानो और उसे मतवाले, उनमत्त और बच्चों जैसी बातें समझो।

उदाहरण

दोहा

पियेलेत नर सिंधु कहँ, है अति सज्वर देह।
ऐरावत हरिभावतो, देख्यो गर्जत मेह ॥४५॥

इस दोहे की सभी बातें अटपटी है। अर्थ की सगति कहीं भी नहीं मिलती, अतः इसमें 'अपार्थ दोष है।

(६) क्रमहीन दोष

क्रमही गुणनि बखानिके, गुणी गुनै क्रम हीन।
सो कहिये क्रमहीन जग, केशव कहत प्रवीन ॥४६॥

जब कुछ गुणों का क्रम से वर्णन करके फिर गुणियों का नाम गिनाते समय क्रम भंग हो जाय, तब उसे 'क्रमहीन' दोष कहते हैं।

उदाहरण

तोटक छन्द

जगकी रचना कहु कौने करी कहि राखन की जिय पैज धरी।
अति कोपकै कौन सँहार करै। हरजू हरिजू विधि बुद्धि ररै ॥४७॥

संसार की रचना किसने की? किसने संसार की रक्षा करने का प्रतिज्ञा की? अत्यन्त क्रुद्ध होकर कौन संहार करता है? बतलाओ। उत्तर में, बुद्धि हर, हरि और ब्रह्मा का नाम रटती है।

[इस छन्द में पहले तो ब्रह्मा, विष्णु और महेश के गुणों का क्रम से वर्णन किया गया है, परन्तु बाद में, उनके नाम गिनाते समय क्रम में उलट फेर कर दिया गया है, अतः 'क्रमहीन' दोष है। वास्तव में विधिजू, हरिजू, हरजू होना चाहिए। यही क्रम ऊपर गिनाये हुए गुणों के क्रम से मिलता है]

(७) कर्णकटु प्रयोग

दोहा

कहत न नीको लागई, सो कहिये कटुकर्ण।
केशव दास कवित्त में, भूलि न ताको वर्ण ॥४८॥

जो कहने सुनने में अच्छा न लगे उसे 'कर्णकटु दोष कहते हैं। 'केशवदास' कहते हैं कि इस दोष को भूल कर भी कवित्त में न लाओ।

उदाहरण

दोहा

वारन बन्यो बनाव तन, सुवरण बली विशाल।
चढ़िये राज मँगाइकै, मानहुँ राजत काल ॥४९॥

हे राजन्। जिस हाथी के शरीर की सुन्दर सजावट है, जो सुन्दर सुन्दर रंग वाला, बलवान तथा बड़ा है और जो मानो काल के समान सुशोभित है, उसे मंगाकर सवार हूजिए। (इस दोहे में 'मानहुँराजत काल' वाक्य सुनने में अप्रिय लगता है अतः कर्णकटु दोष है)

(८) पुनरुक्ति दोष

दोहा

एकबार कहिये कछू, बहुरि जो कहिये सोइ।
अर्थ होय कै शब्द अब, सुन पुनरुक्ति सो होइ ॥५०॥

जब एक बार कुछ कहने के बाद फिर उसी बात को कहा जाता है, तब 'पुनरुक्ति' दोष होता है, वह चाहे शब्द में हो या अर्थ में।

उदाहरण

सोरठा

मघवा घन आरूढ़. इन्द्र आजु अति सोहिये।
ब्रजपर कोप्यौ मूढ़, मेघ दशौ दिशि देखिये ॥५१॥

मघवा इन्द्र घन (बादलों) पर सवार है। इन्द्र आज बहुत अच्छा लगता है। वहमूढ़ ब्रजपर कुपित हुआ है। दशो दिशाओं में मेघ दिखलाई पड़ते हैं। [इस दोहे में 'मघवा', 'इन्द्र तथा 'घन' और 'मेघ' शब्दों में अर्थ की पुनरुक्ति है]

दोष निवारण

दोहा

दोष नहीं पुनरुक्ति को. एक कहत कविराज।
छांड़ि अर्थ पुनरुक्ति को, शब्द कहौ यहि साज ॥५२॥

एक कविराज कहते हैं कि यदि अर्थ की पुनरुक्ति को छोड़ कर शब्द की पुनरुक्ति करो तो कोई दोष नहीं होता।

उदाहरण

लोचन पैने शरनते, है कछु तोकहँ सुद्धि।
तन बेध्यो, मन बेधिकै, बेधी मनकी बुद्धि ॥५३॥

तुझे कुछ ध्यान भी है। उसके नेत्र बाणों से भी बढ़कर तीक्ष्ण हैं। उन्होंने शरीर वेध डाला, मन बेध डाला और मन की बुद्धि विवेकशक्ति भी वेध डाली।

(इसमें 'वेधना' क्रिया तीन बार भिन्न-भिन्न संज्ञाओं के साथ प्रयुक्त हुई हैं, अतः पुनरुक्ति दोष नहीं है)

देश—विरोध दोष

मलयानल मन हरत हठ, सुखद नर्मदा कूल।
सुबन सघन घनसार मय, तरुवर तरल सुफूल ॥५४॥

नर्मदा का किनारा सुखदायी है। वहाँ मलयानिल हठपूर्वक मन को हर लेता है। वहाँ सुन्दर घने कपूर के वन तथा सुन्दर फूलोंवाले वृक्ष हैं। (इसमें नर्मदा नदी के किनारे मलयानिल और कपूर का वर्णन करना देश-विरुद्ध है।)

मरुसुदेश मोहन महा, देखौ सकल सभाग।
अमलकमलकुलकलितजहँ; पूरण सलिल तड़ाग ॥५५॥

सभी भाग्यशालियो देखो ! मरुदेश बड़ा ही सुन्दर और मन को हरनेवाला है, जहाँ पानी से भरे हुए तालावों में निर्मल कमल खिले हुए हैं। (इसमें भी मरुभूमि के जल से भरे हुए तालावों में कमलों का वर्णन करना देश-विरुद्ध है क्योंकि मरुभूमि में तालावों का अभाव होता है।)

काल विरोधी दोष

प्रफुलित नव नीरज रजनि, बासर कुमुद विशाल।
कोकिल शरद मयूर मधु, वर्षा मुदित मराल ॥५६॥

रात में नवीन कमल और दिन में विशाल कुमुद पुष्प खिले हैं। शरद ऋतु में कोयल, वसन्त में मोर और वर्षा में हँस प्रसन्न होते हैं। (इसमें रात को कमल, दिन में कुमुदिनी, शरद ऋतु में कोयल, बसन्त में मोर और वर्षा में हंसों का वर्णन करना काल-विरुद्ध है)

लोक विरोधी दोष

स्थायी वीर सिंगार के, करुणा घृणा प्रमान।
तारा अरु मन्दोदरी, कहत सतीन समान ॥५७॥

वीर और श्रृंगार के स्थायी के साथ करुणा तथा घृणा का वर्णन करना और तारा तथा मन्दोदरी को सती स्त्रियों के समान कहना लोक-विरुद्ध हैं।

न्याय तथा आगमविरोधी दोष।

पूजौ तीनौं वर्ण जग, करि विप्रन सों भेद।
पुनि लीबो उपवीत हम, पढ़ि लीजै सब वेद ॥५८॥

ब्राह्मणों को छोड़कर तीनों वर्णों की पूजा करो। हम पहले वेद पढ़लें तब यज्ञोपवीत लेंगे। [इन दोनों वाक्यों में पहले वाक्य में नीति-विरोध है और दूसरे में आगम या शास्त्र-विरोध है।]

यहि विधि औरौ जानियहु, कविकुल सकल विरोध।
केशव कहे कछूक अब, मूढ़न के अविरोध ॥५९॥

हे कवि लोगो! इस तरह विरोधों के और भी बहुत से भेद समझ लो। 'केशवदास' कहते हैं कि मैंने उनमें से कुछ ही ऐसे भेदों का वर्णन किया है जिनका मूढ़ भी विरोध न करेंगे।

केशव नीरस विरस अरु, दुःसंधान विधानु।
पातर दुष्टादिकन को, 'रसिक प्रिया' ते जानु ॥६०॥

'केशवदास' कहते हैं कि 'नीरस', 'विरस' 'दुःसन्धान' और 'पात्र दुष्ट' आदि दोषों को 'रसिक प्रिया' ग्रन्थ से समझ लो।

चौथा-प्रभाव

कवि-भेद वर्णन

दोहा

केशव तीनहु लोक में, त्रिविध कविन के राय।
मति पुनि तीन प्रकार की. बरनत सब सुख पाय ॥१॥
उत्तम, मध्यम, अधम कवि, उत्तम हरि-रस लीन।
मध्यम मानत मानुषनि, दोषनि अधम प्रवीन ॥२॥

'केशवदास' कहते हैं कि तीनों लोकों में तीन प्रकार के कवि होते हैं। साथ ही सब लोग बुद्धि को भी तीन प्रकार की बतलाते हैं। वे तीनों प्रकार के कवि (१) उत्तम (२) मध्यम और (३) अधम कहलाते हैं। इनमें से जो उत्तम कवि होते हैं वे परमात्मा के यश में लीन रहते हैं अर्थात् ईश्वर के गुणों का गान अपनी कविता में किया करते हैं। जो मध्यम होते हैं, वे मनुष्यों के चरित्रों का वर्णन करते हैं और जो अधम होते हैं वे दूसरों के दोषों का ही बखान करते रहते हैं।

उदाहरण

सवैया

जो अति उत्तम ते पुरुषारथ, जे परमारथ के पथ सोहैं।
केशवदास अनुत्तम ते नर संतत स्वारथ संयुत जो हैं॥
स्वारथ हू परमारथ भोगनि मध्यम लोगनि के मन मोहैं।
भारत पारथ-मीत कहौ, परमारथ स्वारथहीन ते को हैं॥ ३॥

'केशवदास' कहते हैं कि जो कवि परमार्थ के पथ पर चलते हैं, वे अत्युत्तम अर्थात् प्रथम श्रेणी के हैं। जो सदा स्वार्थ में लीन रहते हैं वे

अनुत्तम अथवा द्वितीय श्रेणी के हैं। अर्थात् केवल धन-प्राप्ति के लिए कविता करते हैं)। जो 'मध्यम' या तृतीय श्रेणी के कवि हैं, उनकी कविता से न तो स्वार्थ ही बनता है और न परमार्थ की प्राप्ति होती है। इस श्रेणी के कवियों के सम्बन्ध में ही महाभारत में श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा है कि 'हे अर्जुन! जो परमार्थ और स्वार्थ से रहित कविता करते हैं, उन्हें क्या कहें।'

कवि रीति वर्णन

दोहा

साँची बात न बरनहीं, झूंठी बरननि बानि।
एकनि बरनैं नियम कै, कवि मत त्रिविध बखानि ॥४।

कवियों के वर्णन करने की बानि होती है कि वे (१) कभी सची बात को झूठ और (२) कभी झूटी बात को सची वर्णन करते हैं। एक तीसरे प्रकार के कवि ऐसे भी होते हैं जो सब बातों का वर्णन नियमानुकूल करते हैं। इस तरह कवियों के वर्णन के तीन मत (शैली) बतलाये गये हैं।

१—सत्य को मिथ्या कहना

दोहा

'केशवदास' प्रकास बहु, चंदन के फल फूल।
कृष्ण पक्ष की जोन्ह ज्यों, शुक्ल पक्ष तम तूल ॥५॥

'केशवदास' कहते हैं कि चन्दन के वृक्ष में प्रत्यक्ष रूप से फल और फूल दोनों रहते हैं। (परन्तु कविलोग केवल फूलों का वर्णन करते हैं।) इसी प्रकार कृष्ण और शुक्ल पक्ष में चाँदनी और अन्धकार बराबर मात्रा में रहते हैं। (परन्तु कवि केवल शुक्ल पक्षकाही वर्णन करते हैं)

झूठ कों सत्य कहना

जहँ जहँ वरणत सिंधु सब, तहँ तहँ रत्ननि लेखि।
सूक्ष्म सरवरहू कहैं, केशव हंस विशेखि॥६॥

'केशवदास कहते हैं कि कविलोग जहाँ-जहाँ समुद्र का वर्णन करते हैं, वहाँ-वहाँ रत्नों का भी उल्लेख कर देते हैं (यद्यपि प्रत्येक समुद्र में रत्न नहीं होते।) इसी प्रकार छोटे-छोटे तालाबों में भी हंसों का वर्णन किया करते हैं (यद्यपि वे केवल मानसरोवर में रहते हैं)।

दोहा

लेन कहैं भरि मूठ तम, सूजनि सियनि बनाय।
अंजुलि भरि पीवन कहैं, चंद्र चंद्रिका पाय।७।

(रावण का गुप्तचर बन्दरों की सेना को देखकर आने के बाद उससे कहता है कि उस सेना में ऐसे-ऐसे बन्दर हैं कि जो) अंधकार को सुई से सीकर मुट्ठी में भर लेने की बात कहते हैं और चन्द्रमा की चाँदनी को पाजाने पर अंजुलि में भर कर पीने की चर्चा किया करते हैं। (इसमें सभी बातें मिथ्या है परन्तु सत्य की तरह वर्णन कर दी गई हैं।)

दोहा

सबके कहत उदाहरण, बाढ़ै ग्रंथ अपार।
कछू कछू तात कह, कविकुल चतुर विचार।८।

इस प्रकार सब बातों का उदाहरण देने पर ग्रन्थ बहुत बढ़ जायगा। इसलिए कुछ थोड़े उदाहरण दे दिए हैं। चतुर कवि लोग (उन्हीं के आधार पर) स्वयं विचार कर लेंगे।

तम का झूठ वर्णन

कवित्त

कंटक न अटकै न फाटत चरण चपि,
बात ते न जात उड़ि अंग न उघारिये।
नेकहू न भीजत मुसलधार बरसत,
कीच न रचत रंच चित्त में बिचारिये।
'केशौदास सावकाश परम प्रकास न,
उसारिये पसारिये न पिय पै विसारिये।
चलिये जू ओढ़ि पट तमही को गाढ़ो तम,
पातरो पिछौरा सेत पाट को उतारिये।९॥

(कोई दूती अपनी नायिका से कहती है कि) स्वेत रेशमी पतली चद्दर को उतार कर अंधकार की घनी चादर को ही ओढ़ कर चलिए। क्योंकि यह अंधकार की चादर न तो काँटों में उलझेगी और न पैर के नीचे दबने पर फटेगी ही। यह न मूसलधार पानी में भीगेगी और न कीचड़ में तनिक भी सनेगी, इसे अच्छी तरह सोच लीजिए। (केशव दास, दूती की ओर से कहते हैं कि) इस चादर में बड़ी सुविधा है। इसमें प्रकाश नहीं है क्योंकि सफेद चादर की तरह दूर से चमकती नहीं और इसे चाहे जितना फैलाइए तथा इसमें प्रियतम के पास भूल आने का भय भी नहीं है।

चाँदनी के सम्बन्ध में झूठ वर्णन।

कवित्त

भूषण सकल घनसार ही के घनश्याम,
कुसुम कलित केस रही छवि छाई सी।
मोतिन की लरी सिर कंठ कंठमाल हार,
बाकी रूप ज्योति जात हेरत हिराई सी॥
चन्दन चढ़ाये चारु सुंदर शरीर सब,
राखी शुभ सोभा सब बसन बसाई सी।
शारदा सी देखियत देखो जाइ केशोराय,
ठाढ़ी वह कुँवरि जुन्हाई में अन्हाई सी॥१०॥

हे घनश्याम ! वह कपूर ही के सब गहने पहने हैं और बालों को सफेद फूलों से सजाए हुए है जिससे शोभा फैली हुई है। शिर पर मोतियों की लड़ी तथा गले में कंठमाला है जो उसके रूप में खो से गए हैं और वह उन्हें खोजती सी जान पड़ती है। वह पूरे शरीर पर चन्दन लगाए हुए है जिसने उसकी सुन्दर शोभा भी रखी है और वस्त्र भी महका दिये है। (केशवदास किसी दूती की ओर से कहते हैं कि) वह चाँदनी में नहाई हुई सी नायिका शारदा सी दिखलाई पड़ती है, उसे जाकर देखिए।

कविनियम वर्णन

दोहा

वर्णत चंदन मलयही, हिमगिरिही भुज पात।
वर्णत देवनि चरणते, शिरते मानुष गात॥११॥

कवि लोग चन्दन का वर्णन मलयपर्वत पर ही करते हैं और भोजपत्र को हिमालय पर ही बतलाते हैं। वे देवताओं के शरीर का वर्णन करते समय चरणों से तथा मनुष्यों के रूप का वर्णन करते समय शिर से आरम्भ करते हैं।

दोहा

अति लज्जायुत कुलवधू, गणिकागण निर्लज्ज।
कुलटाको दोविद कहहिं अंग अलज्ज सलज्ज॥१२॥

वे (कवि लोग) कुल-बधू को लज्जा युक्त, गणिकाओं को निर्लज्ज तथा कुलटा को (प्रंसगानुसार) निर्लज्ज और सलज्ज दोनों प्रकार से वर्णन करते हैं।

वर्णत नारी नरनते, लाज चौगुनी चित्त।
भूख दुगुन साहस छगुन, काम अठगुनो मित्त॥१३॥

वे (कवि) स्त्री में पुरुष से चौगुनी लज्जा, दूनी भूख, साहस छः गुना और काम अठगुना वर्णन किया करते हैं।

दोहा

कोकिल को कल बोलिवो, बरणत हैं मधुमास।
बरषाही हर्षित कहहिं, ककी केशवदास॥१४॥

केशवदास कहते हैं कि वे (कवि) लोग व संत में कोयल के बोलने का वर्णन करते हैं और वर्षा में ही मोर का हर्षित होना बतलाते हैं।

दनुजनिसोंदितिसुतनिसों, असुरै कहत बखानि।
ईशशीश शशिवृद्ध को, बरणत बालकबानि॥१५॥

वे (कवि) लोग दिति के पुत्रों को दनुज और असुर कहकर वर्णन करते हैं और महादेव जी के सिर पर वृद्ध (बहुत दिनों के पुराने) चन्द्रमा को बालक ही कहते हैं। (शिव जी के मस्तक का चन्द्रमा 'बाल-शशि' ही कहा जाता है)

दोहा

सहज सिंगारति सुंदरी, यदपि सिंगार अपार।
तदपि बखानत सकलकवि, सोरहई सिंगार ॥१६॥

यद्यपि सुंदरी स्त्री सहज ही में अनेक श्रृंगार करती है परन्तु सभी कवि केवल सोलह श्रृंगारों का ही वर्णन करते हैं।

सोलह श्रृंगार

कवित्त

प्रथम सकल सुचि, मज्जन, अमल बास,
जावक, सुदेश केशपासनि सुधारिबो।
अंगराग, भूषण विविध मुख बास राग,
कज्जल कलित लाल लोचन निहारिबो ॥
बोलनि, हँसनि चित चातुरीचलनि चारु,
पल पल प्रति पतिव्रत परि पारिबो।
'केशौदास' सबिलास करहु कुँवरि राधे,
यह विधि सोरह सिंगारन सिंगारिबो ॥१७॥

पहला सब प्रकार की शुचि क्रियाएं (दतौन, उबटन आदि), दूसरा मज्जन (स्नान), तीसरा अमलबास (निर्मल वस्त्रों का धारण करना); चौथा केश-पाश सुधारना (चोटी गूँथना), पाँचवें से लेकर दसवें तक अंगराग (जिसमें मांग में सिंदूर लगाना, मस्तक पर खौर देना, गालों पर तिल बनाना, अंग में केशर लगाना और हाथों में मेंहदी लगाना सम्मलित हैं) ग्यारहवाँ और बारहवाँ सोने और फूलों के गहने पहनना, तेरहवाँ मुख-बास (पान-इलायची आदि खाना), चौदहवाँ और पंद्रहवाँ मुखराग (मिस्सी लगाना और ओठों को रंगना) और सोलहवाँ सुंदर

काजल लगाकर चंचल नेत्रों से देखना। इन सोलह शृंगारों को करके बोल, हंसी, और सुन्दर चाल से प्रतिक्षण पतिव्रत का पालन करना चाहिए। 'केशवदास' कहते हैं कि—'हे राधे! इस तरह सोलह शृंगारों से अपने को सजाओ।'

दोहा

कुलटनि को पति प्रेमबस, बारबधुनि धन जानु।
जाहि दई पितु मातु सो, कुलजा को पति मानु ॥१८॥

कुलटा स्त्री का पति प्रेम और गणिकाओं का पति धन समझो और जिसे माता पिता दे दें उसे कुलवती स्त्री का पति मानो। (तात्पर्य यह है कि कुलटा स्त्री जिसे प्रेम करती है, उसे अपना पति मान लेती है, वेश्याएँ धन देनेवाले को पति समझती हैं और कुलवती स्त्री का वही पति होता है जिसे उसके माता पिता विवाह करके दे देते हैं)

महापुरुष को प्रगट ही, वरणत बृषभ समान।
दीप, थंभ, गिरि गज, कलश, सागर, सिंह, प्रमान ॥१९॥

महापुरुष को बृषभ, दीपक, स्तम्भ, गिरि, गज, कलश, सागर, और सिंह के समान वर्णन करते हैं।

उदाहरण

कवित्त

गुण मणि आगर अरु धीरज को सागरु,
उजागर धवल धरि धर्मधुर धाये जू।
खल तरु तोरिबे को, राजै गजराज सम,
अरि गज राजन को सिंह सम गाये जू॥
बामिन को बामदेव, कामिनि को कामदेव,
रण जय थंभ राम देव मन भाये जू।
काशी कुल कलश, सुबृद्ध जंबू दीप दीप,
केशोदास कल्पातरु इन्द्रजीत आये जू॥२०॥

'केशवदास' कहते हैं कि गुणरूपी मणियों की खान, धैर्य के सागर यशस्वी, धर्मात्मा, खलरूपी वृक्ष को तोड़ने के लिए हाथीस्वरूप, शत्रु-

रूपी गज के लिए सिंह के समान, विरोधियों के लिए श्री शंकर जैसे, स्त्रियों के लिए कामदेव स्वरूप, रण में विजय-स्तम्भ श्रीराम के समान, काशी-कुल-कलश, जंबू द्वीप (भारतवर्ष) के दीपक स्वरूप कल्पवृक्ष समान इन्द्रजीत पधारे हैं। दोहा

बृषभ कंध स्वर मेघसम, भुजधुज्ञ अहि परमान।
उरसम शिलाकपाट अँग, और तियानि समान ॥२१॥

पुरुषों के कंधे बृषभ के समान, उनका स्वर बादलों जैसा, भुजाएं ध्वजा और साँप जैसी और उर शिला या कपाट तुल्य वर्णन किया जाता है। उनके अन्य अँगों का वर्णन स्त्रियों के अंगों के समान ही किया जाता है। उदाहरण

कवित्त

मेघ ज्यों गंभीर वाणी, सुनत सखा शिखीन,
सुख, अरि हृदय जवासे ज्यों जरत हैं।
जाके भुजदंड भुवलोक के अभय ध्वज,
देखि देखि दुर्जन भुजंग ज्यों डरत हैं।
तोरिबे को गढ़तरु होत हैं सिला सरूप,
राखिबे को द्वारन किवार ज्यों अरत हैं।
भूतल को इन्द्र इन्द्रजीत राजै युग युग,
केशौदास जाके राज, राज सो करत हैं ॥२२॥

जिनकी बादलों जैसी गंभीर वाणी को सुनते ही मित्ररूपी मोर सुखी होते हैं और बैरियों का हृदय जवासे के समान जल जाता है। जिसके भुजदंड इस लोक की अभय ध्वजाएं जैसी हैं। जिनकी सर्प जैसी भुजाएं देख देख कर दुष्ट लोग डरते हैं। जिनकी भुजाएं गढ़ रूपी वृक्षों को तोड़ने के लिए शिला समान हैं और दरवाजों की रक्षा के लिए किवाड़ों जैसी अड़ जाती हैं, वे पृथ्वी के इन्द्र स्वरूप इन्द्रजीत सिंह युग-युग राज्य करते रहे, जिन के राज्य में केशवदास राज्य-सा करते हैं, अर्थात् राजा की तरह रहते हैं।

पांचवाँ-प्रभाव

काव्यालङ्कार

दोहा

यदपि सुजाति सुलच्छणी, सुबरनसरस सुवृत्त।
भूषण बिन न विराजई कविता वनिता मित्त ॥ १ ॥

हे मित्र ! कविता यद्यपि सुजाति (उच्चकोटि की), सुलक्षण (अच्छेलक्षणोंवाली) सुवरनसरस (अच्छे रसीले अक्षरों से युक्त) और (सुवृत्त अच्छे छन्दोंवाली) हो, तो भी बिना भूषण (अलंकार) के अच्छी नहीं लगती। इसी तरह से स्त्री भी सुजाति (अच्छे वंश की) सुलक्षणी (अच्छे लक्षणोंवाली), सुवरनसरस (अच्छे रंग की या गौरवर्ण तथा रसीली) और सुवृत्त (अच्छा बोलनेवाली) हो, तो भी बिना भूषण या (गहनों) के अच्छी नहीं लगती।

कविन कहे कवितानिके अलंकार द्वै रूप।
एक कहे साधारणहिं, एक विशिष्ट स्वरूप ॥ २ ॥

कवियों ने काव्यालंकारों के दो रूप वर्णन किये हैं। एक को साधारण कहते हैं और दूसरे को विशिष्ट।

सामान्य

सामान्यालंकार को, चारि प्रकार प्रकास।
वर्ण, वर्ण्य भू-राज श्री, भूषण केशवदास ॥ ३ ॥

'केशवदास' कहते हैं कि सामान्यलंकार के चार प्रकार हैं। (१) वर्ण (२) वर्ण्य (३) भूमि-श्री (४) राज्य-श्री।

(१) वर्णालंकार

श्वेत, पीत, कारे, अरुण, धूम्र, सुनीले, वर्ण।
मिश्रित, केशवदास कहि, सात भाँति शुभ कर्ण ॥ ४ ॥

'केशवदास' कहते हैं कि कविता में श्वेत, पीला, काला, लाल, धूम्र, नीला और मिश्रित ये सातरंग ही शुभकरण (मंगलकारी) माने जाते है।

श्वेतवर्णन

कीरति. हरिहय, शरदघन, जोन्ह. जरा, मंदार।
हरि. हर, हरगिरि सूर, शशि, सुधासौध घनसार ॥ ५ ॥

कीर्त्ति, इन्द्र, शरदघन, चाँदनी, बुढ़ापा, कल्पवृक्ष, हरि (श्रीविष्णु) हर (श्री महादेव), कैलाश पर्वत, सूर्य, चन्द्रमा, चूना और कपूर।

बल, बक, हीरा, केवरो. कौड़ा करका कांस।
कुंद केंचुली कमल, हिमि, सिकता भसम कपास ॥ ६ ॥

श्री बलदेव जी, बगुला, हीरा, केवड़ा, कौड़ी, ओला, कांस, कुंद, केंचुली, कमल, बर्फ, बालू, भस्म और कपास।

खाँड, हाड़, निर्झर चँवर, चंदन, हंस, मुरार।
छत्र, सत्ययुग, दूध, दधि, शंख. सिंह, उड़मार ॥ ७ ॥

खांड (चीनी) हाड़, झरना, चँवर, चंदन, हंस, कमल की जड़, छत्र, सत्ययुग, दूध, दही, शंख, सिंह, और तारे।

शेष, सुकृति, शुचि, सत्त्वगुण, संतन के मन, हास।
सीप. चून, भोंडर, फटिक, खटिका, फेन, प्रकास ॥ ८ ॥

शेषनाग, सुकृति, (पुण्य) सत्वगुण, सज्जनों का हास्य, सीप, चूना, अबरक, स्फटिक, खड़िया, फेन और प्रकाश।

शुक्र, सुदरशन, सुरसरित, वारन. बाजि, समेत।
नारद, पारद, अमलजल, शारदादि सब श्वेत ॥ ९ ॥

शुक्र, सुदर्शन, सुरसरित (गंगा), सुरवारन (ऐरावत), सुरबाजि (उच्चैश्रवा), नारदमुनि, पारद (पारा), निर्मल जल, और शारदाजी (सरस्वती) ये सब श्वेत हैं।

State Museum,
LUCKNOW.

उदाहरण (१)

कवित्त

कीन्हें छत्र छितिपति, केशौदास गणपति,
दसन, बसन, बसुमति कह्याचारु है।
बिधि कीन्हों आसन, शरासन असमसर,
आसन को कीन्हो पाकशासन तुषारु है।
हरि करी सेज हरिप्रिया करो नाक मोती,
हर करयो तिलक हराहू कियो हारु है।
राजा दशरथ सुत सुनौ राजा रामचन्द्र,
रावरो सुयश सब जग को सिंगारु है ॥ १०॥

'केशवदास कहते हैं कि—हे राजा दशरथ के पुत्र श्रीरामचन्द्र सुनो ! आपका सुयश सारे संसार के श्रृंगार का कारण है; क्योंकि राजाओं ने अपने छात्र, उसीसे निमित किये हैं और श्री गणेशजी ने अपना दाँत भी उसीसे बनाया है। पृथ्वी ने अपना सुन्दर वस्त्र (सागर) ब्रह्मा ने अपना आसन (पुंडरीक)कामदेव ने अपना धनुष, इन्द्रने अपना घोड़ा (उच्चैःश्रवा), नारायण ने अपना बिछौना शेषनाग), श्रीलक्ष्मी जी ने अपनी नाक का मोती, श्रीशङ्कर जी ने अपना तिलक (चन्द्रमा) और पार्वती जी ने उसे अपना हार बनाया है।

उदाहरण (२)

कवित्त

देहदुति हलधर कीन्हीं, निशिकर कर,
जगकर वाणीवर, विमल विचारु है।
मुनिगण मन मानि, द्विजन जनेऊ जानि,
संख, संखपानि पानि सुखद अपारु है ॥
'केशौदास' सविलास विलसै, विलासनीन,
सुखमुख मृदुहास, उदय उदारु है।
राजा दसरथ सुत सुनो राजा रामचन्द्र,
रावरो सुयश सब जग को सिंगारु है ॥११॥

श्रीबलराम जी ने अपने शरीर की द्युति बनाया । चन्द्रमा ने अपनी किरणें, ब्रह्माजी ने वाणी और बिमल विचारवाले मुनियों ने अपने मन, ब्राह्मणों ने जनेऊ और शंखपाणि (श्रीनारायण) ने अपने हाथ का अपार सुखदायी शंख उसी यश को बनाया है। 'केशवदास' कहते हैं कि स्त्रियों में विलास और मृदुहास्य का उदार उदय उसी से होता है। अतः हे राजा रामचन्द्र। आपका सुयश सारे जगत की शोभा का कारण बन रहा है।

उदाहरण—३

कवित्त

नारायण कीन्हीं मनि, उर अवदात गनि
कमला की वाणी मनि, शोभा शुभसारु है।
'केशव' सुरभि केश, शारदा सुदेश वेश
नारद को उपदेश, विशद बिचारु है॥
शौनक ऋषी विशेषि, शीरष शिखानि लेखि
गंगा की तरंग देखि, विमल विहारु है।
राजा दशरथ सुत सुनौ राजा रामचन्द्र,
रावरो सुयश सब जग को सिंगारु है ॥१२॥

श्री नारायण ने उसे अपने उदार हृदय की मणि (कौस्तुभ) बनाया है। लक्ष्मी जी की वाणी तथा शोभा का शुभ सार भी वही है। 'केशव' कहते हैं कि चमरी गाय ने अपने केश और सरस्वती जी ने अपना सुन्दर वेश उसी यश से बनाया है। नारद जी का उपदेश तथा उनके विशद विचार उसीसे निर्मित हुए हैं। शौनकादि ऋषियों की चोटियां, गंगाजी की लहरें तथा जीवों के निर्मल व्यवहार भी उसी से बने हैं। अतः हे राजा रामचन्द्र ! आपका सुयश सारे संसार की शोभा का कारण बन रहा हैं।

जरावर्णन

सवैया

बिलोकि शिरोरुह श्वेतसमेत, तनोरुह केशव यों गुण गायो।
उठे किधौं आयु की औधिकेअँकुर, शूल कि सुःख समूल नशायो॥
लिख्यो किधौं रूपके पाणि पराजय, रूपको भूप कुरूप लिखायो।
जरा शरपंजर जीव जरयो कि जुरा जरकंबर सो पहिरायो॥१३॥

शरीर के रोयां सहित शिर के बालों कों श्वेत होता हुआ देखकर 'केशव' ने उनका यों वर्णन किया है। ये सफेद बाल हैं या आयु की समाप्ति के अंकुर हैं अथवा शूल हैं, जिन्होंने सारे सुखो को समूल नष्ट कर दिया है। अथवा जरारूपी कुरूप राजा ने रूप (सुन्दरता) से चाँदी के पानी से पराजय का पत्र लिखा लिया है, (जिसके ये सफेदबाल सफेद-सफेद अक्षर हैं) या जरा (बुढ़ापे) के बाणों ने जीव को चारों ओर से घेर लिया है अथवा मृत्यु ने जीव को जरी का कम्बल उढ़ा दिया है।

सवैया

अभिराम सचिक्कन श्याम, सुगंधके धामहुते जे सुभाइकके।
प्रतिकूल सबै दृगशूल भये, किधौं शाल शृंगारके घाइकके॥
निजदूत अभूत जरा के किधौं, अफताली जरा जनलाइकके।
सितकेश हिये यहि वेश लसै, जनु साइक अंतकनाइकके॥१४॥

जो बाल सुन्दर, [चिकने, काले सुगंध के सुन्दर घर थे, वे सब अब उलटे आँखों के शूल (दुखदेनेवाले) हो गये हैं। ये सफेद बाल हैं या शृंगार (शोभा) को नष्ट करनेवाले के हाथ के शाल (अस्त्र विशेष) हैं। अथवा ये सफेद बाल बुढ़ापे के अद्भुत दूत हैं या वृद्धावस्था के योग्य अधिकारी हैं। ये सफेद बाल ऐसे ज्ञात होते हैं मानों यमराज के बाण हों।

सवैया

लसैं सितकेश शरीर सबै कि जरा जस रूपके पानी लिखायो।
सुरूपको देश उदासकै कीलनि कीलितु कैकै कुरूप नसायो॥
जरैं किधौं केशव व्याधिनिको, किधौं आधि के अंकुर अंत न पायो।
जरा शरपंजर जीव जरयो, कि जुरा जरकंबर सो पहिरायो॥१५॥

शरीर भर में ये सफेद बाल हैं या बुढ़ापे ने चांदी के पानी से अपनी कीर्त्ति लिखा ली है। (ये बाल मानों उसीके अक्षर हैं)। अथवा कुरूप ने सौन्दर्य के देश को उद्दासन मंत्र की कीलों को गाड़

कर नष्ट कर दिया है। 'केशव' कहते हैं कि अथवा ये सफेद बाल व्याधियां (शारीरिक रोगों) की जड़ें हैं या आधि (मानसिक रोगों) के अंकुर हैं, जिनका अंत नहीं मिलता। जरा (बुढ़ापे) ने जीव को चारो ओर बाणों से घेर लिया है अथवा मृत्यु ने जीव को जरी का कम्बल पहना दिया है। (२) पीतवर्णन

दोहा

हरिवाहन, विधि, हरजटा, हरा, हरद, हरताल।
चंपक, दीपक, वीररस, सुरगुरु, मधु, सुरपाल ॥१६॥

गरुड़ ब्रह्माजी, शिवजी की जटाएँ, हल्दी, हड़ताल, चंपक दीपक, वीर-रस, वृहस्पति, मधु और इन्द्र।

सुरगिरि, भू, गोरोचना, गंधक, गोधनमूत।
चक्रवाक, मनशिल सदा, द्वापर, वानरपूत ॥१७॥

सुमेरु पर्वत, पृथ्वी, गोरोचना, गंधक, गोमूत्र, चकवा, मैनशिल, द्वापर युग और बन्दर का बच्चा।

कमलकोश, केशव-वसन, केसरि, कनक, सभाग।
सारोमुख, चपला, दिवस, पीतरि, पीतपराग ॥१८॥

हे सभाग ! कमल का बीजकोश, केशव-वसन (श्रीकृष्ण का वस्त्र-पीताम्बर) केशर, सोना, मैना का मुख, बिजली, दिन, पीतल और पराग ये सब पीले माने जाते है।

उदाहरण

सवैया।

मंगलही जु करी रजनी विधि, याहिते मंगली नाम धरयो है।
दीपति दामिनि देहसवाँरि, उड़ायदई घन जाइ वरयो है।
रोचनको रचि केतकी चंपक फूलनि में अँगवासु भरयो है।
गौरि गोराईको मैल मिलैकरि, हाटक तें करहाट करयो है ॥१६॥

श्रीब्रह्माजी ने पार्वती जी के मांगल्य गुणों से युक्त हल्दी बनाई, इसीसे उसका नाममंगली पड़ा। उनके शरीर की दीप्ति से बिजली का निर्माण

करके ऊपर उड़ादिया, जिसने जाकर बादलों को जलाना आरम्भ किया। उनके अंग की सुवास से रोचन बनाया और केतकी तथा चंपक पुष्पों में भी सुगंध भरदी। इसके बाद गौरी जी के शरीर का मैल लेकर सोने से करहार (कमल का बीज कोश) तक का निर्माण किया।

१४ मवरणन

दोहा

विन्ध्य, वृक्ष, आकाश, असि, अरजुन, खंजन, सांप।
नीलकंठका कंठ, शनि, व्यास, बिसासी, पाप॥२०॥

विन्ध्यपर्वत, वृक्ष, आकाश, तलवार, अर्जुन, खंजन सांप, श्रीमहादेव जी का कंठ, शनि, व्यास, विश्वासघाती और पाप।

राकस, अगर, लंगूरमुख, राहु, छाह, मद, रोर।
रामचन्द्र, घन, द्रौपदी, सिंधु, असुर, तम, चोर॥२१॥

राक्षस, अगरु, लंगूर का मुख, राहु छाया, मद (नशा) रोर (दरिद्र), श्रीरामचन्द्र, बादल, द्रौपदी, समुद्र की मूर्ति, अंधकार और चोर।

जंबू, जमुना, तैल, तिल, खलमन सरसिज, चीर।
भील, करी, वन, नरक, मसि, मृगमद, कज्जल नीर॥२२॥

जामुन फल, यमुना, तैल, तिल, सरसिज (नीला कमल), चीर (एक तरह का वस्त्र जो गहरा नीला होता है), भील, करी (हाथी) वन, नर्क, मसि (स्याही), मृगमद (कस्तूरी) और काजल मिला आँसू।

मधुप, निशा, शृंगाररस, काली, कृत्या, कोल।
अपयश, ऋक्ष, कलंक, कलि, लोचन, तारे लोल॥२३॥

भौंरा, रात शृंगार रस, काली देवी, कृत्याशक्ति, कोल (सूअर) अपयश, रीछ, कलंक, कलियुग, और आंखों के चंचल तारे।

मारग अगिनि, किसान नर, लोभ, छोभ, दुख, द्रोह।
विरह, यशोदा, गोपिका, कोकिल, महिषी लोह ॥२४॥

अग्नि का मार्ग, किसान मनुष्य, लोभ, छोभ, दुःख, द्रोह, विरह, यशोदा, ग्वालिन, कोयल, भैंस और लोंहा।

कांच, कीच, कच, काम, मल, केकी, काक, कुरूप।
कलह, छुद्र, छल आदिदै, काले कृष्णसुरूप ॥२५॥

कांच, कीच, बाल, मोर, कौआ, कुत्सितरूप, कलह, क्षुद्र छल आदि भाव और श्रीकृष्ण का स्वरूप-ये काले रंग के माने जाते हैं।

उदाहरण-(१)

कवित्त

बैरिन के बहु भांति देखत ही लागि जाति,
कालिमा कमलमुख सब जग जानी है।
जतन अनेक करि यदपि जनम भरि,
धोवत हू न छूटत केशव बखानी है॥
निज दल जागै जोति, पर दल दूनी होति,
अचला चलति यह अकह कहानी है।
पूरन प्रताप दीप अंजन की राजै रेख,
राजै श्रीरामचन्द्र पानि न कृपानी है॥२६॥

सारा संसार जानता है कि श्रीरामचन्द्र की तलवार को देखते ही वैरियों के कमल-मुख में कालिमा लग जाती है। 'केशव' कहते हैं कि वह कालिमा जन्म भर यत्न करने पर भी धोने से भी नहीं छूटती। उसकी जितनी ज्योति अपने दल में होती है, उससे दूनी शत्रुओं के दल में होती है। उसके भय से पृथ्वी डगमगा जाती है; उसकी कथा अकथनीय है। श्रीरामचन्द्र के हाथ में जो तलवार सुशोभित हो रही है, वह तलवार नहीं प्रत्युत उनके पूर्ण प्रताप रूपी दीपक के काजल की रेखा है।

उदाहरण (२)

कवित्त

हंसनि के अवतंस रचे रंच कीच करि,
सुधा के सुधारे मठ कांच के कलससों।
गंगाजू के अंग संग यमुना तरंग बल,
देव का बदन रच्यो वारुणी के रससों ॥
केशव कपाली कंठ कूल कालकूट जैसे,
अमल कमल अलि सोहै ससि सस सों।
राजा रामचन्द्र जू के त्रास बस भारे भूप,
भूमि छोंड़ि भागे फिरैं ऐसे अपजस सों ॥२७॥

जिस प्रकार कीचड़ से युक्त सुन्दर हंस और कांच के कलश से युक्त स्वच्छ मठ, या यमुना की तरंगों से युक्त गंगा, या मदिरा के नशे से युक्त बलदेव जी का मुख या (केशव कहते हैं कि) शिवजी का विष से युक्त गला, या कालकूट विष या भौंरों से युक्त स्वच्छ कमल या मृगांक से युक्त चन्द्रमा कलंकित होता है, उसी प्रकार पराजित होने पर अपयश से हम भी, कलंकित होंगे, यही सोचकर श्रीरामचन्द्रजी के डर के मारे, सभी राजा लोग अपना राज्य छोड़कर भागे-भागे फिरते हैं।

४—अरुण वर्णन

इंद्रगोप, खद्योत कुज, केसरि, कुसुम, विशेखि।
केशव, गजमुख, बालरवि, तांबो, तच्छक. लेखि ॥२८॥

इन्द्रगोप (वीरबहूटी), खद्योत (जुगनू), कुज (मंगल ग्रह), केशर, कुसुम (एक तरह का लाल फूल), श्रीगणेशजी, बालरवि (प्रातः काल के सूर्य),, तांबा और तच्छक।

रसना, अधर, दृगंत, पल, कुक्कुट शिखा समान।
मानिक, सारस सीस. शुक, वानरवदन प्रमान ॥२९॥

जिह्वा, ओठ, आँखों के कोने, पल (मांस), कुक्कुट शिखा (मुर्गे की चोटी), माणिक्य, सारस का शिर और बन्दर का मुख।

कोकिल, चाख, चकोर, पिक, पारावत नख नैन।
चंचु चरन कलहंसके. पाकी कुँदरू ऐन ॥३०॥

कोयल, चाख (नीलकंठ), चकोर, पिक (पपीहा) और पारावत (कबूतर) पक्षियों के नख तथा आँखे, हंस की चोंच तथा चरण और पका हुआ कुंदरू।

जपाकुसुम. दाड़िमकुसुम, किंशुक कंज अशोक।
पावक. पल्लव वीटिका, रंग रुचिर सब लोग ॥३१॥

जपाकुसुम (गुड़हर का फूल), दाड़िम कुसुम (अनार का फूल) किंशुक पुष्प, कंज (कमल), अशोक, पावक (अग्नि), और वीटिका (पान का बीड़ा)।

रातो चंदन, रौद्ररस, छत्रीधर्म्म मँजीठ।
अरुण, महाउर, रुधिर, नख, गेरू, संध्या ईठ ॥३२॥

लाल चंदन, रौद्ररस, क्षत्रिय का धर्म, मंजीठ, अरुण (सूर्य के सारथी), महावर, रुधिर (रक्त), नख, गेरू, और संध्या—हे मित्र ! ये सभी सुन्दर लाल रंग के माने जाते हैं।

उदाहरण

सवैया

फूले पलास विलासथली बहु केशवदास हुलास न थोरे।
शेष अशेषमुखानलकी जनु, ज्वालविशाल चली दिविओरे।
किंशुक श्रीशुकतुंडनि की रुचि, राचै रसातलमें चितचोरे।
चंचुनिचापि चहूँ दिशि डोलत, चारुचकोर अँगारनि भोरे ॥३३॥

'केशवदास' कहते हैं कि विलास्थली में बहुत से पलाश के वृक्ष फूल रहे हैं, जहाँ कम आनन्द नहीं होता। उन फूलों को देखकर ऐसा ज्ञात होता है, मानो शेषनाग जी के मुखों की अग्नि की बड़ी-बड़ी लपटें आकाश की ओर चली जा रही हैं। पलाश के पुष्प तोते की चोंच की भाँति रंगदार हैं और इस पृथ्वी भर में लोगों का चित्त चुराए लेते हैं। चकोर पक्षी (इन फूलों को) धोखे से अंगार मानकर अपनी चोंच में दबाए हुए चारों ओर घूमते हैं।

५—धूम्र वर्णन

दोहा

काककण्ठ, खर, मूषिका, गृहगोधा भनि भूरि।
करभ, कपोतनि आदिदै, धूम्र, धूमली, धूरि ॥३४॥

कौए की गर्दन, गदहा, चुहिया, गृहगोधा (छिपकली), करभ (ऊँट), कबूतर, धूमिली (धुएं के रंग की गाय), और धूल इत्यादि धूम्रवर्ण के कहे जाते हैं।

उदाहरण

सवैया

राघवकी चतुरंगचमू चपि धूरि उठी जलहूँ थल छाई।
मानो प्रताप हुताशन धूमसो, केशवदास अकास न माई॥
मेटिकै पंच प्रभूत किधौं, विधि रेनुमई नवरीति चलाई।
दुःख निवेदनको भवभारको, भूमि मनौं सुरलोक सिधाई।२५।

श्रीरामचन्द्र जी की चतुरंगिणी सेना के सिपाहियों (तथा हाथी-घोड़ों) के पैरों से दबकर जो धूल उठ रही है, वह जल और स्थल सभी जगहों पर छा गई है। 'केशवदास' कहते हैं कि वह धूल ऐसी जान पड़ती है मानों उनके प्रताप रूपी आग का धुआं है जो आकाश में भी नहीं समा पाता। अथवा (यह उड़ी हुई धूल ऐसी लगती है कि) ब्रह्मा ने मानो पाँच तत्वों को हटाकर केवल धूलमयी रचना करने की नई प्रणाली चलाई है। या ऐसा जान पड़ता है कि अपने भार के दुःख को सुनाने के लिए पृथ्वी स्वर्गलोक को चली जा रही है।

६—नील वर्णन

दोहा

दूब, वंश, कुवलय, नलिन, अनल, व्योम; तृण, बाल।
मरकतमणि, हयसूरके, नीलवरण सेबाल ॥३६॥

दूब (दूर्वा घास), कुवलय (नीला कमल), नलिन, (नीली कुमुदनी) अनिल (वायु), व्योम (आकाश), तृण, बाल (केश), मरकत मणि (नीलम) सूर्य के घोड़े और सैवाल (सिवार) नील रंग के माने जाते हैं।

उदाहरण

सवैया

कण्ठ दुकूल सुओर दुहूँ उर यों, उरमैं बलकै बलदाई।
केशव सूरजअंशनि मंडि, मनो जमुनाजलधार सिधाई॥
शंकरशैल शिलातलमध्य, किधौं शुककी अवली फिरि आई।
नारद बुद्धिविशारद हाय, किधौं तुलसीदलमाल सुहाई॥३७॥

शक्तिदायी श्री बलराम जी के गले में दुकूल (दुपट्टे) के दोनों ओर हृदय पर लटक रहे हैं। 'केशवदास' कहते हैं कि वे ऐसे ज्ञात होते हैं मानों सूर्य ने यमुना के जल की धारा को अपनी किरणों से युक्त करके वहीं से उतारा है। अथवा ऐसा जान पड़ता है मानों कैलाश पर्वत पर तोतों की पंक्ति बैठी हुई है या बुद्धिमान नारद जी के हृदय पर तुलसी दल की माला झूल रही है।

मिश्रित वर्णन

(क) श्वेत और काला

सिंहकृष्ण हरि शब्दगुनि, चंद विष्णु बिधु देखि।
अभ्रकधातु अकार। पुनि, श्वेत श्याम चित लेखि॥३८॥

हरि शब्द के सिंह और कृष्ण दो अर्थ हैं इसलिए अर्थ के अनुकूल ही रंग मानना चाहिए अर्थात् जब सिंह का अर्थ निकले तब श्वेत और श्रीकृष्ण का अर्थ हो तब काला समझना चाहिए। इसी तरह 'बिधु' शब्द के भी दो अर्थ होते हैं, 'चन्द्रमा' और 'विष्णु'। इनमें से 'चन्द्रमा' श्वेत और 'विष्णु' श्याम माने जायंगे। 'अभ्रक' के भी दो अर्थ होते हैं (१) 'अभ्रक' धातु और (२) आकाश। 'अभ्रक' श्वेत और 'आकाश' काला माना जायगा।

घनकपूर घनमेघ अरु, नागराज गज शेषु।
पयोराशि कहि सिंधुमो, अरु छिति छीरहि लेषु ॥३९॥

'घन' का अर्थ 'कपूर' और 'बादले' होता है। कपूर से श्वेत और बादल से काला रंग मानना चाहिए। 'नागराज' के 'हाथी' और 'शेष' दो अर्थ होते हैं। 'हाथी' से कालारंग और 'शेष' से श्वेत रंग समझना चाहिए। इसी तरह 'पयोराशि' के 'समुद्र' और 'दुग्ध समूह' दोनों अर्थों में से 'समुद्र' का काला और 'दूध' का श्वेत रंग माना जायगा।

राहु सिंह सिंहीजभनि, हरि बलभद्र अनन्त।
अर्जुन कहिये श्वेतसों, अरु पारथ बलवन्त ॥४०॥

'सिंहीज' शब्द के अर्थ 'राहु' और 'सिंह' हैं। पहले का रंग काला और दूसरे का श्वेत समझा जाता है। 'अनन्त' शब्द के दो अर्थ 'श्रीकृष्ण' और 'बलराम' में से श्रीकृष्ण का अर्थ काला और 'बलराम' का श्वेत समझना चाहिए। 'अर्जुन' शब्द से श्वेत रंग माना जायगा और 'पार्थ' से 'काला'।

हरिगजसुरगज समुझिये, फिर हरि गजगज जानि।
कोकिल सों कलकण्ठकहि, अरु कलहंस बखानि ॥४१॥

'हरिगज' शब्द के दो अर्थ हैं। जब उसका अर्थ इन्द्र का हाथी-ऐरावत होगा तब उसका रंग श्वेत मानना चाहिए और जब 'विष्णु' का हाथी, जिसे उन्होंने बचाया था' अर्थ होगा, तब उसका रंग काला समझना चाहिए। इसी भाँति 'कलकंठ' से 'कोयल' और 'कलहंस' दो अर्थ निकलते हैं। कोयल काली मानी जायगी और 'कलहंस' श्वेत।

कृष्णनदीवरशब्द सों, गंगासिंधु बखानि।
नीरद निकसे दन्तको, अरुजु नीरको दानि ॥४२॥

'कृष्ण नदीवर' शब्द से 'गंगा' और 'समुद्र' दो अर्थ निकलते हैं। पहले अर्थ से श्वेत रंग और दूसरे से काला मानना चाहिए। इसी प्रकार 'नीरद 'मुँह से निकले हुए दाँत' और 'बादल' दोनों को कहते हैं। पहला श्वेत रंग का सूचक हैं और दूसरा काले रंग का'।

(ख) श्वेत और पीत

शिव विरंचिसों 'शंभु' भणि, रजतरजत अरु हेम।
स्वर्ण शरभ सों कहत हैं. अष्टापद करि नेम ॥४३॥

'शंभु' शब्द से शिवजी और ब्रह्माजी दोनों माने जाते हैं। जब 'शिवजी' अर्थ होगा तब श्वेत रंग माना जायगा और जब 'ब्रह्मा' अर्थ होगा तब पीला। इसी प्रकार 'रजत' शब्द 'चाँदी' के अर्थ में श्वेत और 'सोने' अर्थ में पीला मानिए। 'अष्टापद' सोने और शरभ नामक जंतु को कहते हैं। पहले अर्थ में पीला और दूसरे अर्थ में श्वेत रंग मानना चाहिए।

सोम स्वर्ण अरु चंद कलधौत रजत अरु हेम।
तारकूट रूपो रुचिर. पीतरि कहकरि प्रेम ॥४४॥

सोम 'शब्द 'सोना' और चन्द्रमा' दोनों के लिए प्रयुक्त होता है। सोना पीला समझिए और चन्द्रमा श्वेत। 'कलधौत' शब्द के दो अर्थों में से चाँदी को श्वेत और सोने को पीला मानिए। 'तारकूट' के दो अर्थ 'चाँदी' तथा 'पीतल' में से चाँदी श्वेत रंग की सूचक मानी जायगी और 'पीतल' पीले रंग की।

(ग) श्वेत और लाल

श्वेतवस्तु शुचि. अगिनि शुचि, सूर सोम हरि होइ।
पुष्कर तीरथ सों कहैं पंकज सों सब लोइ ॥४५॥

'शुचि' श्वेत को भी कहते हैं और 'अग्नि' को भी। पहला अर्थ श्वेत रंग का सूचक है और दूसरा लाल रंग का। इसी तरह 'हरि' शब्द के भी दो अर्थ होते हैं-सूर्य तथा चन्द्रमा। सूर्य लाल रंग के सूचक हैं

और चन्द्रमा श्वेत रंग के माने जाते हैं। 'पुष्कर' तीर्थ जल से भी कहते हैं और 'लाल कमल' से भी। पहला श्वेत रंग का माना जाता है तथा दूसरा लाल रंग का सूचक है।

'हंस' हंसरवि वर्णिये, 'अर्क' फटिक रवि मानि।
'अब्ज' शंख सरसिज दुवौ, कमलकमलजलजानि ॥४६॥

'हंस' शब्द के 'हंस पक्षी' और 'सूर्य' दोनों अर्थ माने जाते हैं। 'हंस' श्वेत रंग का बोधक है और सूर्य' लाल रंग के सूचक हैं। 'अर्क' शब्द के 'स्फटिक' और 'सूर्य' दोनों अर्थों में स्फटिक से श्वेत रंग माना जायगा और 'सूर्य' से लाल रंग। 'अब्ज' शब्द के 'कमल' और 'शंख' दो अर्थ हैं। कमल लाल रंग का सूचक है तथा 'शंख' श्वेत रंग का। इसीप्रकार 'कमल' शब्द से 'कमल' और 'जल' अर्थ सूचित होते हैं। 'कमल' लाल माना जाता है और 'जल' श्वेत समझा जाता है

छठां-प्रभाव

वर्ण्य वर्णन ।

संपूरण, आवरत, औ, कुटिल, त्रिकोण, सुवृत्त ।
तीक्षण गुरु कोमल, कठिन, निश्चल, चंचलचित्त ॥१॥
सुखद दुखद, अरु मंदगति, शीतल, तप्त, सुरूप ।
क्रूरस्वर, सुस्वर, मधुर, अबल बलिष्ठ अनूप ॥२॥
सत्य, झूठ मण्डलवरणि, अगति, सदागति दानि ।
अष्टविंशावधि, मैं कह, वर्ण्य अनेक बखानि ॥३॥

सम्पूर्ण, आवर्त्त, कुटिल, त्रिकोण, सुवृत्त, तीक्ष्ण, गुरु, कोमल, कठोर, निश्चल, चंचल, सुखद, दुखद, मंदगति, शीतल, तप्त, सुरूप, क्रूरस्वर, सुस्वर, मधुर, अबल, वलिष्ठ, सत्य, झूठ, मंडल, अगति, सदागति और दानी ये २८ प्रकार के वर्ण्यालंकार मैंने वर्णन किये हैं । इनके अतिरिक्त और भी बहुत से भेद हो सकते हैं

१—संपूर्णवर्णन ।

इतने संपूरण सदा वरणे केशवदास ।
अंबुज, आनन, आरसी, संतत प्रेम, प्रकास ॥४॥

'केशवदास' कहते हैं कि अंबुज, आनन (मुख), आरसी (दर्पण) प्रेम और प्रकाश को सदा सम्पूर्ण मान कर वर्णन किया जाता है ।

उदाहरण

कवित्त

हरिकर मंडन, सकल दुख खंडन,
मुकुट महि मंडल के कहत अखडगति ।
परम सुवास, पुनि पियूष नवास पार,
पूरन प्रकास केशौदास भू-अकासगति ।

बदन मदन कैसो श्रीजू के सदन शुभ,
सोदर शुभोदर दिनेश जू के मित्र अति।
सीताजू को मुख सुखमा की उपमा को सखि,
कोमल, कमल नहिं अमल रजनिपति ॥५॥

'केशवदास' कहते हैं कि कमल श्री विष्णु के हाथ की शोभा है, सभी दुःखों को दूर करने वाला है—इस बात को पृथ्वीभर के विद्वान कहते हैं। उसमें परम सुगन्ध है, उसमें अमृत जैसे मकरंद का निवास है और वह पृथ्वी तथा आकाश सभी स्थानों में मिलता है। उसका मुख कामदेव जैसा है, शोभा का घर है, उसका सगा भाई शुभोदर (शंख) सूर्य का परम मित्र है। इसीप्रकार चन्द्रमा भी सूर्य की किरणों से सुशोभित है, सकल अर्थात् कलाओं से युक्त और दुखों को दूर करने वाला है, और विद्वान कहते हैं कि वह दर्पण की भाँति स्वच्छ है। परम (आकाश) में उसका सुन्दर निवास है, अमृत का घर है, पूर्ण प्रकाश वाला है और पृथ्वी तथा आकाश सब स्थानों में उसकी गति है। वह काम के मुख जैसा सुन्दर है, शोभा का घर है, शुभोदर अर्थात् शंख का सगा भाई और सूर्य का परम मित्र है। हे सखी! इतने गुण होने पर भी सीताजी के मुख की उपमा के योग्य न तो कमल है और न चन्द्रमा; क्योंकि इनमें कमल उनके मुख की कोमलता को नहीं पा सकता और चन्द्रमा अमल अर्थात् निर्मल न होने के कारण उनके मुख की निष्कलंकता को नहीं पहूँचता।

२-आवर्त्त

ये आवत बखानिये केशवदास सुजान।
चकरी, चक्र अलात पुनि, आतपत्र खरसान ॥६॥

'केशवदास' कहते हैं कि चकरी (चक्की), चक्र (सुदर्शन चक्र तथा कुम्हार का चाक), अलात (बनेठी), आतपत्र (छाता) और खरसान (सान रखने का पहिया), ये आवर्त्त अर्थात् चक्कर लगाकर अपनी जगह आजानेवाले कहलाते हैं।

उदाहरण

कवित्त

दुहूँ रुख मुख मानौ, पलट न जानी जात,
देखिकै अलात जात जोति होति मंद लाजि।
'केशौदास' कुशल कुलाल चक्र चक्रमन,
चातुरी चितै कै चारु चातुरी चलत भाजि।
चंद जू के चहूंकोद वेष परिवेष कैसो,
देखत ही रहिए न कहिए वचन साजि।
धाप छाँड़ि आपनिधि जानि दिशि दिशि रघु-
नाथ जू के छत्र तर भ्रमत अमीन बाजि ॥७॥

श्री रामचन्द्र जी का भ्रमणकारी घोड़ा दौड़ने का मैदान छोड़कर तथा चारों ओर समुद्र ही समुद्र समझता हुआ उन्हीं के छत्र के नीचे चक्कर काट रहा है। मानो उसके मुख का रुख दोनों ओर है, उसकी पलट ज्ञात ही नहीं होती अर्थात् इतनी शीघ्रता से पलट जाता है कि ज्ञात ही नहीं होता कि कब पलट गया। उसे देखकर बनेठी की ज्योति भी लज्जित होकर मंद पड़ जाती है। 'केशवदास' कहते हैं कि उसके भ्रमण की चतुरता को देखकर कुम्हार के चाक के घूमने की शीघ्रता भाग जाती है। चन्द्रमा के चारों ओर होने वाले परिवेष (घेरा) की भाँति उसे देखते ही रह जाना पड़ता है; कुछ कहा नहीं जाता।

३—कुटिलवर्णन

दोहा

अलक, अलिक, भ्रुकुंचिका किंशुक, शुकमुख लेखि।
अहि, कटाक्ष, धनु, बीजुरी, कंकनभग्न विशेखि ॥८॥
बाल, चंद्रिका, गलशशि, हरि, नख शूकरदंत।
कुद्दालादिक वरणिये, कपटी कुटिल अनंत ॥९॥

अलक (लटें) अलिक (ललाट), भ्रू (भौं) कुंचिका (बांस की टहनी), किंशुक, शुकमुख (तोते का मुख) अहि (साँप), कटाक्ष (तिरछी दृष्टि), धनु (धनुष), बीजुरी (बिजली), कंकन भग्न (कंकण का टूटा हुआ टुकड़ा), बाल (घुंघराले), चंद्रिका (एकगहना), बाल शशि (द्वितीया का चन्द्रमा) हरिनख (सिंह का नख), सूकर दंत (सुअर का दांत) और कुद्दाल (कुल्हाड़ी) आदि की भाँति अनन्त वस्तुएँ कुटिल कही गई हैं। उदाहरण

सवैया

भोर जगी वृषभानुसुता, अलसी बिलसी निशि कुंजविहारी।
केशव पोंछति अंचलछोरनि पीक सुलीक गई मिटिकारी॥
बंकलगे कुचबीच नखक्षत देखिभई दृग दूनी लजारी।
मानौ वियोगवराह हन्यो युग शैलकी संधिमें इंगवैडारी॥१०॥

श्री कुंजबिहारी (श्रीकृष्ण) के रात के विलास के पश्चात् वृषभान सुता (राधा) आलस्य में भरी हुई प्रातः काल जगी है। 'केशवदास' कहते हैं कि वह पान की पीक और काजल की रेखा को अपने आंचल से पोंछने लगी जिससे काजल की काली रेखा भी मिट गई। परन्तु कुचों के बीच जो नखक्षत (नख का लगा हुआ चिन्ह) लगा हुआ था उसे आँखों से देखकर दूनी लज्जित होंने लगी। वह नखक्षत ऐसा ज्ञात होता था। मानो वियोग रूपी वाराह (शूकर) ने दो पहाड़ों की सन्धि में प्रहार किया था, सो उसका एक दाँत पड़ा हुआ रह गया है।

४—त्रिकोणवर्णन

दोहा

शकट, सिंघारो, वज्र, हर, हरके नैन निहारि।
केशवदास त्रिकोणमहि, पावककुण्ड विचारि॥११॥

'केशवदास' कहते हैं कि शकट (छकड़ा गाड़ी), सिंघाड़ा, वज्र, हल, श्रीमहादेव जी के नेत्र और अग्नि कुंड—ये इस पृथ्वी में (संसार में) त्रिकोण माने जाते हैं।

उदाहरण

कवित्त

लोचन त्रिलोचन को केशव विलोकि विधि,
पावक के कुंड सी त्रिकोण कीन्हीं धरणी।
सोधीहै सुधारि पृथु परम पुनीत नृप,
करि करि पूरण दसहुँ दिस करणी।
ज्वाला सो जगत जगमगत सुभग मेरु,
जाकी ज्योति होति लोक लोक मन हरणी।
थिर चर जीव हवि होमियत युग-युग,
होता होत काल न जुगुति जात बरणी ॥१२॥

'केशवदास' कहते हैं कि श्रीशिव जी के तीनों नेत्र देखकर श्रीब्रह्माजी ने 'अग्निकुंड' जैसी तिकोनी भारतभूमि बनाई। उस पृथ्वी को परम पवित्र राजा पृथु ने अपनी करनी से सुधारा। उसमें सुमेरु पर्वत की लोक लोकान्तरों का मन हरने वाली ज्योति बनाई है। पृथ्वी रूपी इस हवि-कुंड मेंयुग युगान्तरों से चर अचर जीव होता काला के द्वारा होमे जा रहे हैं, कुछ कहा नहीं जा सकता।

५—सुवृत्तवर्णन

दोहा

वृत्त, बेल भनि गुच्छ अरु, ककुदकंध रथअंग।
कुंभि-कुंभ, कुच, अंड, भनि, कंदुक, कलश सुरंग॥ ॥१३॥

बेल, गुच्छा, बैल के कंधे का ऊपरी भाग, रथ के अंग, हाथी के मस्तक के ऊपरी गोल भाग, कुच, अंडा, गेंद, और कलश ये वृत्त (गोल) कहे जाते हैं।

LUCKNOW.

उदाहरण

कवित्त

परम प्रवीन अति कोमल कृपालु तेरे,
उरत उदित नित चित हितकारी है।
'केशोराय' कीसों अति सुन्दर उदार शुभ,
सलज, सुशील विध सूरति सुधारी है।
काहूसों न जानैं, हँसि बोलि न बिलोकि जानैं,
कंचुकी सहित साधु सूधी वेसधारी है।
ऐसे हौं कुचनि सकुचनि न सकति बूझि,
परहिय हरनि प्रकृति कौने पारी है ॥१४॥

एक सखी अपनी सखी से कहती है कि ये कुच तेरे परम चतुर कोमल तथा उदार हृदय से उत्पन्न हुए हैं और चित्त के हितकारी है। 'केशवराय' (ईश्वर) की सौगन्ध ये बहुत ही सुन्दर, उदार, शुभ, लज्जाशील और सुशील हैं। इनकी सूरत श्रीब्रह्मा जी ने ही सुधारी है। ये बेचारे न तो किसी से हँस कर बोलना जानते हैं और न किसी की ओर देखना ही जानते हैं और कंचुकी पहने हुए साधु वेश में रहते हैं। ऐसे कुचों को देखकर मारें संकोच के मैं पूछ नहीं सकती कि 'दूसरे के मन को हरने का स्वभाव इनमें किसने डाल दिया है ?।'

६, ७ तीक्ष्ण और गुरुवर्णन

दोहा

नख, कटाक्ष, शर, दुर्वचन, सेलादिक खर जानि।
कुच, नितम्ब, गुण, लाजमति, रति अति गुरु करिमानि ॥१५॥

नख, कटाक्ष, बाण और शेलादि (छुरी, कटारी इत्यादि) अस्त्र) खर (तीक्ष्ण) मानिए और कुच, नितम्ब, गुण, लज्जा, मति और रति की गुरु समझिए।

उदाहरण (१)

(तीक्ष्ण)

कवित्त

सै हथी हथ्यार हू ते अति अनियारे, काम,
शर हू त खरे खल वचन विशेखिये।
चोट न बचत ओट किये हू कपाट कोट,
भौन भौंहरे हू भारे भय अबरेखिये।
'केशौदास' मंत्र, गद, यंत्रऊ न प्रतिपच्छ,
रच्छ, लच्छ-लच्छ बज्र रच्छक न लेखिये।
भेदत हैं मर्म, वर्म ऊपर कसेई रहैं,
पीर घनी घायलन घाय पै न देखिये ॥१६॥

खलों के वचन काम के बाणों से भी तीक्ष्ण हैं। ये बरछी और दूसरे हथियारों से भी अधिक नुकीले हैं। किवाड़ों की ओट करने पर भी इनसे कोई बच नहीं पाता। घर तथा तहखाने में रहने पर भी इनसे बड़ा भारी डर लगा रहता है। 'केशवदास' कहते हैं कि इन पर मंत्र, गद (मरहम लेप), और यंत्र भी कुछ काम नहीं करते और लाखों बज्र और रच्छक भी इनसे नहीं बच पाते। ऊपर वर्म (कवच) के कसे रहने पर भी मर्म स्थल बेध डालते हैं। गहरी चोट पहुँचाते हैं परन्तु घाव नहीं दिखलाई पड़ता

उदाहरण (२)

(गुरु)

सवैया

पहिले तजि आरस आरसी देखि, घरीक घसे घनसारहिं लै।
पुनि पोंछि गुलाब तिलोंछि फुलेल अँगौछनि आछे अँगौछनि कै॥
कहि केशव मेद जवादिसों मांजि, इतेपर आंजे में आजन दै।
बहुरयो दुरि देखौं तौ देखौ कहा, सखि लाजतौ लोचन लागिये है ॥१७॥

पहले आलस्य छोड़कर दर्पण देखा; फिर एक घड़ी तक कपूर लेकर घिसा। फिर गुलाब जल से धोकर और फुलेल (इत्र) मलकर अंगोछे से भलीभाँति पोंछ डाला। 'केशव' कहते हैं कि कस्तूरी जुवाद आदि से मांज कर आँखों में अंजन दिया। हे सखि! इतना करने पर भी (नायक को) जो छिपकर देखा तो देखती क्या हूँ कि लज्जा तो आँखों में ज्यों की त्यों लगी ही हुई है।

८—कोमलवर्णन

दोहा

पल्लव, कुसुम, दयालु-मन, माखन, मैन, मुरार।
पाट, पामरी, जीभ, पद, प्रेम, सुपुण्य विचार ॥१८॥

पल्लव, कुसुम, दयालुमन, मक्खन, मैन (मोम), मुरार (कमल की जड़), पाट (रेशम), पामरी (रेशमी वस्त्र), जीभ, पद, प्रेम और पुण्य कोमल माने जाते हैं।

उदाहरण

कवित्त

मैन ऐसो मन मृदु, मृदुलमृणालिकाके,
सूतकैसी स्वरधुनि मनहिं हरति है।
दारथो कैसे बीज दाँत पातसे अरुण ओंठ,
केशौदास देखि दृग आनँद भरति हैं॥
येरी बीर तेरी मोहिं भावत भलाई ताते,
बूझतिहौं ताहिं और बूझति डरति है।
माखनसी जीभ मुखकंजसो कोंवर कहि,
काठसी कठेठी बातैं कैसे निकरति हैं ॥१९॥

तेरा मन मोम जैसा कोमल है, मृणाल के सूत जैसी कोमल तेरी स्वर-ध्वनि मन को हरनेवाली है। अनार के बीज जैसे तेरे दाँत हैं, पल्लव जैसे लाल ओठ और (केशवदास-सखी की ओर से कहते हैं कि) तेरी

आँखें देखते ही आनन्द भर देती हैं। हे मेरी सखी! मुझे तेरी भलाई अच्छी लगती है, इसीलिए मैं तुझसे पूछती हूँ, परन्तु पूछते हुए डरती हूँ। तेरी मक्खन सी कोमल जीभ और तेरे कमल से कोमल मुख से, बतला, काठ जैसी कठोर बातें कैसे निकलती हैं?

९—कठारवर्णन

दोहा

कुच कठोर भुजमूल, मणि, वरणि वज्र, कहि मित्त।
धातु. हाड़, हीरा, हिया, विरहीजनके चित्त ॥२०॥
शूरनके तन. सूम मन, काठ, कमठकी पाठ।
'केशव' सूखो चर्म, अरु, शठहठ, दुर्जन-दीठ ॥२१॥

केशवदास कहते हैं कि हे मित्र! कुच, भुजमूल (भुजदंड, सब प्रकार की मणियाँ, वज्र, सब प्रकार की धातुएं, हाड़, हीरा, वियोगियों के हृदय और मन, वीरों का शरीर सूम या कंजूस का मन, काठ, कमठ, या कछुए की पीठ, सूखा चमड़ा, दुष्टों का हठ, और दुर्जनों की दृष्टि इन्हें कठोर कहा जाता है।

उदाहरण

कवित्त

'केशौदास' दीरघ उसासनि की सदागति,
आयुको अकाश है, प्रकाश पाप भोगीको।
देह जात, जातरूप हाड़निको पूरौ रूप,
रूप को कुरूप विधु वासर सँयोगी को।
बुद्धिन की बीजुरी है नैननिको धाराधर
छातीको घरथार तनघाइन प्रयोगीको।
उदरको बाड़वा अगिन गेह मानतहौं,
जानतहौं हीरा हियो काहू पुत्रशोगीको ॥२२॥

'केशवदास' कहते हैं कि जो पुरुष पुत्र-शोकी होता है, उसके लिए दीर्घ निःश्वास ही पवन है। वह आयु के लिए आकाश अर्थात् शून्य हो जाता है अर्थात् मृत तुल्य बन जाता है और (जितने दिन जीता है, उतने दिनों तक) पाप के प्रकाश सदृश रहता है। उसके शरीर की शक्ति जाती-रहती है, रूप भी लुप्त हो जाता है और वह हाड़ों का पूरा रूप (ठठरी मात्र) बन जाता है। उसका रूप (सौंदर्य) ऐसा निष्फल हो जाता है जैसे दिन का चन्द्रमा ज्योतिहीन हो जाता है। उसकी बुद्धि पर बिजली पड़ जाती है अथवा बिजली जैसी चंचल हो जाती है और नेत्र बादल बन जाते हैं (आँसू बहाते रहते हैं)। उसकी छाती घड़ियाल बन जाती है अर्थात् जैसे घड़ियाल पीटा जाता है, वैसे वह भी अपनी छाती पीटता रहता है। उसका शरीर घावों का प्रयोगी हो जाता है अर्थात् मानों घावों के लिए ही बना होता है। उसका उदर मैं बड़वानल का घर मानता हूँ और हृदय को बज्र समझता हूँ।

१०–निश्चलवर्णन

दोहा

सती, समर भट, संतमन, धर्म, अधर्म निमित्त।
जहाँ तहाँ ये वर्णिये, केशव निश्चल चित्त ॥२३॥

'केशवदास' कहते हैं कि सती, भट, संतमन, धर्म और अधर्म के कारणों का जहाँ जहाँ वर्णन किया जायगा, वहाँ-वहाँ इनके चित्त को निश्चल ही कहना चाहिए।

उदाहरण

सवैया

काय मनो वच काम न लोभ न छोभ नमोहैं महाभजेता।
केशव बाल बयक्रम वृद्ध बिपत्तिनहूँ अति धीरज चेता॥
है कलिमें करुणा वरुणालय, कौन गनै कृत द्वापर त्रेता।
येई तौ सूरजमंडल बेधत, सूर सती अरु ऊरधरेता ॥२४॥

'केशवदास' कहते हैं कि शूर, सतीस्त्री और उर्द्ध्वरेता (ब्रह्मचारी) ये लोग ही तो सूर्य मंडल को भेदनेवाले हुआ करते हैं। इन्हें तन, मन और बचन से न काम होता है, न लोभ होता है, न छोभ होता है और न मोह होता है तथा ये महा-भय को भी जीतनेवाले होते हैं। ये लोग बाल से लेकर वृद्धावस्था तक विपत्तियों में धैर्य धारण करने वाले होते हैं। ये लोग जब कलियुग तक में करुणा के समुद्र होते हैं, तब सतयुग, त्रेता और द्वापर की गिनती कौन करे।

११—चंचलवर्णन

दोहा

तरल तुरंग, कुरंग, घन, बानर, चलदल पान।
लोभिन के मन, स्यारजन, बालक, काल विधान ॥२५॥
कुलटा कुटिल, कटाच्छ, मन, सपनो, जोबन; मीन।
खंजन, अलि, गजश्रवण, श्री, दामिनि पवन प्रवीन ॥२६॥

हे प्रवीण घोड़ा, हिरन बादल, बन्दर पीपल के पत्ते लोभियों के मन, कायर मनुष्य बालक, समय का विधान, कुलटा स्त्री कुटिल मनुष्यों के कटाच्छ, मन स्वप्न यौवन, मछली, खजन, भौंरा, हाथी के कान, लच्मी, बिजली तथा वायु चंचल माने जाते हैं।

उदाहरण

कवित्त

भौंर ज्यों भवत लोला, ललना लतान प्रति,
खंजन सो थल, मीन मानो जहाँ जल है।
सपनो सो होत, कहूँ आपनो न अपनाये,
भूलिए न बैन ऐन आक को सो फल है।
गहिय धौं कौन गुन, देखत ही रहियेरी,
कहिय कछू न, रूप मोह को महल है।
चपला सी चमकनि, सोहैं चारु चहूँ दिसि,
कान्ह को सनेह, चल दल को सो दल है ॥२७॥

जिस प्रकार चंचल भौंरा लता रूपी ललनाओं के प्रति घूमता रहता है और जैसे स्थल पर खंजन तथा जहाँ जल होता है, वहाँ मछली चंचलता धारण करती है, उसी प्रकार कृष्ण का स्नेह चंचल है। वह सपने के समान होता है और अपनाने पर भी अपना नहीं होता, इस लिए उनके आक के फल के समान नीरस बचनों में न भूल जाना। हे सखी! उसका कौन सा गुण ग्रहण किया जाय? केवल देखती रह, कहना कुछ नहीं। वह रूप और मोह का महल है। उनका प्रेम बिजली की चमक की भाँति चारों ओर शोभित होता है और पीपल के पत्ते के समान चंचल है।

१२—सुखदवर्णन

दोहा

पण्डित पूत, पतिव्रता, विद्या, वपुष निरोग।
सुखदा फल अभिलाष के, संपति, मित्र सँयोग ॥२८॥

दान, मान, धन योग, जप, राग, बाग, गृह रूप।
सुकृति सौम्य सरवज्ञता, ये सुखदानि अनूप ॥२९॥

पंडित-पुत्र पतिव्रता स्त्री, विद्या, नीरोग शरीर, अभिलाष के अनुसार मिलनेवाला फल-संपत्ति, मित्र मिलन, दान, मान और धन प्राप्ति का अवसर, जप, राग, बाग, गृह, रूप, पुण्य, सौम्य स्वभाव और सर्वज्ञता सुख देनेवाले माने जाते हैं।

उदाहरण

सवैया

पण्डितपूत सपूत सुधी, पतिनी पतिप्रेम परायण भारी।
जानै सबै गुण, मानै सबै जन, दानविधान दयाउरधारी॥
केशव रोगनहीं सों वियोग, सँयोग सुभोगनि सों सुखकारी।
सांच कहैं, जगमाहिं लहैं यश, मुक्ति यहै चहुँवेद विचारी ॥३०॥

'केशवदास' कहते हैं कि पंडित और बुद्धिमान पुत्र, पति-प्रेम परायणा स्त्री, सब गुणों का ज्ञान, सब लोगों से मान-प्राप्ति. दान देना, हृदय में दया धारण करना रोगों से वियोग, भोगों से संयोग, सत्य कहना, संसार में यश प्राप्ति और युक्ति-ये वस्तुएं सुख देनेवाली होती हैं यह बात चारों वेद में कही गई है।

१३–दुखदवर्णन

दोहा

पाप पराजय, झूठ, हठ, शठता, मूरख मित्त।
ब्राह्मण नेगी, रूप बिन, असहनशीलचरित्त ॥३१॥
आधि, व्याधि, अपमान, ऋण, परघर भोजन बास।
कन्या संतति, वृद्धता; बरषाकाल प्रवास ॥३२॥
कुजन, कुस्वामी, कुगति हय, कुपुरनिवास कुनारि।
परवश, दारिद, आदिदै, अरि, दुखदानि विचारि ॥३३॥

पाप, पराजय (हार), झूठ, हठ. शठता, मूर्ख मित्र, नेगी ब्राह्मण कुरूपता, असहनशील चरित्र, आधि (मानसिक रोग), व्याधि (शारीरिक रोग), अपमान, ऋण, दूसरे घर में भोजन तथा वास, कन्या सन्तान, बुढ़ापा, वर्षा काल में विदेश में रहना, बुरा या दुष्ट मनुष्य बुरास्वामी, बुरी चाल का घोड़ा, बुरे नगर में रहना, बुरी स्त्री, पराधीनता, दरिद्रता और बैर आदिकों को दुःख देनेवाला समझिए।

उदाहरण

कवित्त

बाहन कुचाल, चोर चाकर, चपल चित,
मित्त मतिहान, सूम स्वामी उर आनिये।
परघर भोजन निवास, वास कुपुरन,
'केशौदास' बरषा प्रवास दुख दानिये।

पापिन को अंग संग, अंगना अनंग बस,
अपयश युत सुत, चित हित हानिये।
मूढ़ता, बुढ़ाई, व्याधि, दारिद, झुठाई, आधि,
यह ही नरक नर लोकन बखानिये ॥३४॥

'केशवदास' कहते हैं कि बुरीचाल की सवारी (घोड़ा आदि) चोर सेवक चंचल चित्त, मूर्ख मित्र, सूम स्वामी दूसरे के घर भोजन तथा निवास. बुरे गाँव में वास, वर्षा में विदेश में रहना. पापियों का साथ, काम वश स्त्री, अपकीर्ति देनेवाला पुत्र, मन-चाही वस्तु की हानि मूर्खता, बुढ़ापा, शारीरिक रोग, दरिद्रता, झूठ और मानसिक रोग, इन्हीं को इस नर-लोक संसार) का नरक बतलाया गया है। अर्थात् ये नरक जैसी दुखदायी होती हैं।

१४—मंदगतवर्णन

दोहा

कुलतिय, हासबिलास, बुध, काम, क्रोध, मन मानि।
शनि, गुरु, सारस, हंस, गज, तियगति, मंद बखानि ॥३५॥

कुलवती स्त्री, हास-विलास, बुद्धिमान, काम, क्रोध, शनि. वृहस्पति, सारस पक्षी, हंस, हाथी और स्त्री की चाल-इन्हें मंदगति कहा गया है।

उदाहरण

कवित्त

कोमल विमल मन, विमला सी सखी साथ,
कमला ज्यों लीन्हें हाथ कमल सनाल को।
नूपुर की धुनि सुनि, भौंरें कल हंसनि के,
चौंकि चौंकि परैं चारु चेटुवा मराल को।
कचन के भार, कुच भारन, सकुच भार,
लचकि लचकि जाति कटि-तट बाल को।
हरें हरें बोलति बिलोकति हँसति हरें,
हरें हरें चलति हरति मन लाल को ॥३६॥

जिसका कोमल और निर्मल मन है, सरस्वती जैसी सखी जिसके साथ है, और जो हाथ में सनाल कमल लिए हुए लक्ष्मी जैसी प्रतीत होती है। जिसके विछुओं की ध्वनि सुनकर, हंसों के धोखे में, हंसों के बच्चे चौंक चौंक पड़ते हैं, जिसकी कमर बाल, कुच, तथा संकोच के भार से झुकी जाती है, वह बाला धीरे-धीरे बोलती, देखती और हंसती है तथा धीरे-धीरे चलती हुई लाल (नायक) का मन हरती है।

१५—शीतलवर्णन

दोहा

मलयज, दाख कलिंद, सुख, ओरे, मिश्री, मीत।
प्रियसंगम, घनसार, शशि, जल, जलरुह हिमि, शीत ॥३७॥

चंदन, दाख (किसमिस) कलिंद (तरबूज) सुख ओला, मिश्री प्रिय-संगम, कपूर, चन्द्रमा, जल, में उत्पन्न होनेवाली वस्तुएं, बर्फ तथा शीत शीतल माने जाते हैं।

उदाहरण

कवित्त

सीतल समीर टारि, चन्द्र चंद्रिका निवारि,
'केशौदास' ऐसे हो तो हरषु हिरातु है।
फूलन फैलाय डारि, झार डारि घनसार,
चन्दन को टारि चित्त चौगुनो पिरातु है।
नीर हीन मीन मुरझानी, जीवै नीर ही पै,
छीर के छिरीके कहा धीरजु धिरातु है।
पाई है तैं पीर किधौं यो हीं उपचार करै,
आग को तो दाध्यो अंग आगिही सिरातु है ॥३८॥

('केशवदास' एक सखी की ओर से जो अपनी सखी के शीतल उपचार में लगी है, कहते हैं, कि) हे सखी ! इस ठंडी वायु को हटा और चन्द्रमा की चाँदनी भी दूर कर, क्योंकि इन्हीं में तो मेरा आनन्द

लुप्त हो जाता है। फूलों को फेंक दे, कपूर को झाड़ कर अलग कर दे और चन्दन को हटा दे, क्योंकि इनसे मेरा मन चौगुना पीड़ित होता है। पानी के बिना मुरझाई हुई मछली पानी ही से जीवित होती है, कहीं दूध छिड़कने से उसे धीरज आ सकता है ? तुझे कभी ऐसी पीड़ा हुई भी है या तू योंही उपचार कर रही है ? जानती नहीं कि आग का जला हुआ अंग आग ही से शीतल होता है।

१६—तप्तवर्णन

दोहा

रिपुप्रताप, दुर्वचन, तप, तप्त विरह, संताप।
सूरज, आगि, बजागि, दुख, तृष्णा, पाप, विलाप ॥३९॥

वैरी का प्रताप, दुर्वचन, तप, विरह, संताप, सूर्य, अग्नि, वज्राग्नि, दुख, तृष्णा, पाप, और विलाप-तप्त माने जाते हैं।

उदाहरण

कवित्त

'केशोदास' नींद, भूख, प्यास, उपहास, त्रास,
दुख को निवास विष मुखहू गह्यो परै।
वायु को बहन, बनदावा को दहन, बड़ी,
बाड़वा अनल ज्वाल जाल में रह्यो परै।
जीरन जनम जात जोर जुर घोर, परि-
पूरण प्रगट परिताप क्यों कह्यो परै।
सहि हौं तपन ताप, पर को प्रताप रघु,
वीर को विरह वीर मोपे न सह्यो परै ॥४०॥

'केशवदास' कहते हैं कि श्री सीता जी श्री हनुमान जी से कह रही हैं कि-मैं नींद, भूख, प्यास और उपहास का भय, सहसकती हूँ तथा परम दुखदायी विष भी मुँह में डाल सकती हूँ। मैं आँधी के झोंके और दावाग्नि की जलन भी सह सकती हूँ और बड़वानल की ज्वालाओं के

बीच रह भी सकती हूँ। मैं जन्मभर रहने वाला घोर ज्वर-जिसके पूर्ण परिताप का वर्णन नहीं किया जा सकता-सह सकती हूँ। मैं सूर्य की गर्मी तथा शत्रु का परिताप भी-सह सकती हूँ, परन्तु मुझसे श्री रघुनाथ जी के विरह का संताप नहीं सहा जाता।

१७—सुरूपवर्णन

दोहा

नल, नलकूवर, सुरभिषक, हरिसुत, मदन, निहारि।
दमयंती, सीतादि तिय, सुंदर रूप विचारि ॥४१॥

नल, नलकूवर (कुवेर का एक पुत्र), सुरभिषक (देवताओं के वैद्य) हरिसुत (श्रीकृष्ण के पुत्र-प्रद्युम्न), मदन (कामदेव) और दमयन्ती तथा श्री सीता आदि स्त्रियाँ सुन्दर माने जाते है।

उदाहरण

कवित्त

को है दमयंती, इन्दुमती, रति, राति दिन,
होहिं न छबीली, छन-छवि जो सिंगारिये।
मदन निरूपन निरूपम निरूप भये,
चन्द बहुरूप अनुरूप कै बिचारिये।
'केशव' लजात जलजात, जातवेद ओप,
जातरूप बापुरो, विरूप सो निहारिये।
सीता जीके रूप पर देवता कुरूप को हैं,
रूपही के रूपक तौ बारि बारि डारिये ॥४२॥

श्री सीता जी के रूप के सामने दमयन्ती, इन्दुमती और रति क्या हैं। यदि उन्हें बिजली की शोभा से रात दिन सजाया जाय तो भी वे वैसी सुन्दर न होंगी। 'केशवदास' कहते हैं कि उनकी सुन्दरता से कमल लज्जित हो जाता है, अग्नि की चमक छिप जाती है और बेचारा सोना तो कुरूप सा दिखलाई पड़ता है चन्द्रमा बहुत से रूप रखने वाले बहुरूपिया के समान ही जान पड़ता हैं।। श्री सीता जी के रूप के आगे देव-

ताओं की कुरूप स्त्रियाँ क्या हैं ? उनकी सुन्दरता पर तो सौंदर्य की सभी उपमाएँ निछावर कर देनी चाहिए।

१८—क्रूरस्वरवर्णन

दोहा

झींगुर, सांप, उलूक, अज, महिषी, कोल, बखानि।
भेड़ि, काक, वृक, करभ, खर, श्वान, क्रूर-स्वर जानि।

झींगुर, सांप, उल्लू, बकरा, भैंस, सूअर, भेड़, कौआ, वृक, (भेड़िया) ऊँट, गदहा, और कुत्ता, क्रूर-स्वर वाले समझो।

उदाहरण

कवित्त

झिल्ली ते रसीली जीली, रांटी हू की रट लीली,
स्यारि ते सवाई भूत भामिनी ते आगरी।
'केशौदास' भैंसन की भामिनी ते भासै भास,
खरी ते खरीसी धुनि ऊँटी ते उजागरी।
भेंड़नि की मीड़ी मेड़, ऐंड़ न्यौरा नारिन की,
बांकी हूं ते बाँकी, बानी काकन की कागरी।
सूकरी सकुचि, संकि कूकरियो मूक भई,
घूघू की घरनि को है, मोह नाग नागरी ॥४४॥

किसी कठोरवाणीवाली स्त्री का वर्णन करते हुए 'केशवदास' व्यंग्यपूर्वक कहते हैं कि उसकी वाणी झिल्ली से भी बढ़कर रसीली और महीन है। उसने टिटहरी की रटन को भी निगल लिया है। उसकी वाणी स्यारिनी की वाणी से सवाई है और भूतिनी की बोली से बढ़कर है। उसकी बोली भैंस से भी अच्छी, गधी से भी तेज, और ऊँटनी से भी स्पष्ट है। उसकी बोली ने भेड़ी की बोंली की मर्यादा तोड़ दी है और नकुली की बोली का अभिमान तोड़ डाला है। उसकी वाणी बकरी की भाषा से भी सुन्दर है और कौए की का काँव, काँव) तो उसकी बोली के आगे गल ही गई है। उसकी बोली के आगे शूकरी संकुचित और कुतिया चुप हो गई है। उल्लू की बोली उसकी बोली के आगे क्या है; उसकी वाणी कों सुनकर हथिनी भी मोहित हो जाती है।

१६—सुस्वरवर्णन

दोहा

कलरव, केकी, कोकिला, शुक, सारो, कलहंस।
तंत्री कंठनि आदिदै, शुभसुर दुंदुभिवंस ॥४५॥

कबूतर, मोर, कोयल, तोता, मैना, हंस, वीणा आदि तारवाले बाजे, दुदुंभी (एक बाजा) और बांसुरी सुन्दर स्वरवाले माने जाते हैं।

उदाहरण

कवित्त

केकिन की केका सुनि, काके न मथित मन,
मनमथ मनोरथ रथपथ सोहिये।
कोकिला की काकलीन, कलित ललित बाग,
देखत न अनुराग उर अवरोहिये।
कोकन की कारिका, कहत शुक सारिकानि,
'केशौदास' नारिका कुमारिका हू मोहिये।
हंसमाला बोलत ही, मान की उतारि माल,
बोले नन्दलाल सों न ऐसी बाल को हिये ॥४६॥

(केशवदास किसी नायिका की ओर से कहते हैं कि) वर्षा में मोरों की ध्वनि सुनकर किसका मन मथित (चंचल) नहीं हो जाता। मोरों की वह ध्वनि काम के मनोरथों के रथ के लिए पंथ (मार्ग) स्वरूप है अर्थात् उसे सुनकर काम वासनाएं चलायमान होती हैं। (वसंत में) जब कोयलों की बोली से उपवन गूंज उठते हैं तब उन्हें देखते ही हृदय में अनुराग बढ़ जाता है। उसी ऋतु में जब तोते और मैना प्रेम की बातें करते हैं, तब स्त्री तो क्या, कुमारी कन्याएँ तक मोहित हो जाती हैं। (पर इस शरदऋतु में) हंसों के बोलते ही अपने मान की माला को उतार कर (मान छोड़कर) नन्दलाल (श्रीकृष्ण) से न बोले, भला ऐसा हृदय किस स्त्री का होगा?

२०—मधुरवर्णन

दोहा

मधुर प्रियाधर, सोमकर, माखन, दाख, समान।
बालक बातैं तोतरी, कविकुल उक्तिप्रमान ॥४७॥
महुवा, मिश्री, दूध, घृत, अति सिंगार रस मिष्ट।
ऊख, महूख, पियूख गनि, केशव सांचे इष्ट ॥४८॥

केशव कहते हैं कि प्रिया के ओठ, चन्द्रमा की किरणें, मक्खन, दाख (किसमिस), बालक की तुतली वाणी, कवियों की उक्तियाँ, महुवा मिश्री, दूध, घी, शृंगाररस, ऊख, शहद और अमृत मधुर माने जाते हैं।

उदाहरण

सवैया

खारिक खात न, माखन, दाख न दाड़िमहू सह मेटि इठाई।
केशव ऊख मयूखहु दूखत, आईहौं तोपहँ छांड़ि जिठाई॥
तो रदनच्छदको रसरंचक, चाखिगये करि केहूं ढिठाई।
तादिनते उन राखी उठाइ समेत सुधा बसुधाकी मिठाई ॥४९॥

'केशवदास' कहते हैं कि जिस दिन से वह तेरे ओठों का धृष्टता-पूर्वक थोड़ा सा रस चख गये हैं उस दिन से वह न तो छुहारा खाते हैं, न मक्खन खाते हैं, औ न दाख। अनार की मित्रता भी उन्होंने छोड़ दी है अर्थात् अनार भी रुचिकर नहीं होता। वह ऊख और महूख की भी निन्दा करते हैं। यह बात मैं तुझसे अपने जेठेपन का ध्यान छोड़कर कहने आई हूँ।

२१—अबलवर्णन

दोहा

पंगु, गुंग, रोगी, वणिक, भीत, भूखयुत, जानि।
अंध, अनाथ, अजादि शिशु, अबला, अबल बखानि ॥५०॥

लंगड़ा, गूंगा, रोगी, बनिया, डरा हुआ, भूखा, अंधा, अनाथ, बकरी आदि का बच्चा, और स्त्री को निर्बल कहा गया है।

उदाहरण

कवित्त

खात न अघात सब जगत खवावत है,
द्रौपदी के साग-पात खात ही अघाने हौ।
"केशौदास' नृपति सुता के सत भाय भये,
चोर ते चतुर्भुज चहूँ चक्क जाने हौ।
मांगनेऊ, द्वारपाल, दास, दूत, सूत, सुनौ,
काठमाहि कौन पाठ वेदन बखाने हौ।
और हैं अनाथन के नाथ कोऊ रघुनाथ,
तुम तौ अनाथन के हाथ ही बिकाने हौ ॥५१॥

आपको सारा संसार खिलाता है, और आप कभी तृप्त नहीं होते परन्तु द्रौपदी के शाक-पात से ही आप तृप्त हो गये। 'केशवदास' कहते हैं कि एक राजकन्या के सद्भाव के कारण आपने एक चोर राजकुमार के बदले अपना चतुर्भुज रूप दिखलाया, यह बात चारों ओर के सब लोग जानते हैं। आप राजा बलि के लिए भिक्षुक बने, उग्रसेन के यहाँ द्वारपाल बने, सेन भक्त के रूप में दास हुए, पांडवो के दूत बने, अर्जुन का रथ हाँक कर आपने सूत का काम किया और संदीपनि ऋषि के लिए जो काठ (लकड़ी) तोड़ने के लिए गये उसमें वेद पाठ का कौन सा गुण था? हे रघुनाथ! और कोई तो अनाथों का नाथ ही होगा, परन्तु आप तो अनाथों के हाथ बिक ही गये हैं।

२२—बलिष्ठवर्णन

दोहा

पवन, पवनको पूत, अरु, परमेश्वर, सुरपाल।
काम, भीम, बाली, हली, बलिराजा, पृथु, काल ॥५२॥

सिंह, बराह, गयन्द, गुरु, शेष, सती, सब नारि।
गरुड़, वेद माता, पिता, बली अदृष्ट, विचारि ॥५३॥

पवन अथवा वायु, पवन के पुत्र (श्री हनुमान जी), परमेश्वर, इन्द्र, कामदेव, भीम, बाल, हली (बलराम), बलि, राजापृथु, काल, सिंह, बाराह, (सूअर), गयन्द (हाथी) गुरु, शेष, सब सती स्त्रियां, गरुड़, वेद, माता, पिता और अदृष्ट (प्रारब्ध) इन्हें बलिष्ट या बलवान समझिए।

उदाहरण

सवैया

बालि बिध्यो बलिराउ बँध्यो, कर शूलीके शूल कपाल थली है।
काम जरयो जग, काल परयो बँदि, शेषधरयो विष हालाहली है।
सिंधु मथ्यो, किल काली नथ्यो, कहि केशव इन्द्र कुचालचली है।
रामहू की हरी रावण बाम, तिहू पुर एक अदृष्टबली है ॥५४॥

बालि (राजा रामचन्द्र के बाणों से) बिद्ध हुआ, राजा बलि बाँधा गया, शूलों अर्थात् श्री शंकरजी के पास केवल शूल और मुंड-माला ही है। काम जला, काल, रावण के बंदीगृह में पड़ा, शेष को हालाहल विष खाना पड़ा समुद्र मथा गया, काली नाग नाथा गया और (केशवदास कहते हैं कि) इन्द्र ने (अहल्या के साथ) कुचाल चली। श्रीराम की स्त्री को रावण ने हरण किया, इसलिए (इन बलवानों की दशाओं को देखकर यही निश्चय होता है कि) तीनों लोकों में एक अदृष्ट अर्थात् प्रारब्ध या भाग्य ही बलवान है।

२३—सत्य झूठवर्णन

दोहा

केशव चारिहुँ वेदको, मन क्रम वचन विचार।
सांचो एक अदृष्ट हरि, झूठो सब संसार ॥५५॥

'केशवदास' कहते हैं कि चारों वेदों को मन, क्रम, वचन से ध्यान पूर्वक मनन करके देखा तो अदृष्ट अर्थात् भाग्य और हरि (भगवान्) को सच्चा पाया और सारा संसार झूठा प्रतीत हुआ।

उदाहरण (१)

सवैया

हाथी न साथी न घोरे न चेरे न, गाउँ न ठाउँ को नाउँ बिलैहै।
तात न मात न पुत्र न मित्र, न वित्त न अंगऊ संग न रैहै।
केशव कामको 'राम' बिसारत और निकाम न कामहिं ऐहै।
चेतुरे चेतु अजौं चितु अंतर अंतकलोक अकेलोहि जैहै ॥५६॥

तेरे साथी ये हाथी-घोड़े और नौकर-चाकर नहीं हैं। न गाँव और घर ही तेरा साथ देंगे, इनका तो नाम तक लुप्त हो जायगा। पिता, माता, पुत्र, मित्र, और धन में से कोई भी तेरे साथ न रहेगा। 'केशवदास' कहते हैं कि तू काम आनेवाले राम को भूल रहा है, और तो सब व्यर्थ हैं, तेरे काम न आवेंगे। अब भी मन में सावधान हो जा, क्योंकि यमलोक को तो तुझे अकेला ही जाना पड़ेगा।

उदाहरण (२)

अनही ठीक को ठग, जानै ना कुठौर ठौर,
ताही पै ठगावै ठेलि जाही का ठगतु है।
याके डर तू निडर! डग न डगत डरि,
डर के डरनि डगि डांगी ज्यों डगतु है।
ऐसे बसोवास ते उदास होय 'केशौदास',
केशौ न भजत कहि काहे को भगतु है।
झूठो है रे झूठो जग राम की दोहाई, काहू
साँचे को कियो है ताते साँचो सो लगतु है ॥५७॥

तू बेठिकाने का ठग है, ठौर-कुठौर नहीं पहचानता। जिसे हठ पूर्वक ठगना चाहता है, उससे स्वयं ही ठगा जाता है। अर्थात् जिस

संसार को तू ठगना चाहता है, उसके फंदे में स्वयं पड़ जाता है। हे निडर ! इसके (पापके) डर से तू डगभर भी विचलित हो कर नहीं डरता और अन्य सांसारिक डरों से ढोंगी की तरह काँपता रहता है। 'केशवदास' कहते हैं कि तू इस संसार से उदासीन होकर केशव (परमात्मा) को क्यों नहीं भजता और उनसे दूर क्यों भागता है ? श्रीराम की सौगंध, यह सारा संसार झूठा है परन्तु किसी सच्चे का बनाया हुआ है, इसलिए सच्चा प्रतीत होता है।

२५—मंडल वर्णन

केशव कुंडल मुद्रिका, बलया, बलय, बखानि।
आलबाल, परिवेष, रवि, मंडल मंडल जानि ॥५८॥

'केशवदास' कहते हैं कि कुंडल (कान का बाला), मुद्रिका (अंगूठी), बलया (चूड़ी), बलय (कंकण या कड़ा), आल-बाल (थाला), परिवेष (सूर्य तथा चन्द्रमा के चारों ओर प्रकाशयुक्त घेरा) और सूर्य मंडल को मंडलकार समझना चाहिए।

उदाहरण

कवित्त

मणिमय आल बाल जलज जलज रवि,
मंडल में जैसे मति मोहै कवितान की।
जैसे सविशेष परिवेष में अशेष रेख,
शाभित सुवेष सोम सीमा सुख दानिकी।
जैसे बंक लोचनि कलित कर कंकननि,
बलित ललित दुति प्रगट प्रभानि की।
'केशौदास' ऐसे राजैं, रास तैं रसिक लाल,
आस-पास मंडलो विराजै गोपिकान की ॥५९॥

जिस प्रकार मणियों के थाले के बीच कोई पौधा या कमल खड़ा हो जिसे देखकर कवियों की प्रतिभा भी मोहित हो जाती है, जिस प्रकार

सुन्दर वेश वाले सुखदायी चन्द्रमा परिवेष (प्रकाश युक्त घेरे) के बीच दिखलायी पड़ते हों, और जिस प्रकार किसी तिरछी दृष्टिवाली स्त्री के हाथों में कंकण पड़ा हो जिसकी द्युति प्रत्यक्षरूप से प्रकाशित हो रही हो, 'केशवदास' कहते हैं कि ठीक उसी प्रकार रसिक लाल (श्रीकृष्ण) रासमंडल में खड़े हुए दिखलायी पड़ते हैं। उनके चारों ओर गोपियां की मंडली सुशोभित हो रही है।

२६, २७ अगति सदागति वर्णन।

अगति सिंधु, गिरि, ताल, तरु, वापी, कूप, बखानि।
महानदी, नद, पंथ, जग, पवन सदागतिजानि ॥६०॥

सिंधु, पहाड़, ताल, पेड़, वापी (बावली) और कुआं आदि को अगति अर्थात् अचल समझो तथा महानदी, नद, पंथ, जग और पवन को सदागति (सदैव चलनेवाले) जानो।

उदाहरण

(कवित्त)

पथ न थकत मन मनोरथ रथन के,
'केशौदास' जगमग जैसे गाये गीत मैं।
पवन विचार चक्र चक्रमन चित्त चढ़ि
भूतल अकाश भ्रमैं धाम जल शीत मैं।
कोलौं राखौं थिर बपु बापी, कूप, सर, सम,
हरि बिन कीन्हें बहु बासर व्यतीत मैं।
ज्ञान गिरि कोरि तोरि लाज तरु जाय मिलौं,
आपही ते आपगा ज्यों आपनिधि प्रीत मैं ॥६१॥

'केशवदास' (किसी स्त्री की ओर से उसकी सखी से कहते हैं कि) मेरे मनोरथों के रथों का पंथ कभी रुकता नहीं। अर्थात् मेरे मन में अनेक मनोरथ उठा ही करते हैं और संसार का जैसा नियम है तथा गीताओं (ग्रन्थों में) में भी जैसा कहा गया है, मेरे विचार पवन पर

State Museum,
LUCKNOW.

और मेरा चित्त दिशाओं के चाक पर चढ़ कर, घाम, वर्षा और जाड़े का ध्यान न रखते हुए, पृथ्वी से लेकर आकाश तक का चक्कर लगाया करते हैं। मैं अपने शरीर को वापी, कुआं और तालाब आदि की तरह कब तक स्थिर) रखूँ। इसीलिए मैंने सोचा है कि मैं ज्ञान के पहाड़ को फोड़कर और लज्जा के वृक्ष को तोड़कर उनसे (प्रियतम से) इस तरह जा मिलूं जैसे नदी पहाड़ों और वृक्षों को तोड़ती हुई स्वयं समुद्र में जा मिलती है।

२८ दानि वर्णन

दोहा

गौरि, गिरीश, गणेश, विधि, गिरा, ग्रहन को ईश।
चिन्तामणि सुरवृक्ष, गो, जगमाता, जगदीश ॥६२॥
रामचन्द्र, हरिचन्द, नल, परशुराम दुखहर्ण।
केशवदास, दधीचि, पृथु, बलि, सुविभीषण, कर्ण ॥६३॥
भोज, विक्रमादित्य, नृप, जगद्देव रणधीर।
दानिन हूं के दानि, दिन, इन्द्रजीत बरवीर ॥६४॥

गौरी (श्री पार्वतीजी), गिरीश (श्री शंकर जी), श्री गणेश, विधि (श्री ब्रह्मा जी), सूर्यदेव, चन्तामणि, सुरवृक्ष (कल्पवृक्ष), सुरगो (काम धेनु), जगमाता (श्री लक्ष्मीजी), जगदीश (श्री नारायण), श्रीरामचन्द्र, श्रीहरिश्चन्द्र, राजानल, श्री परशुराम, दधीचि, राजापृथु, राजा बलि, विभीषण, करण, राजा भोज, राजा विक्रमादित्य, राजा रणधीर जगद्देव (राजा इन्द्रजीत के बड़े भाई) और दानियों के भी दानी प्रतिदिन दान करनेवाले इन्द्रजीत तथा वीरवल दानी माने जाते हैं।

उदाहरण

गौरी का दान

दोहा

पावक, फनि, विष, भस्म, मुख, हरपवर्गमय मानु।
देत जु हैं अपवर्ग कहँ, पारवतीपति जानु ॥६५॥

पावक, फणि (शेषनाग) विष, भस्म और मुंड धारण करनेवाले शंकरजी को पवर्गमय समझो अर्थात् उनके पास वे ही वस्तुएं हैं जो पवर्ग (प, फ, ब, भ, म) से आरम्भ होती हैं, अतः वह क्या दे सकते हैं। वह जो अपवर्ग अर्थात् मुक्ति देते हैं, सो पार्वती के स्वामी होने के कारण जानो। भाव यह है कि अपवर्ग की देनेवाली वास्तव में पार्वती हैं परन्तु वह स्वयं न देकर अपने पति से दिलवाती हैं।

गणेश जी का दान वर्णन

कवित्त

बालक मृणालनि ज्यों तोरि डारै सब काल,
कठिन कराल त्यों अकाल दीह दुख को।
विपति हरत हठि पद्मिनी के पात सम,
पंक ज्यों पताल पेलि पठवै कलुष को।
दूर कै कलंक अंक भव सीस ससि सम,
राखत हैं 'केशौदास' दास के वपुष को।
सांकरे की सांकरन सनमुख होत तोरै,
दसमुख मुख जोवै, गजमुख मुख को ॥३६॥

जिस प्रकार कमल नाल को, हाथी का बच्चा, प्रत्येक दशा में तोड़ डालता है, उसीप्रकार श्रीगणेशजी अकाल के भयंकर दुखों को तोड़ डालते हैं। विपत्तियों को, कमल के पत्ते की भाँति, सरलता पूर्वक तोड़ डालते हैं और पापको, कीचड़ की तरह दबाकर, पाताल में भेज देते हैं। 'केशवदास' कहते हैं कि वह अपने दास (भक्त) के शरीर से कलंक को दूर करके श्रीशिवजी के मस्तक पर रहनेवाले (कलंक रहित) चन्द्रमा के समान करके उसकी रक्षा किया करते हैं। सामने जाते ही वह विपत्तियों की जंजीर को तोड़ डालते हैं ? इसी लिए दशोदिशाओं के लोग श्री गणेश जी का मुख देखा करते हैं।

महादेव जी का दान वर्णन

कवित्त

कांपि उठ्यो आप निधि, तपनहिं ताप चढ़ी.
सीरी ये शरीर गति भई रजनीश की।
अजहूं न ऊंचौ चाहै अनल मलिन मुख,
लागि रही लाज मुख मानो मन बीस की।
छबि सो छबीली, लच्छि छाती में छपाई हरि,
छूट गई दानि गति कोटिहू तैंतीस की।
'केशौदास' तेही काल कारांई ह्वै आयो काल,
सुनत श्रवण बकसीस एक ईश की ॥६७॥

'केशवदास' कहते हैं कि श्री शंकर जी के एक दान का समाचार कानों से सुनते ही समुद्र काँप उठा, (क्योंकि उसे भय हुआ कि मैं रत्नाकर ठहरा, मेरे सभी रत्न दान में न दे डालें)। सूर्य को बुखारचढ़ आया। (उन्हें अपने घोड़े का भय लगा कि दान में न दे दें)। चन्द्रमा का शरीर ठंडा पड़ गया कि कहीं मेरा अमृत न दे डालें)। मलिन मुख वाले अग्नि तो अब भी (मारे भय के)
अपना सिर ऊँचा नहीं करते और उनके मुख में जो कालिख लगी रहती है वह मानो बीसमन लज्जा की कालिख है और हरि (विष्णु) ने सुन्दरी लच्मी जी को छाती में छिपालिया (कि कहीं इन्हें भी न दे डालें) तथा वे तंतीसो करोड़ देवताओं की दानशीलता भूल गई और काल भी उसी समय काला पड़ गया।

विधि का दान वर्णन

कवित्त

आशीविष, राकसन, दैयतन दै पताल,
सुरन, नरन, दियो दिवि, भू, निकेतु है।
थिर चर जीवन को दीन्ही वृत्ति 'केशौदास'
दींबे कहँ और कहो कोऊ कहा हेतु है।

सीत, बात, तोय, तेज आबत समय पाय,
काहू पै न नाखो जाइ ऐसो बांधो सेतु है।
अब, तब, जब, कब, जहाँ तहाँ देखियत,
विधिही को दीन्हो, सब सबही को देतु है ॥६८॥

सर्पों राक्षसों और दैत्यको पातल लोक दिया तथा देवताओं को स्वर्ग और मनुष्यों को रहने के लिए भू लोक प्रदान किया। 'केशवदास' कहते हैं कि चर और अचर जीवों को वृत्ति (जीवका) प्रदान की। बतलाओ, अब दान का और दूसरा हेतु क्या हो सकता है ? (क्योंकि जीवका जो सबसे बढ़कर दान है, वह तो वह दे ही चुके)। अपने अपने समय पर शीत, वायु, पानी (वर्षा) और तेज (गरमी) सभी प्राप्त होते हैं और इनका ऐसा सेतु (मर्यादा) बाँध है कि कोई उल्लंघन नहीं कर सकता। अभी या भूत काल में, जहाँ-कहीं दान दिया जाता है, वह सब ब्रह्माजी ही का दिया हुआ है, जिसे सब लोग सब को दिया करते हैं।

गिरा का दान वर्णन

कवित्त

बानी जगरानी की उदारता बखानी जाय,
ऐसी मति उदित उदार कौन की भई।
देवता प्रसिद्ध सिद्ध ऋषिराज तप वृद्ध,
कहि कहि हारे सब कहि न काहू लई।
भावी, भूत, वर्त्तमान, जगत बखानत है,
'केशौदास' क्यों हूं न बखानी काहू पैगई।
वर्णे पति चारिमुख, पूत वर्णे पाँच मुख,
नाती वर्णे षटमुख, तदपि नई नई ॥६९॥

जगत की स्वामिनी श्री सरस्वती जी की उदारता का जो वर्णन कर सके, ऐसी उदार बुद्धि किसकी हुई है ? बड़े-बड़े प्रसिद्ध देवता,

सिद्ध लोग, तथा तपोवृद्ध ऋषिराज उनकी उदारता का वर्णन करते करते हार गये, परन्तु कोई भी वर्णन न कर सका। भावी, भूत, वर्त्तमान जगत सभी ने उनकी उदारता का वर्णन करने की चेष्टा की परन्तु किसी से भी वर्णन करते न बना। उस उदारता का वर्णन उनके पति ब्रह्माजी चार मुख से करते हैं, पुत्र महादेव जी पाँच मुख से करते हैं और नाती (सोमकार्त्तिकय) छः मुख से करते हैं, परन्तु फिर भी दिन-दिन नई ही बनी रहती है।

सूर्य का दान वर्णन

बाधक विविधि व्याधि, त्रिविध अधिक आधि,
वेद उपबेद बध बंधन विधानु हैं।
जग पारावार पार करत अपार नर,
पूजत परम पद पावत प्रमानु हैं।
पुरुष पुरान कहैं, पुरुष पुराने सब,
पूरण पुराण सुने निगम निदानु हैं।
भोगवान, भागवान, भगतन भगवान,
करिवे को 'केशौदास' भानु भगवान है ॥७०॥

'केशवदास' कहते हैं कि सूर्यदेव विविध व्याधियों के बाधक या रोकनेवाले हैं, और अधिकतर आधियां (मानसिक रोगों) को भी दूर करते हैं तथा वेद और उपवेद के नियमों के विधायक हैं अर्थात् वैदिक कार्य उन्हीं का चाल पर निर्भर रहते हैं। पुराने सभी लोग उन्हें सब से पुराना कहते हैं और सम्पूर्ण पुराणों के मूल कारण हैं अर्थात् वे भी उन्हीं की चाल पर निर्भर रहते हैं। सूर्य भगवान अपने भक्तों भोगवान, भाग्यवान, और ऐश्वर्यशाली बनाने के लिए ही हैं।

परशुरामजी को दान

सवैया

जो धरणी हिरण्याक्ष हरी, वरयज्ञ वराह छड़ाइ लई जू।
दानव मानव देवनिके जु, तपोबल केहूं न हाथ भई जू॥

जालंग केशव भारतभो भुव, पारथ जीवनि बीजु बई जू।
सातौं समुद्रनि मुद्रित राम, सो विप्रन वार अनेक दई जू।७१॥

केशवदास कहते हैं कि जिस पृथ्वी को हिरण्याक्ष ने हरण किया और जिसे वाराजी ने छीना। जिसके लिए राक्षस, मनुष्य और देवताओं ने अनेक तप किये परन्तु किसी के हाथ की न हुई। जिसके लिए महाभारत का युद्ध हुआ जिसमें अर्जुन ने जीवों के बीज से बो दिये अर्थात् इतने जीव मारे कि पृथ्वी खेत की तरह हो गई। उसी सातों समुद्रों से युक्त पृथ्वी को परशुराम ने ब्राह्मणों को अनेक बार दान में दिया।

श्री रामचन्द्र का दान वर्णन (१)

कवित्त

पूरन पुराण अरु पुरुष पुराने परि—
पूरन बतावैं न बतावैं और उक्ति को।
दरसन देत जिन्हें दरसन समझैं न,
नेति नेति कहैं वेद छांड़ि आन युक्ति को।
जानि यह 'केशौदास अनुदिन राम राम
रटत रहत न डरत पुनरुक्ति को।
रूप देई अनमाहि; गुन देइ गरिमाहि,
भक्ति देई महि माहि, नाम देइ मुक्ति को॥७२॥

सभी पुराण ग्रन्थ और पुराने लोग जिन्हें सब प्रकार से पूर्ण बतलाते हैं और इस उक्ति को छोड़ कर कुछ नहीं कहते। जिनके रहस्य को दर्शनशास्त्र भी नहीं जान पाते, वह (अपने भक्तों को) दर्शन देते हैं। जिनके संबंध में वेद और कुछ न कह सकने के कारण केवल 'नेति, नेति अर्थात् (इनके रहस्य का कोई अंत नहीं है) कहा करते है। 'केशवदास' कहते हैं कि यही जान कर (कि वेद भी उनका रहस्य नहीं बतला सकते) मैं दिन प्रतिदिन "राम-राम" रटता रहता हूँ

ओर पुनरुक्ति (एक ही शब्द को बारबार दुहराने के) दोष को नहीं डरता, (क्योंकि पुनरुक्ति दोष माना गया है)। उन राम का रूप-दर्शन अणिमा सिद्धि देता है, उनका गुणगान गरिमा सिद्धि प्रदान करता है, उनकी भक्ति महिमा प्रदान करती है और उनका नाम मुक्ति प्रदान करता है।

सवैया

जो शतयज्ञ करे करी इंद्रसों, सो प्रभुता कपिपुंज सों कीनी।
ईश दई जु दये दशशीश, सुलंक विभीषणै ऐसेहि दीनी॥
दानकथा रघुनाथ की केशव, को बरनै रस अद्भुत भीनी।
जो गति ऊरधरेतन की सुनौ औधके सूकर कूकर लीनी॥ ७३॥

जो प्रभुता इन्द्र को सौ यज्ञों के करने पर दी, वह बन्दरों को योंही प्रदान कर दी। जिस लंका को शिवजी ने रावण को अपने दशों शिरों को चढ़ाने पर दिया, उसे उन्होंने विभीषण को ऐसे ही दे दिया। 'केशवदास' कहते हैं कि इसलिए श्री रामचन्द्र की अद्भुत रस में सनी हुई दान की कथा का कौन वर्णन कर सकता है? जो गति उर्द्धरेता अर्थात् योगियों को प्राप्त होती है, वही अयोध्या के सुअरों और कुत्तों तक ने (उनकी कृपा से) प्राप्त कर ली।

राजा बलिका दान वर्णन।

सवैया

कैटभ सो, नरकासुर सो, पल में मधु सो, मुर सो जेहिं मारयो।
लोक चतुर्दश रक्षक केशव, पूरण वेद पुराण विचारयो॥
श्री कमला-कुच-कुंकुम मंडन पंडित देव अदेव निहारयो।
सो कर मांगन को बलि पै करतारहु को करतार पसारयो॥ ७४॥

जिस हाथ ने कैट, नरक, मधु, और मुर जैसे राक्षसों को पल भर में मार डाला। 'केशवदास' कहते हैं कि वेद तथा पुराणों में जिसे चौदहों लोकों का रक्षक कहा है। जो हाथ श्री लक्ष्मी जी के कुच मंडल

जालंग केशव भारतभो भुव, पारथ जीवनि बीजु बई जू।
सातौ समुद्रनि मुद्रित राम, सो विप्रन बार अनेक दई जू।७१॥

केशवदास कहते हैं कि जिस पृथ्वी को हिरण्याक्ष ने हरण किया और जिसे वाराजी ने छीना। जिसके लिए राक्षस, मनुष्य और देवताओं ने अनेक तप किये परन्तु किसी के हाथ की न हुई। जिसके लिए महाभारत का युद्ध हुआ जिसमें अर्जुन ने जीवों के बीज से बो दिये अर्थात् इतने जीव मारे कि पृथ्वी खेत की तरह हो गई। उसी सातों समुद्रों से युक्त पृथ्वी को परशुराम ने ब्राह्मणों को अनेक बार दान में दिया।

श्री रामचन्द्र का दान वर्णन (१)

कवित्त

पूरन पुराण अरु पुरुष पुराने परि—
पूरन बतावैं न बतावैं और उक्ति को।
दरसन देत जिन्हें दरसन समझैं न,
नेति नेति कहैं वेद छांड़ि आन युक्ति को।
जानि यह 'केशौदास अनुदिन राम राम
रटत रहत न डरत पुनरुक्ति को।
रूप देई अनमाहि; गुन देइ गरिमाहि,
भक्ति देई महि माहि, नाम देइ मुक्ति को॥७२॥

सभी पुराण ग्रन्थ और पुराने लोग जिन्हें सब प्रकार से पूर्ण बतलाते हैं और इस उक्ति को छोड़ कर कुछ नहीं कहते। जिनके रहस्य को दर्शनशास्त्र भी नहीं जान पाते, वह (अपने भक्तों को) दर्शन देते हैं। जिनके संबंध में वेद और कुछ न कह सकने के कारण केवल 'नेति, नेति अर्थात् (इनके रहस्य का कोई अंत नहीं है) कहा करते है। 'केशवदास' कहते हैं कि यही जान कर (कि वेद भी उनका रहस्य नहीं बतला सकते) मैं दिन प्रतिदिन "राम-राम" रटता रहता हूँ

श्रौर पुनरुक्ति (एक ही शब्द को बारबार दुहराने के) दोष को नहीं डरता, (क्योंकि पुनरुक्ति दोष माना गया है)। उन राम का रूप-दर्शन अणिमा सिद्धि देता है, उनका गुणगान गरिमा सिद्धि प्रदान करता है, उनकी भक्ति महिमा प्रदान करती है श्रौर उनका नाम मुक्ति प्रदान करता है।

सवैया

जो शतयज्ञ करे करी इंद्रसों, सो प्रभुता कपिपुंज सों कीनी।
ईश दई जु दये दशशीश, सुलंक विभीषणै ऐसेहि दीनी॥
दानकथा रघुनाथ की केशव, को बरनै रस अद्भुत भीनी।
जो गति ऊरधरेतन की सुनौ औधके सूकर कूकर लीनी॥ ७३॥

जो प्रभुता इन्द्र को सौ यज्ञों के करने पर दी, वह बन्दरों को योंही प्रदान कर दी। जिस लंका को शिवजी ने रावण को अपने दशों शिरों को चढ़ाने पर दिया, उसे उन्होंने विभीषण को ऐसे ही दे दिया। 'केशवदास' कहते हैं कि इसलिए श्री रामचन्द्र की अद्भुत रस में सनी हुई दान की कथा का कौन वर्णन कर सकता है? जो गति उद्धरेता अर्थात् योगियों को प्राप्त होती है, वही अयोध्या के सुअरों श्रौर कुत्तों तक ने (उनकी कृपा से) प्राप्त कर ली।

राजा बलि का दान वर्णन।

सवैया

कैटभ सो, नरकासुर सो, पल में मधु सो, मुर सो जेहि मार्‌यो।
लोक चतुर्दश रक्षक केशव, पूरण वेद पुराण विचार्‌यो॥
श्री कमला-कुच-कुंकुम मंडन पंडित देव अदेव निहार्‌यो।
सो कर मांगन को बलि पै करतारहु को करतार पसार्‌यो॥ ७४॥

जिस हाथ ने कैट, नरक, मधु, श्रौर मुर जैसे राक्षसों को पल भर में मार डाला। 'केशवदास' कहते हैं कि वेद तथा पुराणों में जिसे चौदहों लोकों का रक्षक कहा है। जो हाथ श्री लक्ष्मी जी के कुच मंडल

पर कुंकुम लगाने में बड़ा पंडित है और जिसके प्रभाव के देव, अदेव (सुरअसुर) सबों ने देखा है, ब्रह्मा को भी बनाने वाले ईश्वर ने उसी हाथ को राजा बलि के आगे फैलाया।

हरिचंद का दान वर्णन

मातुके मोह पिता परितोषन, केवल राम भरे रिसभारे।
औगुण एकही अर्जुनके, छितिमंडल के सब छत्रिन मारे॥
देवपुरी कह औधपुरी जन, केशवदास बड़े अरु बारे।
सूकर कूकर और सबै हरिचंदकी सत्य सदेह सिधारे॥ ७५॥

अपनी माता के अपराध पर और पिता को संतुष्ट करने के लिए परशुराम अत्यन्त क्रोध में भर गये और एक सहस्त्रार्जुन के अपराध करने पर उन्होंने पृथ्वी भर के सब क्षत्रियों को मार डाला। 'केशवदास' कहते हैं कि उधर राजा हरिश्चन्द्र के सत्य के कारण अयोध्या के बड़े छोटे सभी मनुष्य तथा कुत्ते सुअर तक स्वर्ग पहुँच गये।

राजा अमरसिंह का दान वर्णन

कवित्त

कारे कारे तम कैसे, प्रीतम सुधारे बिधि,
बारि बारि डारेगिरि 'केशौदास' भाखे हैं।
थोरे थोरे मदनि कपोल फूले थूले थूले,
डोलैं जल, थल. बल थानुसुत नाखे हैं।
घंटे घननात, छननात घने घुंघुरुन,
भौंरे भननात भुवपति अभिलाषे हैं।
दुवन दरिद्र दल दलन अमरसिंह
ऐसे ऐसे हाथी ये हथ्यार करि राखे हैं॥ ७६॥

'केशवदास' कहते हैं कि जो काले काले और जिन्हें ब्रह्मा ने तम अर्थात् राहु के मित्र जैसा बनाया है! जिनपर बड़े बड़े पहाड़ निछावर किये जा सकते हैं। जिनके कपोल थोड़े-थोड़े मद से अच्छी तरह फूले

हुए हैं. जो जल, थल, में घूमते हैं और बल में जो श्रीगणेश से बढ़ गये हैं। जिनकी पीठों पर घंटे घनघनाते रहते हैं तथा जिनके घुंघुरू छन-छन करके बजते रहते हैं तथा भौंरे जिनके मस्तकों पर (मद के) कारण) चारों ओर गूंजते रहते हैं; जिनके पाने की इच्छा बड़े-बड़े राजा करते हैं, ऐसे-ऐसे अनेक हाथियों को राजा अमरसिंह ने दरिद्रों की दरिद्रता के दल को मिटाने के लिए हथियार बना रखा है, अर्थात् इतने हाथी देते हैं कि उनकी दरिद्रता दूर हो जाती है।

वीरवर का दान (१)

सवैया

पापकै पुंज पखावज केशव शोकके शंख सुने सुखमा मैं।
झूंठकी झालरि झांझ अलोककी आवझयूथन जानी जमामैं॥
भेदकी भेरि बड़ेडरके डफ, कौतुकभो कलिके कुरमामैं।
जूझतही बर बीरबजे बहुदारिदके दरबार दमामैं॥ ७७॥

'केशवदास' कहते हैं कि वीरवर 'वीरबल' के युद्ध में मरते ही कलि-युग के घर में उत्सव होने लगे। पाप के पखावज और शोक के शंख बजने लगे। झूठ की झालरें लटकाई गईं, निन्दा के झांझें बजीं, तथा और भी कुविचार के ताशों को बजते हुए मैंने देखा। भेद की भेरी तथा डर का डफ बजा और दरिद्रता के दरबार में तो नगाड़े ही बजने लगे। (क्योंकि वह उसी के बड़े भारी शत्रु थे।

(२)

नाक रसातल भूधर सिंधु नदी नद लोक रचे दिशिचारी।
केशव देव अदेव रचे, नरदेव रचे रचना न नेवारी॥
रचिकै नरनाह बलीबर बीर भयो, कृतकृत्य बड़ो व्रतधारी।
दै करतारपनो कर ताहि दई, करतार दुवौ कर तारी॥ ७८।

'केशवदास' कहते हैं कि ब्रह्मा ने स्वर्ग, नर्क, पहाड़, समुद्र, नदी, नद और चौदहों लोक बनाये। फिर देवता, राक्षस, और मनुष्य बनाये

और अपना निर्माण कार्य बन्द नहीं किया। परन्तु जब उन्होंने वीर वृतधारी बीरबल को बनाया तो उन्हें बनाने के बाद वह कृतकृत्य हो गये और अपना करतारपन इनको देकर दोनों हाथों से ताली बजा दी। (अपना समकक्ष व्यक्ति पाकर और अपने कार्य का भार उसे देकर लोग ताली बजाकर कहते हैं कि 'चलो छुट्टी हुई' और संतोषकी सांस लेते हैं, यही भाव है)

विभीषण का दान वर्णन।

केशव कैसहु बारिधि बांधि कहा भयो ऋच्छनि जो छितिछाई।
सूरज को सुत बालि को बालक को नल नील कहो यहि ठाईं॥
को हनुमंत कितेक बली यमहुँ पहँ जोर लई जो न जाई।
दूषण दूषण भूषण भूषण लंक विभीषण के मत पाई॥ ७९॥

'केशवदास' कहते हैं कि किसी प्रकार समुद्र का पुल बांधकर रीछ लंका की सब भूमि पर छा गये तो क्या हुआ। सुग्रीव, तथा नल-नील ने भी जाकर वहाँ क्या किया? हनुमान जी कितने जैसे, बलवानों से भी जो प्राप्त न की गई, उसी लंका को दूषण के दूषण और भूषण के भूषण श्री रामचन्द्र ने विभीषण के मत से ही प्राप्त की।

सातवां-प्रभाव

भूमि-भूषण वर्णन

दोहा

देश, नगर, बन, बाग, गिरि, आश्रम, सरिता, ताल।
रवि, शशि, सागर भूमिके, भूषण, ऋतु सब काल ॥१॥

देश, नगर, वन, बाग, पर्वत, आश्रम, नदी, तालाब, सूर्य और चन्द्रमा का उदय-अस्त, समुद्र, छहों ऋतुएं तथा बारहों मास-ये भूमि भूषण कहलाते हैं।

देश वर्णन।

दोहा

रत्नखानि, पशु, पच्छि, वसु, वसन, सुगन्ध, सुवेश।
नदी, नगर, गढ़, वरणिये, भूषित भाषा देश ॥२॥

किसी देश के वर्णन करने में रत्नखानि, पशु, पक्षी, धन, वस्त्र, सुगन्ध, सुन्दर शोभा, नदी, नगर, किले, भाषा तथा पहनावे का वर्णन करना चाहिए।

उदाहरण

कवित्त

आछे आछे असन, बसन, बसु, वासु, पशु,
दान, सनमान, यान, बाहन बखानिये।
लोग, भोग, योग, भाग बाग राग रूप युत,
भूषननि भूषित, सुभाषा मुख जानिये।
सातौ पुरी तीरथ, सरित, सब गंगादिक,
'केशौदास' पूरण पुराण गुण गानिये।
गोपाचल ऐसो दुर्ग राजा मान सिंह जू को,
देशनि की मणि महि मध्यदेश मानिये ॥३॥

'केशवदास' कहते हैं कि जहाँ अच्छे-अच्छे भोजन, वस्त्र, धन, घर तथा पशु प्राप्त होते हैं। जहाँ दान, सम्मान होता रहता है और जहाँ अच्छी-अच्छी सवारियाँ और रथ इत्यादि तथा वाहन घोड़े इत्यादि मिलते हैं। जहाँ के लोग भोग, योग, भाग्य, राग (प्रेम) तथा रूप (सौंदर्य) से युक्त रहते हैं और जिनके मुख में अलंकारो से युक्त सुन्दर भाषा रहती है। अर्थात् जो अलंकारमयी सुन्दर भाषा बोलते हैं। जहाँ राजा मानसिंह का 'गोपाचल' ऐसा दुर्ग है, उसी मध्य देश को देशों का मुकुटमणि अर्थात् सब देशों में श्रेष्ठ समझना चाहिए।

नगर वर्णन

दोहा

खाई, कोट, अटा, ध्वजा, वापी, कूप, तड़ाग।
वारनारि, असती, सती, बरणहुँ नगर सभाग ॥ ४ ॥

हे सभाग! नगर का वर्णन करते समय खाई, कोट (किला), अटा, ध्वजा, वापी, कुआं, तालाब, वेश्या, असती (परकीया) तथा सती (स्वकीया) का वर्णन करो। ['सभाग' को सम्बोधन न माना जाय तो यह अर्थ होगा कि 'नगर को भिन्न भिन्न भागों सहित वर्णन करो']

उदाहरण

कवित्त

चहूँ भाग बाग बन मानहु सघन घन,
शोभा की सी शाला, हंस माला सी सरित बर।
ऊँचे ऊँचे अटनि पताका अति ऊंची जनु,
कौशिक की कन्हीं गंग खेलत तरलतर।
आपने सुखनि आगे निन्दत नरेन्द्र और,
घर घर देखियत देवता से नारि नर।
'केशौदास' त्रास जहाँ केवल अदृष्ट ही को,
वारिये नगर और ओरछा नगर पर ॥५॥

जहाँ पर चारों ओर सुन्दर बाग और वन ऐसे छाए रहते हैं मानो घने बादल छाये हों, जहाँ शोभा की घर, तथा हंसमाला जैसी सुन्दर नदी (बेतवा) बहती है। ऊँचे ऊँचे महलों पर ऊँची ऊँची पताकाएं तरल कौशिकी नदी सी खेलती हुई जान पड़ती हैं। जहाँ अपने सुखों के आगे राजाओं के सुखों की भी निन्दा करनेवाले अर्थात् राजाओं से भी बढ़कर सुखी, देवता जैसे स्त्री-पुरुष घर-घर में दिखलाई पड़ते हैं। 'केशवदास' कहते हैं कि जहाँ केवल अदृष्ट (प्रारब्ध या भाग्य) का ही त्रास है, उस ओरछा नगर पर संसार के और नगरों को निछावर कर देना चाहिए।

वनवर्णन।

दोहा

सुरभी, इभ, वनजीव बहु, भूतप्रेत भय भीर।
भिल्लभवन, वल्ली, विटप, दव वन वरणहुँ धीर ॥६॥

हे धीर! वन का वर्णन करते समय सुरभी (चमरी गाय), इभ (हाथी), बनैले जीव-जन्तु, भूत-प्रेतों की भीड़, भीलों के घर, लताएं, वृक्ष और दावाग्नि का वर्णन करो।

उदाहरण

कवित्त

'केशौदास' ओड़छे के आस-पास तीस कोस,
'तुंगारण्य' नाम वन बैरी को अजीत है।
विंध्य कैसो बंधु वर बारन वलित, बाघ,
बानर, बराह बहु, भिल्लन अभीत है।
यम की जमाति किधौं जामवंत कैसो दल,
महिप सुखद स्वच्छ रिच्छन को मीत है।
अचल अनलवंत, सिंधु सुरसरित युत,
शंभु कैसो जटाजूट परम पुनीत है ॥७॥

'केशवदास' कहते हैं कि ओड़छा नगर के आस-पास तीस कोस तक 'जो तुंगारण्य' नाम का वन है, वह शत्रुओं के लिए अजीत है अर्थात् शत्रु उसे नहीं जीत सकते। वह जंगल विंध्य वन का भाई सा प्रतीत होता है और वहाँ बहुत से हाथी, बाघ, बन्दर, और सूअर रहते हैं तथा वह जंगल भीलों के लिए निडर स्थान है। (वहाँ लुटेरे भील बिना किसी डर के छिप सकते हैं)। यमराज के दल अथवा जामवन्त के गण जैसे भैंसे वहाँ हैं और स्वच्छंद विचरनेवाले रीछों का वह मित्र है अतएव उन्हें सुख देनेवाला है। वहाँ के पहाड़ अग्नि युक्त हैं और वहाँ सिंधु नदी बहती है इसलिए ऐसा जान पड़ता है कि वह वन श्रीशंकर के गंगा युक्त जटा जूट के समान पवित्र है क्योंकि उनके मस्तक पर भी अनल और गंगाजी हैं।

बाग वर्णन

दोहा

ललित लता, तरुवर, कुसुम, कोकिल, कलरव, मोर।
बरनि बाग अनुराग स्यों, भँवर भँवत चहुँ ओर ॥८॥

सुन्दर लताएं, पेड़, पुष्प, कोयल, कबूतर और मोर पक्षी तथा चारों ओर घूमते हुए भौरों का उल्लेख करते हुए अनुरागपूर्वक बाग का वर्णन करना चाहिए।

उदाहरण

(कवित्त)

सहित सुदरशन करुणा कलित कम
लासन बिलास मधुवन मीत मानिये।
सोहिये अपर्णा रूप मंजरी और नीलकंठ,
'केशौदास' प्रगट अशोक उर आनिये।
रंभा स्यौं सदंभ बोलैं मंजु घोषा उरबसी,
हंस फूले सुमन स सब सुख दानिये।
देव को दिवान सो प्रवीणराय जू को बाग,
इन्द्र के समान तहाँ इन्द्रजीत जानिये ॥९॥

State Museum
LUCKNOW.

'केशवदास' कहते हैं कि देवसभा के समान ही प्रवीणराय का बाग भी है, जिसमें इन्द्र के समान राजा इन्द्रजीत सिंह रहा करते हैं। देव-सभा में जिस प्रकार सुदर्शनचक्र-धारी भगवान् करुणाशील श्रीविष्णु रहते हैं, उसी प्रकार इस बाग में भी सुदर्शन और करुणा के वृक्ष हैं। वहाँ (देव-सभा में) कमलासन (ब्रह्मा) का विलास है तो यहाँ (इस बाग में भी) कमल तथा असना (एक प्रकार का वृक्ष) की छटा है। देवसभा में मधुवन-मीत (श्रीकृष्ण) रहते हैं और इस बाग को स्वयं मधुवन का मित्र समझिए। वहाँ रूपमंजरी और अपर्णा (पार्वतीजी) सहित नीलकंठ (श्रीशंकर जी) सुशोभित होते हैं तो यहाँ भी अपर्णा (करील), रूपमंजरी, और नील कंठ (मोर अथवा नीलकंठ पक्षी) शोभा देते हैं। देवसभा में सभी प्रकटरूप से अशोक अर्थात् शोक रहित या आनन्दित रहते हैं तो यहाँ (इस बाग में) अशोक के वृक्ष हैं। देवसभा में रंभा, मंजुघोषा, उर-बसी अप्सराएँ अभिमान भरी बातें करती हैं तो यहाँ इस बाग में रंभा (केला) के वृक्ष हैं और मंजुघोषा (सुमधुर बोलनेवाली कोयल) है, जिसकी वाणी लोगों के उरवसी (हृदय में वसी) रहती है। वहाँ हंस अर्थात् सूर्य देवता हैं तो यहाँ (इस बगीचे में भी) हंस पक्षी हैं। वहाँ सुमनस अर्थात् प्रसन्नमनवाले देवता सबसुख देनेवाले है तो यहाँ भी सुमन अर्थात् पुष्प खिले हुए जो सबको सुख दिया करते हैं।

गिरि वर्णन

दोहा

तुंग शृंग दीरघ दरी, सिद्ध, सुन्दरी, धातु।
सुर नरयुत गिरि वरणिये, औषधि निरझर पातु ॥१०॥

पहाड़ का वर्णन करते समय ऊची चोटी, गहरी गुफाएँ, सिद्धों की स्त्रियां, धातु (लोहा, सोना इत्यादि) देवता और मनुष्य, औषधियाँ तथा झरनों के गिरने का वर्णन करना चाहिए।

उदाहरण

कवित्त

रामचन्द्र कीन्हें तेरे अरिकुल अकुलाइ,
मेरु के समान आन अचल धरीनि में।
सारो, शुक, हंस, पिक, कोकिला, कपोत, मृग,
"केशौदास" कहूँ हय करभ करीनि में।
डारे कहूं हार टूटे राते पीरे पट छूटे,
फूटे हैं सुगन्ध घट स्रवत तरीनि में।
देखियत शिखर शिखर प्रति देवता से,
सुंदर कुंवर और सुंदरी दरीनि में ॥११॥

'केशवदास' कहते हैं कि 'हे रामचन्द्र जी! आपके शत्रुओं ने व्याकुल होकर, अन्य पहाड़ों को भी कुछ ही घड़ियों में (अल्पकाल में) सुमेरु जैसा बना दिया है। वे शत्रुगण अपने साथ (भागते समय) मैना, तोता, हंस, पिक, कोयल, कबूतर, हिरन, घोड़े और बच्चे सहित हाथी लेते आये हैं। (वे सब जहाँ देखो वहाँ दिखलाई देते हैं) कहीं पर किसी का हार टूटा पड़ा है तो कहीं लाल-पीले कपड़े छितराये हुए दिखलाई पड़ते हैं। कहीं सुगन्धित द्रव्यों से भरे घड़े फूटगये हैं जिनमें से वह सुगन्धित द्रव पदार्थ तलहटी तक बह रहा है वहाँ के शिखर-शिखर पर बैठे हुए सुन्दर राजकुमार देवता से दिखलाई पड़ते हैं और गुफाओं में उनकी सुन्दरी स्त्रियाँ दिखलाई पड़ती हैं।

आश्रम वर्णन

होमधूम युत वरणिये, ब्रह्मघोष मुनिवास
सिंहादिक मृगमोर अहि, इभ, शुभ बैर विनास ॥१२॥

आश्रम का वर्णन करते समय धुआं सहित होम, ब्राह्मणों का वेद-पाठ, मुनियों का निवास, तथा सिंह आदि हिंसकजन्तुओं और मृगों (पशुओं) तथा हाथियों के, मोर और साँपों के स्वाभाविक वैर-

विनाश का वर्णन करना चाहिए। (भाव यह है कि आश्रम में जन्तुओं का स्वाभाविक वैर भी नष्ट हो जाता है और वे प्रेमपूर्वक रहने लगते हैं।

उदाहरण

कवित्त

'केशौदास' मृगज बछेरू चूषैं बाघिनीनि,
चाटत सुरभि बाघ बालक बदन है।
सिंहन की सटा ऐंचै कलभ करनि करि,
सिंहन को आसन गयंद को रदन है।
फणी के फणनि पर नाचत मुदित मोर,
क्रोध न विरोध जहाँ मद न मदन है।
बानर फिरत डोरे डोरे अन्ध तापसन,
ऋषिको निवास कैधों शिवको सदन है ॥१३॥

'केशवदास' कहते हैं कि मृगों के बच्चे बाघिनियों का दूध पी रहे हैं और गाय बाघ के बच्चे का मुख चाटती है। सिंहों की जटाओं को हाथी के बच्चे सूंडों से खींच रहे हैं और हाथी के दाँतों पर सिंह का आसन है। साँपों के फनों पर मुदित मोर नाच रहे हैं। यहाँ न क्रोध है, न किसी का किसी से विरोध या वैर है, न मद है और न मदन अर्थात् काम पीड़ा ही है। यहाँ पर बन्दर अंधे तपस्वियों को हाथ पकड़ कर जहां वे जाना चाहते हैं, वहाँ ले जाते हुए दिखलाई पड़ते हैं। यह ऋषि का आश्रम है अथवा श्री शंकर जी का निवास स्थान है; क्योंकि वहाँ भी नंदी (बैल) (शिवजी का वाहन) सिंह (पार्वती जी का वाहन), मोर (सोमकार्त्तिकेय का वाहन), चूहा (श्रीगणेशजी का वाहन) और गजमुख होने के कारण स्वयं गणेशजी अपना स्वभाविक वैर-विरोध छोड़कर प्रेम से रहते हैं।

सरिता वर्णन

दोहा

जलचर, हय, गय, जलज तट, यज्ञ कुंड मुनिवास।
स्नान, दान, पावन, नदी, बरनिय केशौदास ॥१४॥

'केशवदास' कहते हैं कि पवित्र सरिता का वर्णन करते समय जल के जीव, जल के हाथी तथा घोड़े, कमल, किनारे पर बने हुए यज्ञ कुंड तथा मुनियों का निवास, स्नान, और दान इत्यादि का वर्णन करना चाहिए।

उदाहरण

सवैया

ओरछे तीर तरंगनी बेतवै, ताहि तरै रिपु केशव कोहै।
अर्जुन बाहु प्रवाह प्रबोधित, रेवा ज्यों राजन की रज मोहै।
ज्योति जगै यमुना सी लगै, जग-लोचन ललित पाप विपो है।
सूर सुता शुभ संगम तुंग, तरंग तरंगित गंग सी सो है ॥१५॥

'केशवदास' कहते हैं कि ओड़छा के निकट बेतवा नदी है; उसे पार कर सके, ऐसा शत्रु कौन सा है ? यह सहस्रार्जुन की भुजाओं द्वारा बढ़ाए हुए प्रवाहवाली नर्मदा नदी के समान है; क्योंकि इसका प्रवाह भी अर्जुनपाल राजा के द्वारा बढ़ाया गया है। इसके सामने राजाओं का राजापन मूर्छित हो जाता है अर्थात् इसके प्रवाह पर राजाओं का कोई वश नहीं चलता-कोई भी राजा इसपर पुल नहीं बँधवा सकता। यह बेतवा नदी अपनी ज्योति (शोभा) के कारण यमुना जैसी लगती है क्योंकि जमुना जल जग लोचन (सूर्य) के द्वारा लालित है और यह जग लोचन (संसार के मनुष्यों के नेत्रों से) लालित है अर्थात् इसे सब बड़े प्रेम से देखते हैं। जैसे यमुना पापों को नष्ट कर देती हैं, वैसे यह भी पापों को दूर कर देती है। सूर्य-सुता (यमुना) में मिलने के कारण यह ऊँची तरंगोंवाली गंगा सी सुशोभित होती है। (क्योंकि गंगाजी भी यमुना में मिली हैं)

तड़ाग वर्णन

दोहा

ललित लहर, खग, पुहुप, पशु, सुरभि समीर, तमाल।
करभकेलि, पंथी प्रकट, जलचर बरणहुँ ताल ॥१६॥

ताल का वर्णन करते समय सुन्दर लहरें, जल-पक्षी, पुष्प, जल-पशु, सुन्दर सुगन्धितवायु, तमाल आदि वृक्षों, हाथियों के बच्चों की क्रीड़ा, यात्रियों तथा जलचरों का वर्णन कीजिए।

उदाहरण

। कवित्त ।

आपु धरैं मल औरनि केशव निर्मलगात करैं चहुँओरैं।
पंथिनके परिताप हरैं हठि, जे तरुतूल तनोरुह तोरैं॥
देखहु एक स्वभाव बड़ो, बड़भाग तड़ागनि को बित थोरैं।
ज्यावत जीवनिहारिनिको, निज बंधनकै जगबंधन छोरैं ॥१७॥

'केशवदास' कहते हैं कि तालाब दूसरों का मल स्वयं लेकर, चारों ओर के जीवों को निर्मल गात (स्वच्छशरीर वाला) बना देते हैं। जो पथिक किनारे के पेड़ और उनकी शाखाओं को हठपूर्वक तोड़ते हैं, उनके दुःखों को भी दूर करते हैं। (उन्हें भी निर्मलजल में स्नान करा कर स्वस्थ बनाते हैं)। इन बड़भागी तालाबों के सुन्दर स्वभाव को देखो कि वे अपने थोड़े से धन से, अपने जीवन (जल) को हरनेवाले को भी जिलाते हैं और अपने बंधन से संसार के बंधन को दूर करते हैं अर्थात् बाँध आदि अपने ऊपर बँधवा कर स्वयं तो बंधन में पड़ते हैं और उससे संसार के लोगों को जो पार करने में रुकावट होती है, उसे दूर करते हैं अथवा पुराणों के अनुसार तालावादि पर बाँध बांधने वालों को मुक्ति-प्रदान करते हैं।

समुद्र वर्णन

दोहा

तुंगतरंग गँभीरता, रतन जलज बहुजंत।
गंगासंगम देवतिय, यान विमान अनंत ॥१८॥
गिरि बड़वानल वृद्धि बहु, चन्द्रोदयते जानु।
पन्नग देव अदेव गृह, ऐसो सिन्धु बखानु ॥१९॥

समुद्र का वर्णन करते समय, ऊँची लहरें, गँभीरता, रत्न, कमल, बहुत से जन्तु, गंगा का संगम, देवताओं की स्त्रियाँ, अनेक प्रकार के यान तथा विमान, पहाड़, बडवाग्नि, चन्दोदय से वृद्धि होना, साँप, देवता, और राक्षसों का घर, आदि बातों का वर्णन करना चाहिए।

उदाहरण (१)

सवैया

शेष धरे धरणी, धरणी धर केशव जीव रचे विधि जेते।
चौदहलोक समेत तिन्हैं, हरिके प्रतिरोमनि में चित चेते ॥
सोवत तेऊ सुनै इनहीं में, अनादि अनंत अगाधहैं येते।
अद्भुत सागर की गति देखहु सागरही महँ सागर केते ॥२०॥

'केशवदास' कहते है कि शेष पृथ्वी को धारण किए हुए है और जितने जीव ब्रह्मा ने बनाये है उन सबकों पृथ्वी धारण करती है। वे जीवों सहित चौदहों लोक, हरि (विष्णु) के रोम-रोम में समाये हुए हैं यह बात (पुराणों के अनुसार) मन में आती है। परन्तु ये समुद्र इतने अनन्त और अगाध है कि वे विष्णु भी इन्हीं में सोया करते हैं, ऐसा सुना जाता है। समुद्र की अद्भुत गत तो देखो कि समुद्र में कितने ही समुद्र भरे पड़े हैं।

(२)

भूति विभूति पियूषहुकी विष, ईशशरीर कि पाप विपोहै।
है किधौं केशव कश्यपको घरु, देव अदेवनिके मन मोहै ॥
संतहियो कि बसैं हरि संतत, शोभअनंत कहै कवि कोहै।
चंदननीर तरंग तरंगित, नागर कोउ कि सागर सोहै ॥ २१ ॥

यह समुद्र है या शंकर जी का शरीर है ? क्योंकि जिस प्रकार शंकर जी के शरीर में विभूति (भस्म), पियूष (अमृत) और विष की भूति (अधिकता) है, उसी प्रकार इसमें भी विभूति (धन-रत्नादि), पियूष (अमृत) और विष (कलाकूट अथवा जल)का प्राबल्य है। जिस प्रकार शंकर जी के दर्शन से पाप दूर होते हैं, उसी प्रकार इससे भी पापों का छेदन होता है। 'केशवदास' कहते हैं कि अथवा यह कश्यप का घर है, क्योंकि जैसे उनके घर में देवता और राक्षस रहते हैं, वैसे इसमें भी रहते हैं। अथवा यह संतो का हृदय है क्योंकि उनके हृदयों में सदा-हरि बसते हैं और इसके हृदय में भी सदाहरि का निवास रहता है। अतः इस समुद्र की ऐसी अनन्त शोभा है कि ऐसा कौन कवि है जो उसका वर्णन कर सके। अथवा यह समुद्र है या कोई नागर पुरुष (नगरनिवासी व्यक्ति) है क्योंकि जैसे उसका शरीर चन्दन की तरंग से तरंगित (सुगंध से सुगंधित) रहता है, वैसे इसका शरीर भी उस चन्दन से युक्त रहता है जो व्यापारी लोग पहाड़ से काट-काट कर इसके जल द्वारा बहा ले जाया करते हैं।

अथ सूर्योदय वर्णन

दोहा

सूर उदयते अरुणता. पय पावनता होइ।
शंख वेदधुनि मुनि करैं, पंथ चलै सबकोइ ॥२२॥
कोक कोकनद शोकहर, दुख कुबलय कुलटानि।
तारा, औषधि, दीप, शशि, घुघू चोर तम हानि ॥२३॥

सूर्योदय होने पर अरुणता (लालिमा) और पय (जल) की पवित्रता होती है। मुनि लोग वेद-ध्वनि करने लगते हैं और सब लोग मार्ग पर चलना आरम्भ करते हैं। कोक (चक्रवाक पक्षी) और कोकनद (कमल) का दुख दूर हो जाता है, कुमुदिनी और कुलटास्त्रियों को दुख होता है। तारा, औषधि, दीपक, चन्द्रमा, उल्लू, चोर तथा अंधकार की हानि होती है।

उदाहरण

(कविता)

कोकनद मोदकर मदनवदन किधौं,
दशमुख मुख, कुवलय दुखदाई है।
रोधक असाधु जन, शोधक तमोगुण को,
उदित प्रबुद्धबुद्धि 'केशौदास' गाई है।
पावन करन पय हरिपद-पंकज कै,
जगमगै मनु जगमग दरसाई है।
तारापति तेजहर तारका को तारक की,
प्रगट प्रभातकर ही की प्रभुताई है ॥२४॥

'केशवदास' कहते हैं कि यह प्रभाकर (सूर्य) की प्रभुताई है या कामदेव का मुख है क्योंकि जैसे सूर्योदय कोकनद (कमल) के लिए मोद कर (आनन्द दायक) होता है, वैसे ही कामदेव का मुख कोकनद (कोकशास्त्र पढ़नेवालों को) को मोदकर (आनन्ददायी) है। अथवा यह रावण का मुख है क्योंकि जैसे वह कुवलय पृथ्वीमंडल को दुख देनेवाला है, वैसे यह भी कुवलय (कुमुदिनी) को दुःखदायी है। अथवा यह प्रबोध-बुद्धि का उदय है क्योंकि जिस प्रकार सूर्य की प्रभा आसाधु (दुष्टों, चोरों, लुटेरों) को रोकने वाली होती हैं और तमोगुण (अन्धकार) को दूर करती है, उसी तरह प्रबोद्ध-बुद्धि (ज्ञानबुद्धि का उदय) भी असाधुओं की रोधक (पापों से हटानेवाली) और तमोगुण की शोधक होती है। अथवा यह सूर्य का प्रकाश है या श्रीविष्णु के चरण कमल हैं क्यों कि जैसे यह (सूर्य का प्रकाश) पय (जल) को पवित्र करता है, वैसे उनके (श्रीविष्णु के) चरण-कमल भी करते हैं। अथवा यह मनु महाराज की जगमगाती हुई ज्योति है क्योंकि सूर्य की प्रभा जैसे जग-मग (संसार का मार्ग) दिखलाती है, वैसे यह मनुमहाराज की ज्योति भी जग-मग (संसार के लोगों को धर्म का मार्ग दिखलानेवाली) है।

अथवा यह सूर्योदय है या ताड़का के ताड़क (ताड़ना करनेवाले) श्रीराम हैं, क्योंकि जैसे यह (सूर्योदय) तारापति (चन्द्रमा) का तेजहर (तेजहरनेवाला) और तार का (तारों या नक्षत्रों) का तारक (ताड़क या ताड़न करनेवाला) है, वैसे श्रीरामचन्द्र भी तारापति (तारा के स्वामी बालि) के तेज-हर (तेज को हरने वाले) और तारका के तारक (ताड़का को तारने वाले) हैं।

चन्द्रोदय वर्णन

दोहा

कोक, कोकनद, बिरहि, तम, मानिनि, कुलटनि दुःख।
चन्द्रोदयते कुवलयनि, जलधि, चकोरनि सुःख ॥२५॥

चन्द्रोंदय से कोक (चकवा पक्षी), कोकनद (कमल), विरही, तम (अन्धकार), मानिनी नायिका तथा कुलटाओं को दुख होता है और कुबलय, समुद्र तथा चकोर पक्षी को सुख होता है।

उदाहरण

कवित्त

'केशौदास' है उदास कमलाकर सों कर,
शोषक प्रदोष ताप तमोगुण तारिये।
अमृत अशेष के विशेष भाव बरषत,
कोकनद मोद चंड खंडन विचारिये।
परम पुरुष पद विमुख पुरुष रुख,
सनमुख सुखद विदुष उर धारिये।
हरि हैं री हिय में न हरिन हरिन नैनी
चन्द्रमा न चन्द्रमुखी नारद निहारिये ॥२६॥

'केशवदास' कहते हैं कि श्रीरामचन्द्र चन्द्रमा की ओर देखकर सीता जी से कहते हैं कि 'हे चन्द्रमा जैसे मुखवाली सीता ! यह चन्द्रमा नहीं है ? यह तो नारद दिखलाई पड़ते है क्योंकि जिस प्रकार चन्द्रमा

के कर (किरणें) कमलों के समूह से उदासीन रहते है, उसी प्रकार नारद के हाथ भी धन समूह से विरक्त रहा करते हैं। जिस प्रकार, चन्द्रमा प्रदोष (संध्याकाल) और ताप, (गरमी) का शोषक (नाशकरनेवाला) तमोगुण अंधकार) की ताड़ना करनेवाला होता हैं, उसी प्रकार नारद भी प्रदोष (बड़े बड़े दोष) और ताप (दैहिक, दैविक भौतिक) दूर करते हैं और तमोगुण अर्थात् अज्ञान को हटाते हैं। चन्द्रमा, जिस प्रकार अशेष (परिपूर्ण) अमृत को बरसाता है, उसी प्रकार नारद भी अमृत (अमर) और अशेष (परिपूर्ण) श्रीविष्णु भगवान् के भाव अर्थात् चरित्रों की बरसाया करते हैं अर्थात् उनका चरित्रगान किया करते हैं। जिस प्रकार चन्द्रमा चक्रवाकों की ध्वनि के आनन्द का प्रचंड खंडन करने वाला है, उसी प्रकार नारद भी कोक-शास्त्र के शब्दों के आनन्द के प्रचंड खंडनकर्त्ता हैं अर्थात् विषयचर्चा के विरोधी हैं। जिस प्रकार चन्द्रमा परम पुरुष अर्थात् पति के पदों (चरणों) से विमुख या रूठी हुई माननी नायिका से परुष (कठोर) रुख (प्रवृत्ति) रखता है, उसी प्रकार नारद भी परम पुरुष अर्थात् श्री विष्णु भगवान से विमुख जनों से परुष रुख (कठोर प्रवृत्ति) रखते हैं। हे मृगनैनी ! और जो यह काला दाग दिखलाई पड़ता है, वह हरिण नहीं है. प्रत्युत श्याम कान्ति धारण करनेवाले विष्णु हैं जो नारद के हृदय में निवास करते हैं।

षटऋतु वर्णन

(१) वसन्त

दोहा

वर्णिय बसंत सपुहुप अलि, बिरहि बिदारण बीर।
कोकिल कलरव कलितबन, कोमल सुरभि समीर ॥२७॥

वसंत में सुन्दर पुष्प, भौंरें, कोयल की ध्वनि, सुन्दर वन, कोमल अर्थात् मंद और सुरभि अर्थात् सुगंधित वायु का वर्णन करना चाहिए क्योंकि ये वस्तुएँ वियोगियों के हृदयों को विदारण करने वाले वसन्त के बीर योद्धा हैं।

उदाहरण

कवित्त

शीतल समीर शुभ गंगा के तरंग युत.
अंबर विहीन वपु वासुकी लसंत है।
सेवत मधुपगण गजमुख परभृत,
बोल सुन होत सुखी संत और असंत है।
अमल अदल रूप मंजरी सुपद रज,
रंजित अशोक दुख देखत नसंत है।
जाके राज दिसि दिसि फूले हैं सुमन सब
शिव को समाज किधौं केशव वसंत है ॥२८॥

'केशवदास' कहते हैं कि शिवजी का समाज है या वसंत ऋतु है ? शिवजी के समाज में जिस प्रकार पवित्र गंगाजी की लहरों से युक्त शीतल समीर (ठंडी वायु) बहा करती है। वह स्वयं अंबरविहीन वपु (वस्त्र रहित शरीर वाले) हैं और उनके शरीर पर वासुकी (साँप) सुशोभित रहते हैं। मधुप (देवता), गजमुख (श्रीगणेश) और परभृत (षटमुख-सोमकार्त्तिकेय) उनकी सेवा करते हैं, जिनकी वाणी को सुनकर सन्त और असन्त (रावण जैसे ; सुखी होते हैं। वह: अमल निर्मल चरित्र वाला) अदल (अपर्णा-पार्वतीजी) जैसी रूपमंजरी (सुन्दरी) के सुपदों की रज (धूल) से लोग अशोक (शोकरहित) हो जाते हैं, क्योंकि उन चरणों के देखते ही दु:ख नष्ट हो जाते हैं। वहाँ-शिवजी के राज्य में—दिशाओं-दिशाओं के सुमन (देवतागण) फूले प्रसन्न) रहते हैं। उसी प्रकार—

वसंत में गंगाजी की लहरों के स्पर्श से युक्त हो शीतल समीर बहा करती है। अंबर (आकाश), विहीनवपु (कामदेव) और वासुकी (पुष्प हार) सुशोभित होते हैं। गजमुख, अर्थात् हाथियों के मुख की सेवा मधुपगण (भौंरे) किया करते हैं, क्योंकि वसंत में ही हाथी

मतवाले हो जाते हैं और मदयुक्त होने के कारण उनके मस्तकों पर भौंरे मंडराते रहते हैं। परभृत अर्थात् कोयलों की बोली सुनकर सभी सन्त और असन्त सुखी होते हैं। अमल (निर्मल) और अदल (अद्वितीय) रूप मंजरी (सुन्दरी स्त्रियों) के पदरज से सुशोभित अशोक के वृक्षों को देखते ही दुःख नष्ट हो जाते हैं और सब प्रकार के सुमन (फूल) फूलते हैं। (२) ग्रीष्म वर्णन

दोहा

तातै तरल समीर मुख, सूखे सरिता ताल।
जीव अबल जल थल विकल, ग्रीषम सफल रसाल॥२९॥

ग्रीष्मऋतु में गर्म और चंचल वायु बहती है। लोगों के मुख, नदी और तालाब सूखने लगते हैं। जल-थल के जीव-जन्तु अशक्त और व्याकुल हो जाते हैं। केवल रसाल अर्थात् आम ही सफल होता है अर्थात् गर्मी की ऋतु में केवल आम ही फलता है।

उदाहरण

कवित्त

चंडकर कलित, बलित वर सदागति,
कंद मूल, फलफूल दलनि को नासु है।
कीच बीच बचैं मीन, व्याल बिल कोल कुल
द्विरद दरीन दिनकृत को बिलासु है।
थिर, चर जीवनहरन, वन वन प्रति
'केशौदास' मृगशिर श्रवन निवासु है।
धावत बली धनुस, सोहत निपानिसर,
शवर समूह कैधों ग्रीषम प्रकासु है॥ ३०॥

यह शवर-समूह (भीलों या जंगली मनुष्यों का दल) है या ग्रीष्म ऋतु ? क्योंकि जिस प्रकार शवर समूह चंडकर कलित (बलवती भुजाओं से युक्त) और बलितवर (बल से युक्त) और सदागति (सदा घूमने

वाला होता है। वह कंद, मूल, फल, और दलों या पत्तों का नाश करता है और उसके मारे कीचड़, मछलियां, बिलों में घुसे साँप और गुफाओं में घुसे हुसे हुए कोल (बाराह) तथा द्विरद (हाथी) कहीं बच पाते है ? अर्थात् नहीं बचपाते। यह तो उनका दिन कृत अर्थात् दिन प्रतिदिन का विलास या मनोरंजन है। वह (शवरदल) वन-वन में घूमकर चर और अचर जीवों का जीवन हरण करता रहता है और (केशवदास कहते हैं) कि उनका निवास स्थान मृगशिर (हिरनों के शिर) तथा श्रवण (कानों) से भरा रहता है अर्थात् उनके निवास स्थान में हिंरनों के कटे हुए अंग-प्रत्यंग मिला करते हैं या मृगों के शिरों से श्रवित (टपकता हुआ) रक्त भरा रहता है। वह थल बली (शवरदल) हाथ में धनुष और निपानि (अचूक) सर (वाण) लिए घूमता रहता है।

उसी प्रकार—

ग्रीष्म भी चंडकर कलित (सूर्य की प्रचंड किरणों से युक्त) रहता है और सदागति अर्थात् श्रेष्टवायु या लू के झोंकों से युक्त रहता है। उसमें कद, मूल, फल, फूल और पत्तों का नाश होता रहता है। ग्रीष्म में दिनकृत (सूर्य) का विलास (प्रभाव) ऐसा रहता है कि कीचड़ में मछलियां, बिल में घुसकर सर्प और गुफाओं में घुसकर कोल (सूअर) तथा द्विरद (हाथी) किसी प्रकार बच पाते हैं। ग्रीष्म थल और जल के चर अचर जीवों का जीवन (जल) हरने वाला होता है। इसमें मृगशिरा नक्षत्र तपता है और श्रवन अर्थात् बरसता नहीं। इसमें बली (गैंडाजन्तु) धनुस अर्थात् मरुभूमि की भांति हत-प्यासा-होकर निपानि सर (पानी रहित) तालाब की ओर दौड़ता रहता है।

(३) वर्षा वर्णन

दोहा

वरषा हँस पयान, बक, दादुर चातक मोर
केतकि पुष्प, कदम्ब, जल, सौदामनी घनघोर ॥३१॥

वर्षा में हंसों का मानसरोवर को पयान, बक (बगला), दादुर (मेंढक), चातकपक्षी, और मोर, केतकी पुष्प, कदम्ब, जल (वर्षा) बिजली तथा बादलों की गड़गड़ाहट का वर्णन किया जाता है।

उदाहरण

कवित्त

भौंहैं सुरचाप चारु प्रमुदित पयोधर,
भूख न जराय जोति तड़ित रलाई है।
दूरि करी सुख मुख सुखमा ससी की नैन,
अमल कमल दल दलित निकाई है।
'केशौदास' प्रबल करेनुका गमन हर,
मुकुत सुहंसक-सबद सुखदाई है।
अंबर बलित मति मो है नीलकंठ जू की,
कालिका कि वर्षा हरषि हिय आई है ॥३२॥

यह कालिका देवी है या हृदय को हरषाती हुई वर्षाऋतु आई है, क्योंकि इन्द्रधनुष ही उनकी सुन्दर भौंहें हैं, बादल उन्नत कुच हैं, बिजली की चमक उनके जड़ाऊ गहनों की ज्योति है। उन्होंने अपने मुख की शोभा से चन्द्रमा की शोभा को दूर कर दिया है और उनके नेत्रों ने स्वच्छ कमलों की पंखुड़ियों की शोभा को भी दलित कर दिया है। 'केशवदास' कहते हैं कि वह मतवाली हथिनी की चाल को भी हरने वाली हैं। उनके बिछुओं की ध्वनि स्वच्छन्द रूप से हो रही है। जो सुख देने वाली है। उन्होंने नीला कपड़ा पहन लिया है और नीलकंठ (श्रीशंकरजी) की मति को मोहित करती है। उसी प्रकार—

वर्षा में भौ (भय) है अर्थात् अनेक तरह के कीड़े पतंगों का भय है। सुर-चाप (इन्द्रधनुष) दिखलायी पड़ता है, उमड़े हुए बादल दृष्टिगोचर होते हैं और बिजली की चंचल चमक दिखलयी पड़ती है। चन्द्रमा के मुख की शोभा दूर हो गई है और (नैन अमल) नदियां

स्वच्छ नहीं रहती। 'केशवदास' कहते हैं कि प्रचलक अर्थात् प्रबल जलधारा रेनुका हर (धूल को बहा ले जानेवाली) हो जाती है और गमन अर्थात् चलना फिरना रुक जाता है। हंसों के सुखदाई शब्दों से देश भर रहित हो जाता और भौंरों की मति मोहित होती है।

(४) शरद वर्णन

दोहा

अमल अकास प्रकास ससि, मुदित कमल कुल काँस।
पंथी, पितर पयान नृप, शरद सु केशवदास ॥३३॥

'केशवदास' कहते हैं कि शरद ऋतु में आकाश निर्मल हो जाता है, चन्द्रमा का प्रकाश उज्ज्वल दिखलाई पड़ता है, कमल तथा कांस मुदित होते हैं (फूलते हैं) और पथिक, पितर तथा राजाओं का पयान (गमनागमन) आरम्भ होता है।

उदाहरण

कवित्त

सोभा को सदन, ससि बदन मदन कर,
बंदै नर देव कुबलय बरदाई है।
पावन पद उदार, लसति हंस क मार,
दीपति जलज हार दिसि दिसि धाई है।
तिलक चिलक चारु लोचन कमल रुचि,
चतुर चतुर मुख जग-जिय भाई है।
अमर अंबर नील लीन पीन पयोधर,
'केशौदास शारदा कि शरद सुहाई है ॥३४॥

'केशवदास' कहते हैं कि यह श्री शारदा जी हैं या सुन्दर शरद ऋतु हैं, क्योंकि जिस प्रकार श्रीशारदा जी का मुख शोभा युक्त चन्द्रमा की भाँति होता हुआ भी मद या अभिमान उत्पन्न करने वाला नहीं है अर्थात् (उन्हें अपने मुख की शोभा का तनिक भी अभिमान नहीं है)।

देवता और मनुष्य सभी उनकी वंदना करते हैं और वह कुवलय अर्थात् पृथ्वी मंडल को वर दिया करती हैं अथवा बल प्रदान करती हैं। उनके पवित्र चरणों में सुन्दर भूषण सुशोभित होते हैं और उनके मोतियों के हार की चमक सुन्दर है तथा चारों दिशाओं में छाई हुई है। उनके तिलक की चमक भी सुन्दर है और नेत्र कमल जैसे हैं तथा नीलाम्बर में उनके पुष्ट कुच छिपे हुए हैं। उसी प्रकारः—

शरद ऋतु का मुख शोभा युक्त है तथा चन्द्रमा जैसा है तथा वह मदन कर अर्थात् कामोद्दीपन करनेवाला है। नर-देव या राजा लोग शरद ऋतु की वंदना करते हैं क्योंकि इसी ऋतु में वे विजय यात्रा को निकलते हैं। वह कुवलय (कमलों) को वरदाई अर्थात् बल देने वाली है। शरद ऋतु में, पवित्र स्थानों पर हंसों की पंक्तियां शोभा देती हैं और दिशाओं, दिशाओं में कमलों की शोभा दिखलाई पड़ती है। तिलक वृक्षों की चमक आँखों को रुचिकर होती है तथा चारों ओर मनुष्यों को अच्छी लगती है। नीले विस्तृत आकाश में बादल लीन दिखलाई पड़ते हैं।

(५) हेमंत वर्णन

तेल, तूल, तांबूल तिय, ताप, तपन रतिवंत।
दीह रजनि लघु द्यौस सुनि, शीत सहित हेमंत ॥३५॥

हेमन्त में तेल, तूल (रूई), तिय (स्त्री), ताप (अग्नि), तपन (सूर्य) अच्छे लगते हैं और मनुष्य रतिवंत (कामपीड़ित) हो जाते हैं। रातें बड़ी होती हैं और दिन छोटा होता है तथा शीत बहुत पड़ता है।

उदाहरण

कवित्त

अमल कमल दल लोचन ललित गति,
जारत समीर सीत, भीत दीह दुख की।
चंद्रक न खायो जाय, चंदन न लायो जाय,
चंदन चितयो जाय प्रकृति बपुष की।

घट की घटति जाति घटना घटीहू घटी,
छिन छिन छीन छवि रविमुख सुख की।
सीकर तुषार स्वेद सोहत हेमंत ऋतु,
किधौं 'केशौदास' प्रिया प्रीतम विमुख की ॥३६॥

'केशवदास' कहते हैं कि यह हेमंत ऋतु है या अपने प्रियतम से अलग वियोगिनी स्त्री है। क्योंकि हेमंत ऋतु में जिस प्रकार निर्मल कमल दलों में लोच-न अर्थात् शोभा नहीं रहती और शीत समीर उन्हें धीरे धीरे जलाये डालता है और इसमें दुःखों का बड़ा डर रहता है। लोगों से मारे ठंड के न तो पानी पिया जाता है और न चंदन लगाया जाता है तथा न चन्द्रमा की ओर देखा ही जाता है। इस ऋतु में शरीर की ऐसी ही प्रकृति हो जाती है। दिन की घड़ियाँ दिन दिन घटती जाती है अर्थात् दिन छोटा होता जाता है और सूर्य के मुख की शोभा क्षण क्षण क्षीण होती जाती है। अर्थात् सूर्य ताप में बल नहीं रहता। इस हेमन्त ऋतु में तुषार के सीकर (कण) लोगों को अच्छे लगते हैं और किसी प्रकार गर्मी पाकर शरीर में पसीना आने लगे तो वह अच्छा लगता है।

उसी प्रकार—वियोगिनी स्त्री के कमल-दल जैसे लोचनों (नेत्रों) तथा उसकी ललित गति (सुन्दर चाल) को, शीत वायु जलाए डालता है। उसे दुःखों का बड़ा भय लगा रहता है। उसके शरीर का कुछ ऐसा स्वभाव हो जाता है कि न तो उससे पानी पिया जाता है, न खाया-जाता है और न चंदन लगाया जाता है और न चन्द्रमा की ओर देखा ही जाता है। उसके शरीर की रचना दिन दिन घटती जाती है अर्थात् वह दुबली-पतली होती जाती है तथा उसके सूर्य जैसे चमकीले मुख की चमक तथा सुख क्षण-क्षण क्षीण होता जाता है और उसे (वियोग की तपन के मारे) तुषार के सीकर (कण) पसीने की बूंदों जैसे भासित होते हैं।

(६) शिशिर वर्णन

दोहा

शिशिर सरस मन वरणिये, देखत राजा रंक।
नाचत गावत हँसत दिन, खेलत रैनि निशंक ॥३७॥

'शिशिर ऋतु' में राजा से लेकर रंक तक का मन प्रसन्न दिखलाई पड़ता है और वे दिन-रात निशंक होकर नाचते गाते, और हंसते हैं, इसलिए इस ऋतु में इन्हीं का वर्णन करना चाहिए।

उदाहरण

कवित्त

सरस असम सरि, सरसिज लोचनि बिलोकि,
लोकि लोक लाज लोपिबे का आगरी।
ललित लता सुबाहु जानि जून ज्वान बाल,
बिटप उरनि लागै उमगि उजागरी।
पल्लव अधर मधु पोवत ही मधुपन
रंचित रुचिर पिक रुत सुखसागरी।
इति बिधि सदागति बास बिगलित गात,
शिशिर की शोभा किधौं बारिनारि नागरी ॥३८॥

यह शिशिर ऋतु की शोभा है या चतुर वारिनारि (गणिका) है ? शिशिर ऋतु में जिस प्रकार सरस (अधिक या ऊँचे) असम (जो बराबर के नहीं अर्थात् नीचे) सब बराबर हो जाते हैं (एक साथ ऊँच नीच का भाव छोड़ कर होली खेलते हैं)। कमल जैसे नेत्रवाली स्त्रियाँ लोक-मर्यादा तथा लज्जा को लुप्त करने में निपुण हो जाती हैं। सुन्दर लताए ही इस शरद ऋतु को बाहें हैं जो बूढ़े, ज्वान तथा बाल वृक्षों से उमंग में भरी हुई लपटती हैं। नये पत्ते ही इस ऋतु के ओठ है। भौंरों के हृदय-मधु को पीते ही अनुराग से रंग जाते हैं और कोयल की ध्वनि सुख उत्पन्न करने वाली होती है। शिशिर में ऐसी

शोभा रहती है कि वायु के सारे अंग में सुगंध फैली रहती है अर्थात् इस ऋतु में सुगन्धित वायु बहा करती है।

उसी प्रकार—

गणिका अधिक असमसर अर्थात् कामवती होती है और लोक मर्यादा तथा लज्जा को मेटने में बड़ी निपुण दिखलाई पड़ती है। वह अपनी लतारूपी बाहुओं के द्वारा बूढ़े, जवान, बालक तथा धूर्त्त सभी के हृदयों में उमंग पूर्वक लपटती है। जब मधुप (शराबी) लोग उसके ओठों के मधु को पीते हैं तब उसे रुचिकर प्रतीत होता है और वह कोयल जैसी बोली वाली तथा सुख की सागर ही होती है। उसके शरीर की गति सदा यही रहती है कि उससे सुगन्ध निकलती रहे।

आठवां-प्रभाव

राज्य श्री भूषण वर्णन

(दोहा)

राजा, रानी, राजसुत, प्रोहित, दलपति दूत।
मंत्री, मंत्र, पयान, हय, गय, संग्राम अभूत ॥१॥
आखेटक, जल केलि, पुनि, विरह, स्वयंबर जानि।
भूषित सुरतादिकनि करि, राज्यश्रीहि बखानि ॥२॥

राज्यश्री के वर्णन में राजा, रानी, राजकुमार, पुरोहित, सेनापति, दूत, मंत्री, मंत्र (सम्मति), प्रयाण (विजय करने के लिए सेना का गमन) घोड़े, हाथी तथा अपूर्व संग्राम का उल्लेख करना चाहिए। इनके अतिरिक्त आखेट, जल-क्रीड़ा, वियोग, स्वयंवर, और सुरत आदि विषयों का वर्णन भी करना चाहिए।

राजा वर्णन।

प्रजा, प्रतिज्ञा, पुण्यपन, धर्म, प्रताप, प्रसिद्धि।
शासन नाशन शत्रु के, बल विवेक की वृद्धि ॥३॥
दंड, अनुग्रह, धीरता, सत्य, शूरता, दान।
कोश, देश युत बरणिये, उद्यम, क्षमा निधान ॥४।

राजा का वर्णन करते समय प्रजा का ध्यान, दृढ़ प्रतिज्ञा, पुण्य करने का प्रण, धर्म, प्रताप, प्रसिद्धि, शासन, शत्रुओं का नाश, बल और विवेक की वृद्धि, दंड, अनुग्रह (दया), धीरता, सत्य, शूरता, दान, कोश, देश, उद्यम (प्रयत्न) तथा क्षमा आदि विषयों का वर्णन करना चाहिए।

उदाहरण

(कवित्त)

नगर नगर पर घन ही तौ गाजैं घोर,
ईति की न भीति, भीति अघन अधीर की।
अरि नगरीन प्रति करत अगम्या गौन,
भावै व्यभिचारी, जहाँ चोरी परपीर की।
शासन को नाशन करत एक गंधवाह,
'केशौदास' दुर्गनहीं दुर्गति शरीर की।
दिसि दिसि जीति पै अजीति द्विजदीननिसों,
ऐसी रीति राजनीति राजै रघुवीर की ॥५॥

श्रीरामचन्द्र जी की राजनीति से देशभर में ऐसी सुख-शान्ति विराज रही है कि नगरों पर चढ़ाई करनेवाला कोई नहीं है, केवल बादल ही उनपर घोर गर्जना किया करते हैं। ईतियों (खेती को हानि पहुंचाने वाले सात प्रकार के भय) का कोई भय नहीं है। भय है तो केवल पाप और अधीरता का है। अगम्या गमन केवल शत्रुओं की नगरी पर ही किया जाता है। केवल भाव ही व्यभिचारी हैं (अर्थात् केवल भावों का उल्लेख करते समय व्यभिचारी शब्द सुनाई पड़ता है, नहीं तो वास्तविक व्यभिचारी कोई है ही नहीं) और दूसरों की पीड़ा की ही चोरी की जाती है अन्यथा चोरी है ही नहीं। शासन (आज्ञा) का नाश (उल्लंघन) केवल वायु करती है अर्थात चाहे जहाँ बिना रोक-टोक जाया करती है। 'केशवदास' कहते हैं कि उनके राज्य में केवल दुर्गों (किलों) ही के शरीरों की दुर्गति रहती है, क्योंकि उन्हीं के शरीर टेढ़े-मेढ़े रहते हैं अन्यथा किसी की भी दुर्गति नहीं होती। उनकी राजनीति सभी स्थानों में जीतती है परन्तु केवल ब्राह्मणों और दीनों से नहीं जीत पाती।

राज पत्नी वर्णन।

दोहा।

सुंदरि, सुखद, पतिव्रता, शुचि रुचि, शील समान।
यहिविधि रानी बरणिये, सलज, सुबुद्धि, निधान ॥६॥

रानी को सुन्दरी, सुख देनेवाली, पतिव्रता, शुचिरुचि (पवित्र रुचिवाली) शीलवती, समान (मान का ध्यान रखनेवाली), सलज, (लज्जाशीला) और सुबुद्धि-निधान (अत्यन्त बुद्धिमती) वर्णन करना चाहिए।

उदाहरण

कवित्त

माता जिमि पोषति, पिता ज्यों प्रतिपाल करै,
प्रभु जिमि शासन करति, हेरि हियसों।
भैया ज्यों सहाय करै, देति है सखा ज्यों सुख,
गुरु ज्यों सिखावै सीख, हेत जोरि जियसों।
दासी ज्यों टहल करै, देवी ज्यों प्रसन्न ह्वै,
सुधारै परलोक लोक नातो नहिं बियसों।
छाके हैं अयान मद छिति के छितीश छुद्र,
और सो सनेह करैं छोड़ि ऐसी तियसों ॥७॥

जो रानी (अपनी प्रजा और सेवक वर्ग को) माता के समान पालती है, पिता की तरह उनकी देख-भाल करती है तथा स्वामी की तरह उनपर शासन करती हुई भी हृदय से उन्हें अपना समझती है। जो (परिवार वर्ग के लोगों की) भाई की तरह सहायता करती है, मित्र की तरह सुख देती है, गुरु की भाँति मनसे प्रेम पूर्वक उपदेश देती है। जो रानी (अपने पति की) दासी की तरह टहल-सेवा करती है, और देवी की भाँति प्रसन्न होकर लोक-परलोक दोनों को सुधारती है तथा किसी दूसरे से सम्बन्ध नहीं रखती। ऐसी पत्नी को छोड़कर जो राजा

लोग दूसरी स्त्रियों से प्रेम करते हैं, उन्हें क्षुद्र, अज्ञानी, तथा राज्य के नशे में चूर समझना चाहिए।

(२)

कवित्त

काम के हैं आपने ही, कामरति, काम साथ,
रति न रतीकौ जरी, कैसे ताहि मानिये।
अधिक असाधु इन्द्र, इन्द्रानी अनेक इन्द्र,
भोगवती, 'केशौदास' वेदन बखानिये।
विधिहू अविधि कीनी, सावित्रीहू शाप दीनी,
ऐसे सब पुरुष युवति अनुमानिये।
राजा रामचन्द्र जू से राजत न अनुकूल,
सीता सी न पतिव्रता नारी उर आनिये॥८॥

कामदेव और रति का साथ केवल अपने ही काम के लिए रहता है अर्थात अपने स्वार्थसाधन का ही साथ है, क्योंकि (कामदेव के जलने पर) रति रत्तीभर भी नहीं जली, तब उसे पतिव्रता कैसे माना जाय। इन्द्र बड़े असाधु हैं और इन्द्रानी अनेक इन्द्रों से भोग करती हैं। 'केशवदास' कहते हैं कि यह बात तो वेद में ही वर्णित है। ब्रह्मा ने भी अनियमित कार्य किया (अपनी कन्या सरस्वती पर मन चलाया), और सावित्री (सरस्वती) ने भी शाप दिया (कि तुम्हारी पूजा न हुआ करेगी)। इस तरह ज्ञात हुआ कि न तो राजा रामचन्द्र जी सा कोई अनुकूल राजा है और न सीताजी के समान कोई दूसरी पतिव्रता स्त्री है।

राजकुमार वर्णन

दोहा

बिद्या बिबिध बिनोद युत, शील सहित आचार।
सुन्दर, शूर, उदार बिभु, बरणिय राजकुमार॥९॥

राजकुमार को विविध विद्याओं का ज्ञाता, विनोद युत (विनोदी अर्थात् सदा प्रसन्न रहने वाला) शीलवान, आचारवान, सुन्दर, शूर, उदार, और सामर्थ्यशाली वर्णन करना चाहिए !

उदाहरण

कवित्त

दानिन के शील, परदान के प्रहारी दिन,
दानवारि ज्यों निदान देखिये सुभाय के।
दीप दीप हू के अवनीपन के अवनीप,
पृथु सम 'केशौदास' दास द्विज गाय के।
आनँद के कंद, सुरपालक से बालक ये,
परदार प्रिय, साधु मन, वच, काय के।
देह धर्म धारी पै विदेह राज जू से राज,
राजत कुमार ऐसे दशरथ राय के ॥१०॥

दानियों के स्वभाव वाले हैं, शत्रुओं से प्रहार पूर्वक दान लेनेवाले हैं और अन्त में विष्णु जैसे स्वभाव के दिखलाई पड़ते हैं। 'केशवदास' कहते हैं कि द्वीप-द्वीपों के राजाओं के भी पृथु के समान चक्रवर्त्ती राजा हैं परन्तु फिर भी ब्राह्मण और गाय के सेवक हैं। ये बालक आनन्द के कंद (आनन्ददायक) और सुरपालक (इन्द्र) के समान हैं। लक्ष्मी अथवा पृथ्वी के प्यारे तथा मन, वचन, और कर्म से पवित्र हैं। हे राजा ! देह धर्म-धारी (शरीरधारी) होने पर भी विदेह जैसे ये राजा दशरथ के राजकुमार हैं।

पुरोहित वर्णन

दोहा

प्रोहित नृपहित वेद-विद, सत्यशील शुचि अंग।
उपकारी, ब्रह्मण्य, ऋजु, जीत्यो जगत अनंग ॥११॥

पुरोहित को राजा का हितैषी, वेद का ज्ञाता, सत्यवक्ता, पवित्र; उपकारी, ब्रह्म में लीन, सीधे स्वभाव वाला, तथा कामजित (जितेन्द्रिय) होना चाहिए।

उदाहरण

कवित्त

कीन्हों पुरहूत मीत, लोक लोक गाये गीत,
पाये जु अभूतपूत, अरि उर त्रास है।
जीते जु अजीतभूप, देस-देस बहुरूप,
और को न 'केशौदास' बल को बिलास है।
तोरयो हर कों धनुष, नृप गण गे विमुख,
देख्यो जो बधू को मुख सुखमा को बास है।
है गये प्रसन्नराम, बाढ़ो धन, धर्म, धाम,
केवल वशिष्ठ के प्रसाद को प्रकास है ॥१२॥

राजा दशरथ ने इन्द्र को जो मित्र बनाया, लोक लोक में जो उनकी प्रशंसा के गीत गाये गये। उन्हें जो अभूत पूर्व पुत्रों की प्राप्ति हुई तथा उन्होंने देश देश के अनेक अजीत (न जीते जाने योग्य) राजाओं को जीता, सो 'केशवदास' कहते हैं कि यह किसी और के बल के कारण नहीं हुआ, यह केवल वशिष्ठमुनि की प्रसन्नता के प्रभाव के कारण ही हुआ। इसी प्रकार श्रीरामचन्द्र ने शिवजी का धनुष तोड़ा, अन्य राजागण विमुख होकर चले गये, अति सुन्दर वधू का मुख देखा, परशुराम भी प्रसन्न होकर गये, और धन तथा धर्म की वृद्धि हुई, यह भी उन्हीं वशिष्ठ गुरु की प्रसन्नता के प्रभाव के कारण ही हुआ।

दलपति वर्णन

दोहा

स्वामिभगत, श्रमजित, सुधी, सेनापती अभीत।
अनालसी, जनप्रिय, जसी, सुख, संग्राम अजीत ॥१३॥

सेनापति को स्वामिभक्त, अथक परिश्रमी, बुद्धिमान, निडर, आलस्य रहित, लोक-प्रिय, यशस्वी और युद्ध में सुखपूर्वक न जीता जानेवाला होना चाहिए। उदाहरण

सवैया

छांड़िदियो सब आरस, पारस, केशव स्वारथ साथ समूरो।
साहस सिंध प्रसिद्ध सदा जलहू थलहू बल बिक्रम पूरो॥
सोहिये एक अनेकनि माहँ, अनेकन एक बिना रणरूरो।
राजति है तेहि राजको राज सुजाकी चमूमें चमूपतिशूरो।।१४॥

'केशवदास' कहते हैं कि जिसने सब आलस्य छोड़ दिया हो और समस्त स्वार्थ का परित्याग कर दिया हो। जो साहस का समुद्र अर्थात बड़ा साहसी हो तथा जल-थल सभी स्थानों में पूरा बल-विक्रम दिखलाने वाला हो। जो अनेक मनुष्यों में एक ही वीर हो और उस एक के बिना अनेक वीर भी सुन्दर युद्ध न कर सकें। जिसके राज्य में ऐसा शूर सेना पति हो, उसी राजा का राज्य सुशोभित होता है।

दूतवर्णन

दोहा

तेज बढ़ै निज राज को, अरिउर उपजै छोभ।
इंगित जानहि समयगुण, बरणहुँ दूत अलोभ ॥१५॥

जो दूत—'अपने राज्य का तेज बढ़े और बैरियों के हृदयों में दुःख हो' इसका विचार रखे, संकेत को समझनेवाला हो, समयानुसार गुण अवगुण का पारखी तथा लालच रहित हो, उसीका वर्णन करना चाहिए। उदाहरण

कवित्त

स्वारथ रहित, हितसहित, विहितमति,
काम क्रोध, लोभ, मोह छोभ मदहीने हैं।
मीत हू अमीत पहिचानिवे को, देशकाल,
बुद्धि बल जानिबे को परम प्रवीने हैं।

आपनी उकति आंत ऊपरी दै औरनिकी,
दूर दूर दुरी मति लै लै बशकीने हैं।
'केशौदास' रामदेव देश-देश अरिदल,
राजनि को देखिवे को दूतै दृगदीने हैं ॥१६॥

जो मित्र, तथा अमित्रों को पहचानने तथा देश काल के अनुसार अपनी बुद्धि के बल से जानने में परम चतुर है। जो अपना भेद तो ऊपरी ढंग से बताते हैं और दूसरों अर्थात् शत्रुओं का दूर दूर तक छिपा हुआ भेद ले-लेकर, वश में कर लेते हैं। 'केशवदास' कहते हैं श्री रामचन्द्र जी देश-देश के वैरी राजाओं को देखने के लिए दूत रूपी आँखें लगाए रहते है। (अर्थात् उन्हीं के द्वारा सब का हाल जानते रहते हैं)

मंत्रीवर्णन

दोहा

राजनीतिरत, राजरत, शुचि सरवज्ञ, कुलीन।
क्षमा, शूर, यश, शीलयुत, मंत्री मंत्र प्रवीन ॥१७॥

मंत्री को राजनीति का ज्ञाता, राज-भक्त, पवित्रमनवाला, सर्वज्ञ कुलीन (उच्चकुलोत्पन्न), क्षमाशील, शूर (वीर), यश और शील युत अर्थात् यशस्वी और शीलवान तथा मंत्र (सम्मति) देने में प्रवीण होना चाहिए।

उदाहरण (१)

सवैया

केशव कैसहूँ वारिधि वांधि. कहाभयो रीछनि जो छिति छाई।
सूरज को सुत बालि को बालक. को नलनील कहौ केहि ठाई ॥
को नुमंत कितेकबली, यमहूँ पर जोर लई नहिं जाई।
भूषणभूषण दूषणदूषण लंक विभीषण के मत पाई ॥ १८ ॥

'केशवदास' विभीषण की प्रशंसा में श्रीरामचन्द्र की ओर से भरत से कहते हैं कि किसी प्रकार समुद्र का पुल बाँधकर रीछों से लंका की भूमि को छा दिया, तो क्या हुआ ? सूर्यसुत-सुग्रीव और बालिपुत्र अंगद तथा नल-नील क्या थे और उनकी गिनती ही क्या थी। हनुमान भी कितने बलवान थे ? बलपूर्वक तो यमराज से भी लंका नहीं ली जा सकती थी। मैंने जो लंका को प्राप्त किया, वह अच्छी बात मंडन करने वाले तथा दूषणों (बुरी बातों) की निन्दा करने वाले, विभीषण के मत से ही प्राप्त की।

(२)

युद्धजुरे दुरयोधनसों कहि, कौन करी यमलोक बसीत्यो।
कर्ण, कृपा, द्विजद्रोणसों बैर कै काल बचै बर कीजै प्रतीत्यो॥
भीम कहा बपुरो अरु अर्जुन, नारि नंग्यावतही बल रीत्यो।
केशव केबल केशव के मत भूतल भारत पारथ जीत्यो॥१९॥

दुर्योधन से युद्ध करके, बतलाओ, कौन ऐसा है जो यमलोक को बसती या निवास-स्थान न बनाता ? अर्थात् कौन ऐसा है जो यमलोक न जाता ? कर्ण, कृपाचार्य, और द्रोणाचार्य से बैर करके काल भी अपने बल से बच सकता—इसका कहीं विश्वास किया जा सकता है ? भीम और अर्जुन बेचारे क्या थे—उनका बल तो स्त्री-द्रौपदी के नंगी होते समय ही समाप्त हो गया था। 'केशवदास' कहते हैं कि केवल श्रीकृष्ण के मंत्र से ही युधिष्ठिर ने महाभारत को जीता था।

मंत्री मतिवर्णन

दोहा

पांच अंग गुण संग षट, विद्या युत दश चारि।
आगम संगम निगम मति, ऐसे मंत्र विचारि॥२०॥

जिस मंत्री को राजनीति के पाँच [(१) साहाय्य, (२) साधन, (३) उपाय, (४) देशज्ञान और (५) काल ज्ञान] अंग और राजाओं से

व्यवहार करने के छः [(१) संधि, (२) विग्रह, (३) यान, (४) आसन, (५) द्वैधीभाव और (६) (संश्रय)] अंग का ज्ञान हो। जो चौदहों [(१) ब्रह्मज्ञान, (२) रसायन, (३) स्वरसाधन (४) वेदपाठ (५) ज्योतिष (६) व्याकरण (७) धनुर्विद्या (८) जलतरण (९) वैद्यक (१०) कृषिविद्या (११) कोकविद्या, (१२) अश्वारोहण (१३) नृत्य और (१४) समाधान करण चातुर्य] विद्याओं को जानता हो, तथा जिसे आगम (भविष्य) संगम (वर्त्तमान), और निगम (भूत) की जानकारी हो, उसीसे राजा को सम्मति लेनी चाहिए।

उदाहरण

सवैया

केशव मादक क्रोध विरोध तजो सब स्वारथ बुद्धि अनैसी।
भेद, अभेद, अनुग्रह, विग्रह, निग्रह संधि कही विधि जैसी।
वैरिन को बिपदा प्रभु को प्रभुता करै, मंत्रिन की मति ऐसी।
राखत राजन, देवन ज्यों दिन दिव्य विचार विमानन वैसी ॥२१॥

'केशवदास' कहते हैं कि जिस मंत्री ने मादक वस्तुओं का उपयोग, क्रोध, विरोध, तथा स्वार्थसाधन की बुरी बुद्धि को छोड़ दिया हो, जो भेद, अभेद, अनुग्रह, विग्रह, निग्रह और संधि के बतलाए हुए नियमों का जानकार हो; और जिसकी बुद्धि वैरियों पर विपत्ति डालनेवाली तथा अपने स्वामी की प्रभुता को बढ़ाने वाली हो, उसकी बुद्धि तथा दिव्य विचारों से राजा इस प्रकार रक्षित रहते हैं, जिस प्रकार विमानों से देवता गण सुरक्षित रहा करते हैं।

पयान वर्णन

दोहा

चवँर, पताका छत्ररथ, दुंदुभि ध्वनि बहु यान।
जल थल मय भूकंप रज, रंजित वरणि पयान ॥२२॥

प्रयाण (युद्ध के लिए गमन) का वर्णन करते समय, चमर, पताका, छत्र, रथ, दुंदुभि बाजे की ध्वनि, बहुत सी सवारियाँ, जल, थल और भूकंप तथा धूल से रंगे हुए वातावरण का उल्लेख करना चाहिए।

उदाहरण (१)

सवैया

राघव की चतुरंग चमू चय, को गनै केशव राज समाजनि।
सूर तुरंगन के उरझैं पग, तुंग पताकनि के पट साजनि।
टूटि परैं तिनते मुकता, धरणी उपमा वरणी कविराजनि।
बिंदु मनौ मुख फेनन के किधौं, राजसिरी श्रवै मंगल लाजनि ॥२३॥

युद्ध के लिए प्रयान करते समय श्रीरामचन्द्र जी के चतुरंगिणी सेना के अपार समूह में, केशवदास कहते हैं कि, राजाओं को कौन गिन सकता है ? उस सेना की पताकाएँ इतनी ऊँची हैं कि उनमें सूर्य के घोड़ों के पैर उलझ जाते हैं। (घोड़ों के पैर उलझने के कारण) उन पताकाओं में लगे हुए मोती टूट-टूट कर पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं। (उन गिरते हुए मोतियों की) उपमा कविराजों ने इस प्रकार दी है कि मानों वे घोड़ों के मुखों से निकले हुए फेन की टपकती हुई बूँदें हैं अथवा राज्यश्री मंगल-सूचक लाजा (धान का लावा) बरसा रही है।

(२)

कवित्त

नाद पूरि, धूरिपूरि, तूरि वन, चूरि गिरि,
सोखि सोखि जल-भूरि, भूरि थल गाथ की
"केशौदास" आस पास ठौर-ठौर राखिजन,
तिन की संपति सब आपने ही साथ की।
उन्नत नवाय, नत उन्नत बनाय भूप,
शत्रुन की जिविका सुमित्रन के हाथ की।
मुद्रित समूद्र सात, मुद्रा निज मुद्रित कै,
आई दस दिसि जीति सेना रघुनाथ की ॥२४॥

(समस्त पृथ्वी मंडल को) कोलाहल और धूल से भरकर, वनों को तोड़ फोड़ कर और पहाड़ों को चूर्ण करके तथा जल को सुखा-सुखा कर थल कर दिया। 'केशवदास' कहते हैं कि आस-पास के राज्यों में स्थान स्थान पर अपने कर्मचारियों को नियुक्त करके, वहाँ की सम्पत्ति को अपने हाथ में कर लिया। जो राजा उन्नत सिर किए हुए थे अर्थात् अभिमान से अपना सिर ऊँचा किए हुए थे, उनको झुका कर नम्र बना दिया और जो नत अर्थात् नम्र हुए उन्हें बड़ा बनाया तथा शत्रुओं की जीविका छीन कर अति मित्र (राजाओं) को दे दी। इस तरह सातों समुद्रों से घिरी पृथ्वी पर अपना आतंक जमाकर, श्रीरामचन्द्र जी की सेना सब दिशाओं को जीतकर आ गई।

हय वर्णन

दोहा

तरल, तताई, तेजगति मुख सुख, लघुदिन लेख।
देश सुवेश सुलच्छणै, वर्णहु वाजि विशेख ॥२५॥

घोड़े के वर्णन में-चपलता, तीखापन, द्रुतगति, मुख सुख (मुँह जोर न होना), उत्तम देशवासी, सुन्दर-वेषवाला, और अच्छे लक्षणों से युक्त आदि गुणों का उल्लेख करना चाहिए।

उदाहरण

(कवित्त)

बामनहि दुपद जु नाप्यो नभ ताहि कहा,
नापैं पद चारि थिर होत यहि हेत हैं।
छेकी छिति छीरनिधि छांड़ि धाम छत्रतर,
कुंडली कतर लोल चाकै मोल लेत हैं।
मन कैसे मीत, वीर वाहन समीर कैसे,
नैनन के न्वैनी, नैन नेह के निकेत हैं।
गुणगण बलित,, ललितगति 'केशौदास'
ऐसे बाजि रामचन्द्र दीनन को देत हैं ॥२६॥

'जिस आकाश को वामन ने दो पैरों से ही नाप लिया था, उसे हम चार पैर वाले होकर क्या नापें' यह सोचकर घोड़े पृथ्वी पर स्थिर रहते हैं। समुद्र ने (जो हमारे पिता हैं) समस्त पृथ्वी को घेर रखा है, तब हम क्या घेरें, यह सोचकर राजा के छत्र के नीचे ही, अपनी दौड़ छोड़कर, इस तरह चंचलता पूर्वक चक्राकार घूमते हैं कि मानो चाक को मोल लिए लेते हैं अर्थात् चाक से भी बढ़कर घूमते हैं। जो मन के मित्र अर्थात् वेगगामी हैं, जो समीर (वायु) के वीर-वाहन हैं अर्थात् अत्यन्त द्रुतगतिवाले हैं, जो नेत्रों को बाँधने के लिए रस्सी स्वरूप हैं अर्थात् जिन्हें देखकर आँखें उन्हीं को देखती रह जाती हैं और जो नेत्रों के प्रेम का स्थान हैं अर्थात् आँखें उनको प्रेम पूर्वक देखना चाहती हैं, जो गुणों (शुभ लक्षणों) से युक्त और 'केशवदास' कहते हैं कि सुन्दर चाल चलने वाले हैं, ऐसे घोड़ों को श्रीरामचन्द्र जी दीनों को दिया करते हैं।

गजवर्णन

(दोहा)

मत्त, महावत हाथ में मन्दचलनि, चल कर्ण।
मुक्तामय, इभकुंभ शुभ सुन्दर शूर, सुवर्ण।।२७।।

हाथी को मत्त (मतवाला), महावत के वश में, धीमी चाल वाला, हिलते हुए कानों का, गज-मुक्ता युक्त, सुन्दर मस्तक का, शुभ, सुन्दर, शूर, और सुवर्ण (देखने में अच्छा) होना चाहिए।

उदाहरण

कवित्त

जल कै पगार, निज दल के सिंगार, अरि,
दल को विगार करि, पर पुर पारैं पौरि।
ढाहैं गढ़, जैसे घन, भट ज्यों भिरत रन,
देति देखि आशिष गणेश जू के भोरे गौरि।

बिंध के से बांधव, कलिंदनंद से अमंद,
बंदन कै सूंड भरे,चन्दन की चारु खौरि।
सूर के उदोत, उदै गिरि से उदित अति,
ऐसे गज राज राजैं राजा रामचन्द्र पौरि ॥२८॥

राजा रामचन्द्र जी की पौर (दरवाजे) पर ऐसे हाथी सुशोभित हो रहे हैं जो जल के पगार अर्थात् गहरे पानी को पैदल ही पार करने वाले, अपने दल की शोभा और वैरियों के दल को बिगाड़ कर उनके नगरों में कोलाहल मचा देनेवाले हैं। वे दुर्गों को ढहादेने वाले हैं, बादल जैसे (काले) हैं, युद्ध में योद्धाओं की भाँति लड़ते हैं और जिन्हें गणेशजी के धोखे में, पार्वती जी आशीर्वाद दिया करती है। जो विन्ध्याचल पहाड़ जैसे (ऊँचे) हैं, कलिन्द पहाड़ के पुत्र जैसे (काले-काले) हैं, सुन्दर हैं, जिनकी सूंड़े बंदन (सिंदूर) से रंगी हुई हैं जिनके चन्दन की सुंदर खौरें लगाई गई हैं और जो सूर्योदय के समय उदयाचल जैसे अति सुन्दर प्रतीत होते हैं।

संग्राम वर्णन

दोहा

सेना स्वन, सनाह, रज, साहस, शस्त्रप्रहार।
अंग-भंग, संघट्ट भट, अंधकबन्ध अपार ॥२९॥
केशव बरणहु युद्ध में, योगिनगणयुत रुद्र।
भूमि भयानक रुधिरमय सरवर सरितसमुद्र ॥३०॥

'केशवदास' कहते हैं संग्राम का वर्णन करते समय सेना, कोलाहल, कवच, (उड़ती हुई) धूल, साहस, शस्त्रों का प्रहार, अंग-भंग, योद्धाओं का समूह, अंधकार, सिर कटे हुए धड़, योगिनियों के साथ रुद्र और रुधिरमय भयानक भूमि-आदि को तालाब, नदी तथा समुद्र का रूपक देते हुए वर्णन करो।

उदाहरण

(कवित्त)

शोणित सलिल, नर बानर, सलिलचर,
गिरि हनुमंत, विष विभीषण डारयो है।
चँवर पताका बड़ी बड़वा अनलसम;
रोगरिपु जामवंत केशव विचारयो है।
बाजि सुखाजि, सुरगज से अनेक गज,
भरत सबंधु इंदु अमृत निहारयो है।
सोहत सहित शेष रामचन्द्र, कुश, लव,
जीति कै समर सिन्धु साँचेहू सुधारयो है ॥३१॥

(इस युद्ध रूपी समुद्र में)रक्त ही जल है तथा नर और बानर ही पानी में रहने वाले जीव-जन्तु हैं। हनुमान जी पहाड़ हैं, और विभीषण (रंग में विष के रंग के समान काले होने के कारण) विष हैं। चमर और पताकाएँ ही बड़वाग्नि हैं और केशवदास कहते हैं कि जामवंत ही रोगरिपु अर्थात् धन्वन्तरि वैद्य हैं। उच्चैश्रवा जैसे बहुत से घोड़े और ऐरावत जैसे बहुत से हाथी हैं तथा भाई (शत्रुघ्न) सहित भरत, चन्द्रमा और अमृत हैं। लक्ष्मण के सहित श्रीरामचन्द्र ही इसके शेषनाग और नारायण हैं, (क्योंकि लक्ष्मण शेष के अवतार हैं और श्रीरामचन्द्र स्वयं नारायण ही हैं)। इसलिए कुश और लव ने इस युद्ध भूमि को जीत कर समुद्र का सच्चा रूप दे दिया है।

आखेट वर्णन

दोहा

जुर्रा, बहरी, बाज, बहु, चीते, श्वान, सचान।
सहर, बहिलिया. भिलल्युत, नील निचोल विधान ॥३२॥
बानर, बाघ, बराह, मृग, मीनादिक, बनजन्त।
बध बन्धन बेधन बरणि, मृगया खेल अनन्त ॥३३॥

आखेट का वर्णन करते समय जुर्रा, बहरी, बाज, चीता, कुत्ता, रुचान, सहर, बहेलिया, भील, नीले कुरते को पहनने का नियम, बन्दर, बाघ, बाराह (सूअर), मृग (हिरन), मछली आदि वन जन्तुओं का मारना, फँसाना तथा बेधना आदि का उल्लेख करना चाहिए।

उदाहरण (१)

(कवित्त)

तीतर, कपोत, पिक, केकी, कोक, पारावत,
कुररी, कुलंग, कल हंस गहि लाये हैं।
केशव शरभ, स्याह गोस, सिंह रोष गत,
कूकरन पास शश शूकर गहाये हैं।
मकर समूह बेधि, बाँधि गजराज मृग,
सुंदरी दरीन भील भामनीन भाये हैं।
रीझि-रीझि गुंजन के हार पहिराये देखो,
काम जैसे राम के कुमार दोऊ आये हैं॥ ३४॥

तीतर, कबूतर, चिक, मोर, चकवा, पारावत (पिंडकी), कुररी, मुर्गा, और सुन्दर हंस को पकड़ लाये हैं। 'केशवदास' कहते हैं कि शरभ, स्याह गोस, क्रुद्ध सिंह तथा कुत्तों के द्वारा उन्होंने खरगोश और शूकरों को भी पकड़ लिया है। मगरों के समूह को वेधकर तथा गजराज और हिरनों को बाँधकर लाते समय सुन्दर गुफाओं में भील की स्त्रियों के मनों को अच्छे लगे, इसलिए उन्होंने प्रसन्न हो-होकर घुंघुंचियों के हार पहना दिये हैं। दोनों कामदेव के समान रूपवान श्रीरामचन्द्र के कुमार (लव-कुश) आखेट करके आये हैं।

(२)

कवित्त

खलक में खैल भैल, मनमथ मन ऐल,
शैलजा के शैल गैल गैल प्रति रोक है।
सेनानी के सट पट, चन्द्र चित चटपट,
अति अति अटपट अतक के ओक है।

इन्द्रजू के अकबक, धाताजू के धकपक,
शंभु जू के सकपक 'केशौदास' को कहै।
जब जब मृगया को राम के कुमार चढ़ैं,
तब तब कोलाहल होत लोक लोक है ॥३५॥

जब-जब मृगया के लिए श्रीरामचन्द्र जी के कुमार (लव और कुश) जाते हैं, तब-तब संसार में खलबली मच जाती है। कामदेव के मन में उदासी छा जाती है (क्योंकि उसे इस बात का भय लगता है कि वे मेरी सवारी के मकर का शिकार न करलें) और पार्वती के पर्वत-कैलाश की तो :गली-गली में रोक हो जाती है। (क्योंकि वहाँ पार्वती जी को भय होता है कि मेरी सवारी सिंह का आखेट न कर बैठें, या हाथी के धोखे श्रीगणेश जी को न बाँध डालें)। सेनानी अर्थात् शिवजी के बड़े पुत्र सोम कार्त्तिकेय जी सटपटा गये हैं कि मेरे मोर की खबर न ले बैठें; चन्द्रमा के मन में चटपटी मची है कि मेरा हिरन न मारा जाय और यमराज महाराज के घर तो बड़ी अटपट कठिनाई का अनुभव होने लगता है क्योंकि उन्हें अपने भैंसे की चिन्ता सवार हो जाती है कि कहीं वही उनके दाँव में न आजाय। इन्द्र अकबका जाते हैं कि मेरा ऐरावत हाथी उनकी दृष्टि में न आजाय, ब्रह्माजी के मन में अपने हंस के लिए धक-पक मच जाती है और 'केशवदास' कहते हैं कि श्री शंकर जी अपने नंदी के लिए ऐसे सकपका जाते हैं कि उसका वर्णन कोई क्या कर सकता है।

जलकेलि वर्णन

दोहा

सर, सरोज, शुभ, शोभ भनि, हिय सों पिय मन मेल।
गहिबो गत भूषणनिको, जलचर ज्यों जल केलि ॥३६॥

जल-क्रीड़ा के वर्णन में तालाब, कमल, सुन्दर शोभा, प्रियतम से हृदय से हृदय मिलाकर गोता लगाने, गिरे हुए गहनों को नीचे तक

State Museum,
LUCKNOW.

पहुँचने के पहले पकड़ने, तथा जलचरों की भाँति जल में क्रीड़ा करने का वर्णन करना चाहिए।

उदाहरण
कवित्त

एक दमयंती ऐसी हरैं, हँसि हंस वंस.
एक हंसिनी सी बिसहार हिय रोहिये।
भूषण गिरत एक लेत बूड़ि बीचि बीच,
मीन गति लीन, हीन उपमान टोहिये॥
एकै मत कै कै कंठ लागि बूड़ि बूड़ि जात,
जल देवता सी दृग-देवता विमोहिये।
'केशौदास' आस-पास भँवर भँवत जल—
केलि में जलज मुखी जलज सी सोहिये ॥३७॥

'केशवदास' कहते हैं कि जल-क्रीड़ा में कमल-मुखी सुंदरियां कमल के समान सुशोभित हो रही हैं। उनमें से कोई दमयन्ती के समान हँसती हुई हंस के बच्चों को पकड़ने दौड़ती है, किसी हंसिनी जैसी सुन्दरी के गले में मृणाल का हार सुशोतित हो रहा है। कोई गिरे हुए गहनों को, लहरों में गोता लगाकर निकाल लेती है। उसकी चंचलता के आगे मछली की गति भी कुछ नहीं है अतः उसकी उपमा खोजना व्यर्थ है। कुछ आपस में सलाह करके, पानी में गले तक डूब जाती हैं, वे जल-देवता जैसी प्रतीत होती हैं, और जिन्हें देखकर नेत्र विमोहित हो जाते हैं। उनके आस-पास भँवर चक्कर काटते हैं।

विरह वर्णन।

दोहा

श्वास, निशा, चिन्ता बढ़ै, रुदन परेखे बात।
कारे, पीरे होत कृश, ताते सीरे गात ॥३८॥
भूख प्यास सुधि बुधि घटै, सुख निद्रा द्युति अंग।
दुखद होत हैं सुखद सब, केशव विरह प्रसंग ॥३९॥

'केशवदास' कहते हैं कि विरह के समय श्वांस, निशा तथा चिन्ता बढ़ जाती है। (श्वांस तेज चलती है, रात बड़ी जान पड़ती है और चिन्ता अधिक हो जाती है)। रुदन और प्रतीक्षा की बात ही हर समय रहती है, काला, पीला, दुबला, गर्म और ठंडा शरीर होता रहता है। भूख, प्यास तथा सुध-बुध घटने लगती है और सुख, नींद, तथा शरीर की शोभा आदि सुखद बातें दुखद हो जाती है।

उदाहरण (१)

(कवित्त)

बार बार बरजी मैं, सारस सरस मुखी,
आरसी लै देख मुख, या रस में बोरिहै।
सोभा के निहोरे तौ निहारितन नेकहू तू,
हारी हैं निहोरि सब कहा केहू खोरि है।
सुख को निहोरो जो न मान्यो सोभलीकरीन,
'केशौ राय'कीसौं तोहि जोऽब मानमोरि है।
नाह के निहोरे किन मानति निहोरति है,
नेह के निहोरे फेरि मोहि तो निहोरि है ॥४०॥

(नायिका की भेजी हुई सखी रूठे हुए नायक से कहती है कि जब मेरी सखी मान कर बैठी थी और आप मनाने गये थे तब उसने मान नहीं छोड़ा और आप रूठ कर चले आये। मुझे तभी इस बात का भान हो रहा था कि मुझे आना पड़ेगा, अतः मैंने उसे समझाते हुए कहा था कि)

हे कमल से भी बढ़कर सुन्दर मुख वाली ! मैंने तुझे बार-बार मना किया। (परन्तु तू मान नहीं छोड़ती)। तनिक दर्पण लेकर अपना मुख देख ! (जिससे मान के आभास का तुझे पता तो चले) तू फिर इसी प्रेम रस में डूबेगी (अभी मान किये बैठी है)। शोभा देखने के बहाने ही तू नायक की ओर तनिक भी नहीं देखती। हम सब मना-मना कर हार गईं (पर तू नहीं मानती)। इसमें अब किसी का दोष नहीं। अपने ही को सुख देने वाली बातों को तू नहीं मानती, यह अच्छा नहीं करती। तुझे सौगंध है जो तू मान छोड़े। अभी तो तू नायक के मनाने पर मानती नहीं, फिर (जब नायक चला जायगा तब) प्रेम में आकर, तू (नायक को मनाने के लिए) मुझसे विनती करेगी।

(२)

हरित हरित हार, हेरत हियो हेरात,
हारी हौं हरिन नैनी हरि न कहूं लहौं,
वनमाली ब्रज पर, बरसत वनमाली,
वनमाली दूर दुख केशव कैसे सहौं।
हृदय कमल नैन, देखिकै कमल नैन,
होहुँगी कमल नैनी, और हौं कहा कहौं।
आप घने घनस्याम, धन ही से होत घन,
सावन के द्यौस घन स्याम बिनु क्यों रहौं ॥४१॥

(एक सखी से अपनी विरहावस्था का उल्लेख करती हुई नायिका कहती है कि) जिन हरे हरे जंगलों को देखकर हृदय विमुग्ध होता है, उन्हें देख-देख कर मैं हरिन जैसे नेत्रवाली हार गई, परन्तु हरि (श्रीकृष्ण) कहीं पर भी नहीं मिलते। वनमाली (वनों से घिरे हुए) ब्रज पर वनमाली अर्थात् बादल बरस रहे है और बनमाली--श्री कृष्ण--दूर हैं। मैं इस दुःख को कैसे सहूँ ? और यदि हृदय-कमल के नेत्रों से कमल नयन (कमल जैसे नेत्र वाले) श्री कृष्ण को देखकर स्थिर रहूँ—तो

कमल-नैनी (जल से भरे हुए नेत्र वाली) हो जाऊँगी। अर्थात् ध्यान में देखने पर और भी रोऊँगी। और अधिक क्या कहूँ ? ये आप (पानी) के भरे घनश्याम (बादल) मेरे लिए तो घन (हथौड़े) के समान हो रहे हैं। मैं सावन के दिनों में घनश्याम के बिना कैसे रहूँ ?

(३)

सवैया

मेंहके हैं सखि आँसू उसासनि. साथ निशा सुविसासिनि बाढ़ी।
हास गयो उड़ि हंसिनि ज्यों, चपलासम नींदगई गति काढ़ी॥
चातक ज्यों पिवपीव रटै चढ़ि, तापतरंगिनि ज्यों अति गाढ़ी।
केशव बाकी दशा सुनिहौ अब आगि बिना अँगअंगनि डाढ़ी।४२॥

हे सखी ! उसके आँसू क्या हैं, मानो मेह है (वर्षा हो रही है)। उसकी श्वांसों के साथ ही यह विश्वासघातिनी रात भी बढ़ गई है। उसकी हँसी तो हंस की तरह कहीं उड़कर चली गई है और नींद तो चंचला (बिजली) की गति से भी आगे बढ़ गई है। जैसे बिजली क्षण मात्र के लिए चमक जाती है, वैसे क्षण मात्र को ही आकर चली जाती है) वह चातक की तरह बार-बार 'पी, पी' की पुकार करती रहती है और उसके शरीर में ताप (जलन) की अति गाढ़ी (बहुत तीव्र) तरंगे उठ रही हैं। (शरीर वियोगाग्नि से जल रहा है)। 'केशवदास' (सखी ओर से सखी की दशा का वर्णन करते हुए सखी से) कहते हैं कि 'तुम उसकी दशा क्या सुनोगी ? बिना आग के ही बेचारी के अंग-अंग जले जा रहे हैं।'

(४)

सवैया

भूलि गयो सबसों रसरोष, मिटें भवके भ्रम रैनि बिभातो।
को अपने परको पहिचानत, आनत नाहिंनै शीतल तातो॥
नीकहीं में वृषभानललाकी भईसु, न जीकी कहीपरै बातो।
एकहिबेर न जानिये केशव काहेते छूटगये सुखसातो॥ ४३॥

उसका सबसे प्रेम और क्रोध करना भूल गया। संसार के भ्रम स्वरूप रात-दिन के ज्ञान का आभास भी मिट गया। (अर्थात् रात और दिन की पहचान भी नहीं रही)। 'कौन अपना है? कौन पराया?' इसकी भी पहचान नहीं रही। ठंड और गर्म की पहचान भी जाती रही थोड़ी ही देर में राधा की ऐसी दशा हो गई कि कुछ कहते नहीं बनता। हे केशव (कृष्ण)! पता नहीं, एकही बार में (अचानक) उसके सातों सुख क्यों छूट गये हैं?

स्वयंवरवर्णन

दोहा

शची स्वयम्बर रच्छिणी, मण्डल मंचबनाव।
रूप, पराक्रम, वंशगुण, वर्णिय राजा राव ॥४४॥

स्वयंवर की रच्छिणी या अधिष्ठात्री शची (इन्द्राणी), मंडलाकार मंच की बनावट, और राजा-रावों के रूप, पराक्रम, वंश तथा गुणों का उल्लेख स्वयम्बर के वर्णन में करना चाहिए।

उदाहरण

सवैया।

मण्डली मंचनिकी नृपमण्डल, मण्डित देखिये देव सभासी।
दन्तनिकी द्युति देहकी दीपति, भूषणज्योति समेत अभासी॥
फूलनिकी छवि अम्बर की छवि छत्रनकी छवि तत्क्षण भासी।
सोहत है अति सीयस्वयम्बर आनन चन्द्र प्रवेश प्रभासी॥ ४५॥

सीताजी के स्वयंवर में मंचों की मंडली है। उन पर बैठी हुई राजाओं की मण्डली देव-सभा सी जान पड़ती है। उनके दाँतों की द्युति, शरीरों की चमक तथा गहनों की कान्ति अनन्त आभा सी जान पड़ती है। फूलों की शोभा, आकाश की छवि, तथा राजछत्रों की शोभा भी उस समय प्रकाशित हो रही हैं। उस स्वयंवर के बीच में सीता

जी चन्द्रमा जैसी और यह राज मंडली चन्द्रमा के परिवेष (चन्द्रमा के चारों ओर का ज्योतिर्मय घेरा) सी जान पड़ती है।

सुरति वर्णन

(दोहा)

सुरति सात्त्विकीभावर्भाण, मणित रुनित मंजीर।
हाव, भाव, बहि, अंतरति, अलज सलज्ज शरीर ॥ ४६ ॥

सुरति के वर्णन में सात्त्विक भाव, तत्कालीन उच्चरित होने वाले शब्द, बजते हुए बिछुए, हाव, भाव, बहिः और अंतः रति, शरीर की निर्लज्जता और लज्जा का उल्लेख करना चाहिए।

उदाहरण

कवित्त

'केशौ दास, प्रथमहि उपजत भय भीरु,
रोष, रुच्चि, स्वेद, देह कंपनगहत हैं।
प्राण-प्रिय बाजीकृत बारन पदाति क्रम,
त्रिविध शबद द्विज दानहिं लहत हैं।
कलित कृपा न कर सकति सुमान त्रान,
साँज सजि करन प्रहारन सहत हैं।
भूषन सुदेश हार दूषन सकल होत,
सखि न सुरति रीती, समर कहत हैं ॥४७॥

[किसी सखी की ओर से, उसकी अंतरंग सखी से सुरति का वर्णन करते हुए] 'केशवदास' कहते हैं कि पहले तो भय उत्पन्न होता है। (परन्तु नायक के साहस दिखलाने पर, भीरुता जाती रहती है) और रोष, रुचि, स्वेद तथा देह कंप आदि भाव उत्पन्न होते हैं। तब बाजी करण औषधियों से पुष्ट (नायक) मना करते रहने पर भी पैरों का अतिक्रमण करता है। फिर (सुरति-समयानुकूल) तरह-तरह के शब्द उच्चारित होने लगते हैं तथा दाँतों का दान होने लगता है अर्थात् दाँतों

से अधरों का खडंन होता है) तब (नायक में निर्दयता आजाती है और) वह कृपा नहीं दिखाता परन्तु साथ ही भरसक मान की रक्षा भी करता जाता है। तब (कुच) भली-भाँति नखों का प्रहार सहते हैं। ऐसे समय सुन्दर हार आदि भूषण, दूषण (दोष युक्त या बुरे) प्रतीत होने लगते हैं। (क्योंकि अलिंगन में अड़चन डालते हैं)। हे सखी ! यह सुरति की रीत अच्छी होती है। इसी समय किसी बाहरी सखी ने पूछा--'क्या सुरति का वर्णन कर रही हो ?'। उसने उत्तर दिया--'नहीं सखी ! समर या युद्ध का वर्णन कर रही हूँ। देखो—

युद्ध में पहले तो भीरु लोग भय खाते हैं अर्थात् डर कर भाग जाते हैं फिर शूरों की की रोष रुचि जाग्रत होती है जिससे क्रोध की गर्मी से उन्हें पसीना आजाता है परन्तु वे काँपते नहीं। वे लोग अपने प्यारे प्राणों की बाजी लगा देते हैं। हाथी तथा पैदल सिपाही चलते दिखाई पड़ते हैं और तरह-तरह के (उत्साह वर्द्धक) शब्द होने लगते हैं और पक्षी (गिद्ध आदि) मांस का दान पाते हैं। हाथों में सुन्दर कृपाण (तलवार) रहती है जो मान की रक्षा कर सकती है। वीर लोग सज-सजकर (शत्रुओं के) हाथों के प्रहार सहते हैं। (उस समय वीर लोग) स्वदेश को ही भूषण समझते हैं और हार अर्थात् पराजय को बड़ा भारी दूषण मानते हैं। (समर का वर्णन करते समय) हे सखी ! लोग इन्हीं बातों का वर्णन करते हैं।

नवां-प्रभाव

[विशिष्टालंकार वर्णन]

जाति, स्वभाव;. विभावना, हेतु, विरोध, विशेष।
उत्प्रेक्षा, आक्षेप, क्रम. गणना, आशिष लेष॥ १॥
प्रेम, सुश्लेष, सभेद है, नियम विरोधी मान।
सूक्षम, लेश. निदर्शना, ऊर्जः सुर सब जान॥ २॥
रस, अर्थांतरन्यास है, भेद सहित व्यतिरेक।
फेरि अपह्नुति उक्ति है, वक्रोकति सविवेक॥ ३॥
अन्योकति व्यधिकरन है, सुविशेषोकति भाषि।
फिरि सहोक्तिको कहत हैं, क्रमही सों अभिलाषि॥ ४॥
व्याजस्तुति निंदा कहैं, व्याजनिंदा स्तुतिवंत।
अमित, सुपर्यायोक्ति पुनि, युक्ति, सुनैं सबसंत॥ ५॥
सुसमाहित जुप्रसिद्ध है, और कहे विपरीत।
रूपक, दीपक, भेदपुनि, कहि प्रहेलिका मीत॥ ६॥
अलंकारपरवृत्त कहै, उपमा, जमक सुचित्र।
भाषा इतनै भूषणनि, भूषित कीजै मित्र॥ ७॥

हेमित्र ! स्वभाव, विभावना, हेतु, विरोध, विशेष, उत्प्रेक्षा, आक्षेप क्रम, गणना, आशिष, प्रेम, श्लेष (नियम और विरोधी), सूक्ष्म, लेष. निदर्शना, ऊर्जस्वर, रसवत, अर्थान्तन्यास, व्यतिरेक, अपन्हुति, उक्ति, (वक्र, अन्य, व्याधिकरण, विशेष और सह) व्याजस्तुति, व्याजनिन्दा अमित, पर्यायोक्ति, युक्ति, समाहित, प्रसिद्ध, विपरीत, रूपक, दीपक, प्रहेलिका, परिवृत्त, उपमा, यमक और चित्र अलंकारों से, अपनी भाषा को सजाइए।

१—स्वभाव

जाको जैसो रूप गुण, कहिये ताही साज।
तासों जानस्वभाव कहि, बरणतहैं कविराज ॥८॥

जिस व्यक्ति या वस्तु का जैसा रूप अथवा गुण हो, उसको उसी प्रकार से वर्णन करने को कविराज 'स्वभाव' या 'स्वभावोक्ति' कहते हैं।

उदाहरण (१)

रूप वर्णन

(कवित्त)

पीरी पीरी पाट की पिछौरी कटि केशौदास,
पीरी पीरी पागैं पग पीरीये पनहियां।
बड़े बड़े मोतिन को माला बड़े बड़े नैन,
भृकुटी कुटिल नान्ही नान्हीं बघनहियां।
बोलनि, चलनि मृदु हँसनि चितौनिचारु,
देखत ही बनै पै न कहत बनै हियां।
सरजू के तीर तीर खेलैं चारों रघुवीर,
हाथ द्वै द्वै तीर राती रातिये धनुहियां ॥९॥

'केशवदास' कहते हैं कि पीले पीले कपड़े की पीली-पीली पिछौरी कमर में कसे हुए हैं, पीली ही पगड़ियाँ पहने हुए हैं और पैरों में भी पीले ही जूते पहने हैं। बड़े-बड़े मोतियों की मालाएं गले में पड़ी हुई हैं। बड़ी-बड़ी उनकी आँखें हैं, भौंहें टेढ़ी हैं और छोटे छोटे बाघ के नख पहने हैं। उनका बोलना, चलना, मृदु मुसकाना और सुंदरता के साथ देखना देखते ही बनता है, कहते नहीं बनता। सरयू के किनारे रघुवंश के चारों कुमार (श्रीराम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघन) खेल रहे हैं। उनके हाथों में दो दों लाल लाल तीर हैं और लाल लाल ही धनुष भी हैं।

उदाहरण—२

गुण वर्णन

(कवित्त)

गोरे गात, पातरी, न लोचन समात मुख,
उर उरजातन की बात अब रोहिये।
हँसति कहत बात, फूल से झरत जात,
ओंठ अवदात राती देख मन मोहिये।
स्यामल कपूरधूर की ओढ़नी ओढ़ें उड़ि,
धूरि ऐसी लागी 'केशो' उपमा न टोहिये।
काम ही की दुलही सी काके कुल उलहीसु,
लहलहा ललित लतासी लोल सोहिये ॥ १० ॥

गोरा शरीर है पतली-दुबली है लोचन मानों मुख में समाते ही नहीं और कुचों की बात तो हृदय में अंकित कर लेना चाहिए। जब हँसती हुई बातें करती है, तब फूल से झड़ते जाते हैं। सुन्दर ओठों की लाल लाल रेखा मन को मोहे लेती है। 'कपूरधूर' की काली ओढ़नी ओढ़े हुए है। वह ऐसी लगती है मानों कपूर की धूल ही उड़कर अंग पर आलगी हो। 'केशवदास कहते हैं कि उसकी उपमा ही ढूँढना व्यर्थ है। कामदेव की दुलही-रति के समान न जाने यह किसके कुल में उत्पन्न हुई है। वह लहलही लता के समान सुन्दर और चंचल है।

२—विभावना

दोहा

कारज को बिनु कारणहि, उदौ होत जेहि ठौर।
तासों कहत विभावना, 'केशव' कविसिरमौर ॥११॥

'केशवदास' कहते हैं कि जहाँ बिना कारण ही कार्य का उदय होता है, वहाँ श्रेष्ठ कविगण उसे विभावना कहते हैं।

उदाहरण

(कवित्त)

पूरन कपूर पान खाये जैसी मुख-बास,
अधर अरुण रुचि सुधा सों सुधारे हैं।
चित्रित कपोल, लोल लोचन, मुकुट, ऐन,
अमल झलक, झलकनि मोहि मारे हैं।
भृकुटी कुटिल जैसी तैसी न करेहू होहिं,
आंजी ऐसी आंखैं 'केशौराय' हेरि हारे हैं।
काहे के सिंगार कै बिगारति है मेरी आली,
तेरे अंग बिनाही सिंगार के सिंगारे हैं॥ १२॥

तेरे मुख की सुगंध कपूर (अथवा पान खाये हुए मुख की तरह है। तेरे लाल ओंठ मानों अमृत में सने हुए हैं। तेरे चित्रित गालों तथा चंचल नेत्रो ने अपनी निर्मल झलक से दर्पण तथा हिरनों को मोहित करके मार डाला है। तेरी भौंहें ऐसी टेढ़ी हैं कि वैसी बनाने पर भी नहीं बन पातीं। आंखें मानों काजल लगी हुई सी हैं जिन्हें देख केशवराय (श्रीकृष्ण) भी हार गये हैं। हे सखी! तू शृंगार करके अपने अंगों को क्यों बिगाड़ती हैं? तेरे अंग तो बिना शृंगार किये ही शृंगार किये से जान पड़ते हैं।

विभावना दूसरी

दोहा

कारण कौन हु आनते, कारज होय जु सिद्ध।
जानौ अन्य विभावना, कारण छोड़ि प्रसिद्ध॥ १३॥

जहाँ प्रसिद्ध कारण को छोड़कर किसी दूसरे कारण से कार्य सिद्ध होता है, वहाँ दूसरे प्रकार की विभावना समझो।

उदाहरण

सवैया

नेकहू काहू नवाई न वानी, नवाये बिनाहीं सुवक्र भई है।
लोचनश्री विझुकाये बिना, विझुकी त्री बिना रँगरागमईहै॥
केशव कौनकी दीनी कहो यह, चंदमुखी गति मंद लई है।
छोली न, हांहि गई कटि छीन सुयौवन की यह युक्ति नईहै॥१४॥

उसकी वाणी को किसी ने नवाया (झुकाया) नहीं है, बिना झुकाये ही यह टेढ़ी हो गई है। इसी तरह आँखों की शोभा भी बिना चंचल किए ही चंचल हो रही है और बिना रंग के ही रंजित सी प्रतीत हो रही है। 'केशवदास' कहते हैं कि बतलाओ, इस चंदमुखी ने किसकी दी हुई मंदचाल प्राप्त की है ? अर्थात् इसकी यह धीमी चाल किसकी दी हुई है ? बिना छीले ही इसकी कमर क्षीण हो चली है। यौवन (युवावस्था) की यह युक्ति अद्भुत है।

३—हेतु

हेतु होत है भांति द्वै, वरणत सब कविराव।
'केशवदास' प्रकाश करि, बरणि सुभाव अभाव॥१५॥

'केशवदास' कहते हैं कि सभी कविराज 'हेतु' को दो तरह का बतलाते हैं। एक 'अभाव' और दूसरा सभाव।

उदाहरण—१

सभाव

केशव चंदनवृंद घने, अरविंदनके मकरंद शरीरो।
मालती, बेलि, गुलाब सुकेतकी केतिक चंपकको बन पीरो॥
रंभनि के परिरंभन संभ्रम, गर्व घनो घनसार को सीरो।
शीतल मन्द सुगन्ध समीर हरयो इनसो मिलि धीरज धीरो॥१६॥

'केशवदास' कहते हैं कि चंदन से सुगंधित होकर, कमलों का मकरंद अपने शरीर में लेकर, मालती, बेला, गुलाब, केतकी तथा चंपक के पीले बन से लदने के कारण मंद होकर, और दौड़-दौड़कर केलों से

मिलकर, उनके कपूर की शीतलता का गर्व हरण करने से शीतल होकर, शीतल, मंद, सुगंध वायु ने इनका दृढ़ धैर्य हर लिया। (भाव यह है कि वायु ने स्वतः धैर्य हरण नहीं किया प्रत्युत ऊपर लिखे हुए हेतुओं से ही उसे इतना बल प्राप्त हुआ।

उदाहरण—२
अभावहेतु।

जान्यो न मैं मद यौवनको, उतर्यो कब काम को काम गयोई।
छांड़ न चाहत जीव कलेवर, जोरि कलेवर छांड़ि दयोई॥
आवत जाति जरा दिन लीलति रूप जरा सब लीलि लयोई।
केशव राम रटौं न रटौं अनसाधेही साधन साधु भयोई॥१७॥

मैंने जान ही न पाया कि युवावस्था का मद कब उतर गया। काम की भावनाएं कब लुप्त हो गईं। जीव, शरीर को छोड़ना ही चाहता है और शरीर ने शक्ति को छोड़ ही दिया है। आते-जाते दिनों को जरा (वृद्धावस्था) लीलती जाती है। जरा (वृद्धावस्था) ने सारे सौंदर्य को लीलही लिया है। 'केशवदास' कहते हैं कि मैं राम रटूँ या न रटूँ, बिना साधना किये ही (वृद्धावस्था के कारण) साधु तो हो ही चुका हूं।

उदारहण—३
सभाव-अभाव हेतु

जादिनते वृषभानलली ही अली मिलये मुरलीधर तेंही।
साधन साधि अगाधि सबै, बुधि शोधि जे दूत अभूतन मेंही॥
ता दिनतें दिनमान दुहूँन को केशव आवति बात कहेहीं।
पीछे अकाश प्रकाशै शशी, चढ़ि प्रेम समुद्र बढ़ै पहिलेहीं॥१८॥

जिस दिन से सखी ने राधा को, अनेक साधनों को काम में लाकर तथा अभूतपूर्व दूतों की बुद्धिमानी से, श्रीकृष्ण से मिला दिया, उसी दिन से, 'केशवदास' कहते हैं कि दोनों के मान (अभिलाषाओं) के मान ऐसे

बढ़े हैं कि कहते ही बनता है। आकाश में चन्द्रमा पीछे निकलता है, उनके हृदयों का प्रेम समुद्र पहले ही उमड़ने लगता है।

४—विरोध

दोहा

'केशवदास' विरोधमय, रचियत वचन विचारि।
तासों कहत विरोध सब, कविकुल सुबुधिविचारि ॥१६॥

'केशवदास' कहते हैं कि इसमें विचार पूर्वक विरोधमय रचना की जाती है इसी से कवि लोगों ने अपनी बुद्धि को सुधार कर अर्थात् खूब सोच-समझकर इसका नाम 'विरोध रखा है।

उदाहरण

कवित्त

सोभत सुबास हास सुधा सों,सुधारयो बिधि,
विष को निवास जैसा तैसो मोहकारी है।
'केशौदास' पावन परम हंसगति तेरी,
पर होय हरन प्रकृति कौने पारी है।
वारक बिलोकि बलबार से बलीन कहूँ,
करत बरहिं वश, ऐसी वैसवारी है।
ऐरी मेरी सखी तेरी कैसे कै प्रतात कीजै,
कृष्णानुसारी दृग करणानुसारी हैं ॥२०॥

हे सखी! तेरा हास्य सुगन्धित है, मानो अमृत में साना हुआ है परन्तु विषैले पदार्थों की भाँति मूर्छा उत्पन्न करने वाला है। 'केशवदास' कहते हैं परम पवित्र हंस जैसी तेरी चाल है, परन्तु दूसरों के हृदयों को हरण करने का स्वभाव तेरा किसने बनाया है? तू एक बार में ही कृष्ण को देखते ही हठपूर्वक वश में कर लेती है, यद्यपि तेरी इतनी छोटी वयस है। हे सखी! तेरा विश्वास कैसे किया जाय? तेरे करणानुसारी (कानों तक फैले हुए) नेत्र कृष्णानुसारी (कृष्ण के अनुगामी) हैं।

इस कवित्त के पहले चरण में 'अमृत में सना हुआ हास्य, विष की भाँति मूर्छा उत्पन्न करता है,' अतः विरोध है। दूसरे चरण में 'परम पवित्र हंस' के दो अर्थ हंस और परमहंस होने के कारण विरोध है। परमपवित्र परमहंस जैसा स्वभाव होने पर दूसरों का हृदय हरण करे—यही विरोध है। तीसरे चरण में छोटी वयस में बली को वश में करने का उल्लेख है अतः विरोध है और चौथे में कृष्ण तथा करण परस्पर विरोधी थे, इस दृष्टि से 'कृष्णानुसारी' तथा 'करणानुसारी' शब्दों में 'विरोधाभास' है।

उदाहरण (२)

आपु सितासित रूप, चितै चित, श्याम शरीर रँगै रंगराते।
'केशव, कानन हीं न सुनै, सु कहैं रस की रसना बिनु बातें।
नैन किधौं कोउ अंतरयामी री, जानति नाहिन बूझति तातें।
दूर लौं दौरत हैं बिनु पायन, दूर दुरी दरसैं मति जातें ॥२१॥

तेरे नेत्र काले और श्वेत हैं परन्तु श्याम-शरीर (कृष्ण) की ओर देखकर, उनके चित्त को अनुराग के रंग में रंग देते हैं। (अनुराग का रंग लाल माना जाता है)। 'केशवदास' कहते हैं कि वे कानहीन होने पर भी बात सुन लेते हैं और बिना जीभ के ही प्रेम की बातें किया करते हैं। तेरी ये आँखें हैं या कोई अन्तर्यामी (मन का भेद जानने वाले) महात्मा पुरुष हैं ? मैं जानती नहीं, इसीलिए पूछती हूँ। बिना पैरों के होने पर भी दूर तक दौड़ जाते हैं और दूसरों के हृदयों में छिपी हुई बुद्धि भी इन्हें दिखलायी पड़ जाती है अर्थात् (दूसरों के मन का अभिप्राय जान लेते हैं)।

विरोधाभास लक्षण

दोहा

बरनत लगै विरोध सा, अर्थ सबै अविरोध।
प्रगट विरोधाभास यह, समझत सबै सुबोध ॥ २२ ॥

जो वर्णन करते समय विरोध सा जान पड़े, परन्तु अर्थ करने पर विरोध न हो. उसे सभी बुद्धिमान, विरोधाभास कहते हैं।

उदाहरण

कवित्त

परम पुरुष कुपुरुष संग शोभियत,
दिन दानशील पै कुदान ही सो रति हैं।
सूर कुल कलश पै राहु को रहत सुख,
साधु कहैं साधु, परदार प्रिय अति हैं।
अकर कहावत धनुष धरे देखियत,
परम कृपालु पै कृपान कर पति हैं।
विद्यमान लोचन द्वै, हीन वाम लोचन सों।
'केशौराय' राजा राम अद्भुत गति हैं ॥२३॥

'केशवदास' कहते हैं कि राजा रामचन्द्र जी की गति अद्भुत है। उन्हें स्वयं परम पुरुष होते हुए भी कुपुरुषों (पृथ्वी के मनुष्यों) का संग अच्छा लगता है। प्रतिदान दान देते हैं परन्तु कुदान (पृथ्वीदान) में ही अधिक रुचि रहती है। वह सूर्य-कुल-कलश अर्थात सूर्यवंश में श्रेष्ठ हैं परन्तु राहु (मार्ग) का उनके राज्य में सुख रहता है। साधु अथवा सज्जन उन्हें सज्जन कहा करते हैं परन्तु वह परदार प्रिय (लक्ष्मी के वल्लभ) हैं। अकर (बिना हाथ वाले) कहलाते हैं पर हाथ में धनुष धारण किये रहते हैं। परम कृपालु हैं, परन्तु कृपान कर पति (कृपाणधारियों के स्वामी हैं)। उनके दो नेत्र विद्यमान हैं परन्तु वाम-लोचन (कुलटा स्त्री) से हीन हैं (अर्थात् उससे सम्पर्क नहीं रखते)।

[इस कवित्त में—पहले परम पुरुष होते हुए भी कुपुरुष अच्छे लगते हैं, दानशील होते हुए भी कुदान से रति रखते हैं, सूर्यकुल के होकर भी राहु को सुखदायी हैं, साधु कहलाने पर भी परदार प्रिय हैं, अकर (हाथ रहित) होने पर, धनुष धारण किये हैं और आँखें रहने

पर भी वामलोचन से हीन हैं—आदि परस्पर विरोधी अर्थों का आभास होता है, परन्तु जब ऊपर लिखा हुआ वास्तविक अर्थ निकल आता है, तब विरोध चला जाता है, इसलिए यह 'विरोधाभास' कहलाता है, क्योंकि इसमें 'विरोध' का आभास मात्र रहता है, वास्तविक विरोध नहीं]

५—विशेष

दोहा

साधन कारण विकल जहँ, होय साध्य की सिद्धि ।
'केशवदास' बखानिये, सो विशेष परसिद्धि ॥२४॥

'केशवदास' कहते हैं कि जहाँ पर (कार्य को सम्पन्न करने वाला) साधन अर्थात् कारण के अपूर्ण रहने पर भी साध्य (कार्य) की सिद्धि हो जाय, वहाँ पर विशेष अलंकार होता है।

उदाहरण (१)

सवैया

साँपको कंकण; माल कपाल, जटानि की जूट रहीं जटि आँतैं ।
खाल पुरानी पुरानोई बैल, सुऔरकी और कहैं विष मातैं ॥
पारवती पति संपति देखि, कहैं यह केशव संभ्रम तातैं ।
आपुन मांगत भीख भिखारिनि देत, दई मुहँमांगी कहांतैं ॥ २५ ॥

उनके पास सांप का कंकण और कपोलों की माला रहती है तथा वह जटायें धारण किये हुए रहते हैं। (मारे भूख के) उनकी आँते पेट में चिपटी रहती हैं। पुरानी खाल ओढ़ते हैं, एक पुराना बैल उनके पास है, और विष खाये हुए की तरह और की और बातें किया करते हैं। 'केशवदास' कहते हैं कि पार्वती पति की यह संपत्ति देखकर मुझे भ्रम होता है, इसीलिए कहता हूँ कि वह स्वयं तो भीख मांगते हैं और भिखारियों को मुँहमांगी भीख कहाँ से दे देते हैं ?

उदाहरण (२)

कवित्त

तमोगुण ओप तन ओपित, विषम नैन,
लोकनि विलोप करैं, कोप के निकेत हैं।
मुख विष भरे, विषधर धरे, मुंडमाल,
भूषित विभूति, भूत प्रेतनि समेत हैं।
पातक पिता के युत, पात की ही को तिलक,
भावै गीत काम ही को, कामिनि के हेत हैं।
योगिन की सिद्धि, सब जग की सकल सिद्धि,
'केशौदास' दासि ही ज्यौं दासन को देत हैं॥२६॥

उनका शरीर तमोगुण की शोभा से भूषित है। वह स्वय विषमनैन अर्थात् तीन नेत्रवाले हैं। लोकों का नाश करनेवाले (प्रलयकारी) हैं तथा कोप (क्रोध) के तो घर ही हैं अर्थात् बड़े क्रोधी हैं। मुख में विष रखे हुए हैं, शरीर पर साँपों को धारण करते हैं, गले में मुंडमाला पहने हैं, अंग में भस्म लगी रहती है और भूत-प्रेतों का साथ रहता है। उन्हें पिता के शिर काटने का पाप लगा है और पातकी (कलंकी) चन्द्रमा का ही तिलक बनाये हुए हैं और जिन्हें काम का ही गीत अच्छा लगता है (अर्थात् जिन्हें काम-दहन की प्रशंसा ही सुहाती है) तथा जो कामिनी (गौरी-पार्वती) के हितैषी हैं। 'केशवदास' कहते हैं कि स्वयं अमंगलरूप होते हुए भी वह अपने दासों (भक्तों) को योगियों की सिद्धि तथा संसार की सभी सिद्धियों को, दासी की भाँति दे डालते हैं।

उदाहरण—२

सवैया।

बाजि नहीं, गजराज नहीं, रथपत्ति नहीं, बल गात विहीनो।
केशवदास कठोर न तीक्षण, भूलिहू हाथ हथ्यार न लीनो॥
जोग न जानति मंत्र न जाप, न तंत्र न पाठ पढ़यो परवीनो।
रक्षक लोकन के सुगँवारिन, एक विलोकनि ही वश कीनो॥२७॥

जिसके पास न घोड़ा है; न हाथी है, न रथ है, न पैदल सिपाही हैं और स्वयं भी जो बलहीन है। 'केशवदास' कहते हैं कि जिसने भूलकर भी हाथ में कठोर या तीक्ष्ण हथियार नहीं लिया। न वह योग जानती है और न मंत्र अथवा यंत्र ही जानती है और न उसने तंत्र का ही प्रवीण पाठ पढ़ा है। फिर भी उस गंवारिनी ने तीनों लोकों के रक्षक (श्रीकृष्ण) को एक ही दृष्टि से, वश में कर लिया है।

उदाहरण—४

कवित्त

व्रज की कुमारिका वै लीने शुक शारिका,
पढ़ावैं कोक कारिकान 'केशव' सवै निबाहि।
गोरी गोरी, भोरी भोरी, थोरी थोरी वैस फिरि,
देवता सी दौरि दौर आई चारों चोरी चाहि।
विनगुन, तेरी आन, भ्रकुटी कमान तान,
कुटिल कटाक्ष वान, यह अचरज आहि।
एतेमान ढाठ, ईठ मेरे को अदीठ मन,
पीठ दै दै मारती पै चूकती न कोऊ ताहि ॥२८॥

'केशवदास' (किसी सखी की ओर से) कहते हैं कि व्रज की कुमारियां (कन्याएं), तोता-मैना को लिए, कोक-शास्त्र की परिभाषाओं को भली-भाँति पढ़ाती हैं। वे लोग गोरी-गोरी, भोली-भाली और थोड़ी वयस की हैं। सबकी सब दौड़ कर (श्रीकृष्ण) को छिपे-छिपे ऐसे देख आई, जैसे कोई देवता। (क्योंकि देवता सबको छिपे-छिपे देख लेते है और उन्हें कोई नहीं देखता)। तेरी सौगन्ध, बिना डोरी के भौंह रूपी धनुषों को खींचकर और उनपर कुटिल कटाक्ष के वाण रखकर, मेरे मित्र (श्रीकृष्ण) के अदृश्य मन पर ऐसा प्रहार करती हैं कि आश्चर्य होता है। वे अपना निशाना सामने से नहीं, पीठ दे-देकर अर्थात् पीछे से छिपे रूप से मारती हैं, परन्तु उनका एक भी निशान नहीं चूकता।

उदाहरण—५

दोहा

बाँचि न आवै, लिखि कछू, जानत छांह न घाम।
अर्थ, सुनारी, बैदई करि जानत पतिराम ॥२९॥

'पतिराम' (सुनार) को न तो पढ़ना आता है और न वह कुछ लिखना ही जानता है तथा न उसे धूप तथा छाया अर्थात् गर्मी-सर्दी का ही ज्ञान है। परन्तु फिर भी वह कविता का अर्थ लगाना, सुनारी करना तथा वैद्यक का काम भली भाँति जानता है।

[पतिराम 'केशवदास' के पड़ोस में रहने वाला एक सुनार था। कहते हैं कि विद्वानों की सत्संगति से उसे कविता का अर्थ लगाने का सुन्दर अभ्यास हो गया था। अतः केशवदास जी ने उक्त दोहा उसके सम्बन्ध में लिखकर उसे अमर बना दिया।]

ऊपर के पाँचों उदाहरणों में अपूर्ण कारणों से कार्यों की सिद्धि हुई है, अतः विशेष अलंकार है।

६—उत्प्रेक्षा।

दोहा

केशव औरहि वस्तु में, औरै कीजै तर्क।
उत्प्रेक्षा तासों कहैं, जिन की बुधि सँपर्क ॥३०॥

'केशवदास' कहते हैं कि जहाँ और वस्तु में और की कल्पना की जाती है, वहाँ बुद्धिमान लोग उत्प्रेक्षा कहते हैं।

उदाहरण (१)

हर को धनुष तोरयो, रावण को वंश तोरयो,
लंक तोरी, तोरैं जैसे वृद्ध बंश बात हैं।
शत्रुन के सेल, शूल, फूल, तूल, सहे राम,
सुनि 'केशौराय' कीसो हिये हहरात हैं।

काम तीर हू ते तिद्म तारे तरुणीन हू के.
लागि लागि उचरि परत ऐसे गात हैं।
मेरे जान जानकी तू जानति है जान कछू,
देखत ही तेरे नैन मैन से ह्वै जात हैं ॥३१॥

जिन्होंने महादेव जी का धनुष तोड़ा, रावण के वंश का नाश कर दिया और लंका ऐसे तोड़ डाली (नष्ट कर डाली) जैसे वृद्ध की कमर को वात रोग तोड़ डालता है अथवा जैसे वायु पुराने बांस को तोड़ डालती है। श्रीराम ने शत्रुओं के सेल और शूलों को फूल तथा रूई की तरह सहन कर लिया, जिसे सुनकर, केशवराय (ईश्वर) की सौगंध हृदय कंपित हो जाता है। उनके शरीर पर, युवतियों के काम-बाणों से भी तेज नेत्र-तारे (तीखीदृष्टि), लग-लग कर उचट जाते हैं अर्थात् कोई प्रभाव नहीं पड़ता। मेरी समझ में, हे जानकी, तू कुछ जादू जानती है कि वह श्रीराम तेरे नेत्रों के देखते ही मोम से हो जाते हैं।

उदाहरण (२)

(कवित्त)

अंक न, शशंक न, पयोधिहू को पंक न सु,
अंजन न रंजित, रजनि निज नारी को।
नाहिनै झलक झलकति तमपान की न,
छिति छांड़ छाई, छिद्र नाहीं सुखकारी को।
'केशव' कृपानिधान देखिये विराजमान,
मानिये प्रमान राम बैन बनचारी को।
लागति हैं जाय कंठ, नाग दिगपालन के,
मेरे जान सोई कृच्छ कीरति तिहारी को ॥३२॥

(चन्द्रमा के कलंक के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुए श्रीहनुमान जी श्रीरामचन्द्र से कहते हैं कि) न तो यह दाग है, न, जैसा लोग समझते हैं, मृग का चिन्ह है, न समुद्र का कीचड़ लगा है, और न

अपनी स्त्री रात्रि के काजल से ही यह रंगा हुआ है। यह तमपान (पिये हुए अंधकार) की झलक भी नहीं है। न पृथ्वी की छाया है और न इस चन्द्रमा में छेद ही है, जिससे नीले आकाश की छाया दिखलायी पड़ती हो। 'केशवदास' (श्रीहनुमान जी की ओर से) कहते हैं कि 'हे कृपानिधान! श्रीरामचन्द्र उस दाग को देखिए! और मुझ बनचारी के बचनों को इस संबंध में सच मानिए। मेरी समझ में दिग्गजों तथा दिग्पालों के कंठों से निकली हुई आपकी कीर्त्ति को सुनकर चन्द्रमा को उत्पन्न हुई ईर्ष्या का यह काला दाग है।

दसवां-प्रभाव

आक्षेपालंकार

दोहा

कारज के आरंभ ही, जहँ कीजत प्रतिषेध।
आक्षेपक तासों कहत, बहुविधि वरणि सुमेध ॥१॥

जहाँ कार्य के आरम्भ में ही, उसका प्रतिषेध कर दिया जाता है, वहाँ विद्वान आक्षेप अलंकार मानते हैं।

तीनहुँ काल बखानिये, भयो जु भावी होइ।
कविकुल कोऊ कहत हैं, यह प्रतिषेधहि दोइ ॥२॥

यह प्रतिषेध तीनों कालों अर्थात् भूत, भविष्य और वर्त्तमान में वर्णित हो सकता है। परन्तु कुछ कवि लोग इसे दो ही कालों (भावी और भूत) में वर्णन करते हैं।

भूत कालिक प्रतिषेध

बरज्योंहौं हरि, त्रिपुरहर, बारक करि भ्रू भंग।
सुनों मदनमोहनि ! मदन, ह्वैही गयो अनंग ॥३॥

(कामदेव की स्त्री रति से उसकी सखी कहती है) कि मैंने कामदेव को मना किया था कि त्रिपुरारि शिवजी से शत्रुता न करो। (परन्तु मेरा कहना उसने नहीं माना और परिणाम यह हुआ कि) हे मदन मोहनी (रति)! उनके तनिक भ्रूभंग (टेढ़ी भौंहें) करते ही मदन अनंग (शरीर रहित) हो ही गये। [इसमें 'बरज्यो' भूत काल सूचक क्रिया है, अतः भूत कालिक प्रतिषेध है]

भावी प्रतिषेध

तातें गौरि न कीजिये, कौनहुँ विधि भ्रूभंग।
को जानै ह्वै जाय कह, प्राणनाथ के अंग ॥४॥

(पार्वतीजी की सखी उन्हें समझाती हुई कहती हैं कि) हे गौरी ! कौन जानें तुम्हारे प्राणनाथ (शिवजी) के अंग पर क्या बीते, इसलिए तुम किसी प्रकार भी टेढ़ी भौंहें न करो अर्थात् मान न दिखलाओ।

[इसमें 'को जानै ह्वै जाय कह' भविष्य सूचक क्रिया है, अतः यह भावी प्रतिषेध है]

वर्त्तमान प्रतिषेध

कोविद ! कपट नकार शर, लगत न तजहु उछाह।
प्रतिपल नूतन नेहको, पहिरैं नाह सनाह ॥५॥

नायक को समझाती हुई सखी कहती है कि हे कोविद ! इन नकार (नहीं, नहीं करने के) बाणों के लगने से अपना उत्साह न छोड़ो। क्योंकि नाह (नायक) तो प्रतिपल नयेस्नेह का कवच पहनते है।

[इसमें 'न तजहु' बर्तमान कालिक क्रिया है, अतः यह वर्तमान प्रतिषेध है]

आक्षेप के भेद

प्रेम, अधीरज, धीरजहु, संशय, मरण, प्रकास।
आशिष, धर्म, उपाय कहि, शिक्षा केशवदास ॥६॥

'केशवदास' कहते हैं कि (आक्षेप में प्रतिषेध (रोक) का कार्य) प्रेम, अधैर्य, धैर्य, संशय, मरण, आशिष, धर्म, उपाय और शिक्षा द्वारा किया जाता है।

१—प्रेमाक्षेप

दोहा

प्रेम बखानतही जहाँ, उपजत कारजबाधु।
कहत प्रेम आक्षेप तहं, तासों केशव साधु ॥७॥

'केशवदास' कहते हैं कि प्रेम का वर्णन करते ही, कार्य में बाधा उत्पन्न हो जाय, वहाँ साधु (विद्वान) लोग 'प्रेमाक्षेप' बतलाते हैं।

उदाहरण

कवित्त

ज्यों ज्यों बहु बरजी मैं, प्राण नाथ मेरे प्राण,
अंग न लगाइये जू, आगे दुख पाइबो।
त्यों त्यों हँसि हँसि अति शिर पर उर पर,
कीबो कियो आँखिन के ऊपर खिलाइबो।
एकौ पल इत उत साथ तें न जान दीन्हे,
लीन्हें फिरे हाथ ही कहां लौं गुणगाइबो।
तुमतो कहत तिन्हैं छांड़ि कै चलन अब,
छांड़त ये कैसे तुम्हैं आगे उठि धाइबो ॥८॥

(परदेश जाते हुए अपने स्वामी से, उसकी भार्या कहती है कि) हे प्राणनाथ ! मैंने आपको जैसे-जैसे मना किया था कि मेरे प्राणों को अंग न लगाइए; क्योंकि इससे आगे दुःख मिलेगा, वैसे वैसे आपने इन प्राणों को, हँस-हँसकर, शिर, हृदय और आँखों पर खेलाया किये। आपने इन्हें एक पल के लिए भी अपना साथ छोड़ कर, इधर उधर नहीं जाने दिया और इन्हें हाथों में लिए ही घूमा किये। मैं कहाँ तक आपकी प्रशंसा करूँ। अब आप इन्हें छोड़कर चलने की बात कहते हैं। सो ये आपको भला कैसे छोड़ेंगे। आपके जाने के पहले ही उठ दौड़ेंगे।

२—अधैर्याक्षेप

दोहा

प्रेम भंग वच सुनत जहँ, उपजत सात्विकभाव।
कहत अधीरजको सुकवि, यह आक्षेप स्वभाव ॥९॥

जहाँ पर प्रेम-भंग की बात सुनते ही, सात्विक भाव उत्पन्न हो जांय वहाँ सुकवि गण उसे अधैर्याक्षेप कहते हैं।

उदाहरण

सवैया

केशव प्रात बड़ेही, बिदाकहँ आये प्रियापहँ नेह नहेरी।
आवों महावनह्वै जु कहौ, हँसि बोल द्वै ऐसे बनाय कहेरी॥
को प्रतिउत्तर देइ सखी सुनि, लोलविलोचन यों उमहेरी।
सौंहक कै हरि हार रहे अधिरातिके लौं असुवा न रहेरी॥१०॥

बड़े प्रातः काले केशव (श्रीकृष्ण), प्रेम में भरे हुए, अपनी प्रिया (राधा) के पास बिदा मांगने के लिए आये और जैसे ही, हंसते हुए, बातें बनाकर, बोले कि 'मैं महावन हो आऊँ'।, वैसे ही, हे सखी! उत्तर कौन देता! उसकी आँखों में तो इतने आँसू उमड़ आये कि आधी रात तक न रुके और कृष्ण शपथ खा खा कर (कि मैं न जाऊँगा) थक गये।

३—धैर्याक्षेप

दोहा

कारज करि कहिये वचन, काज निवारन अर्थ।
धीरज को आक्षेप यह, बरणत बुद्धि समर्थ॥११॥

कार्य को रोकने के लिए, जहाँ सकारण बात कही जाय, वहाँ बुद्धिमान लोग, उसे धैर्याक्षेप कहते हैं।

उदाहरण

कवित्त

चलत चलत दिन बहुत व्यतीत भये,
सकुचत कत चित चलत चलाये ही।
जात हैं ते कहौ कहा नाहिनै मिलत आनि,
जानि यह छांड़ौ मोह बढ़त बढ़ाये ही।
मेरी सौं तुमहिं हरि रहियौ सुखहि सुख,
मोहूँ है तिहारी सौंहँ रहौ सुख पाये ही।
चलेही बनत जो तो चालये चतुर पिय,
सोवत ही जैयो छाँड़ि जागौंगीहौं आये ही॥१२॥

चलने की चर्चा चलाते हुए आपको अनेक दिन हो गये हैं। अब संकोच किस बात का है, मन तो हटाने से हटाता है। जो विदेश जाया करते हैं, कहिए, वे क्या फिर वापस आकर नहीं मिलते ? यही समझ कर मोह छोड़िए, क्योंकि मोह तो बढ़ाने ही से बढ़ता है। आपको मेरी शपथ है, आप सुख पूर्वक निश्चिन्त होकर रहिएगा और मैं भी आपकी शपथ खाती हूँ कि मैं सुख पूर्वक रहूँगी। हे चतुर प्रियतम ! यदि जाना ही है तो जाइए। मुझे आप सोते हुए छोड़ जायेंगे, आपके आने पर ही मैं जागूँगी।

४—संशयाक्षेप

दोहा

उपजाये संदेह कछु, उपजत काज विरोध।
यह संशय आक्षेप कहि, बरणत जिन्हैं प्रबोध ॥१३॥

जहाँ पर कुछ संदेह उत्पन्न कर देने पर कार्य का विरोध उत्पन्न हो जाय, उसे जानकार लोग संशयाक्षेप कहते हैं।

उदाहरण

कवित्त

गुनन वलित, कल सुरन कलित माय,
ललिता ललित मीत श्रवण रचाइहै।
चित्रनी हौं चित्रन में परम विचित्र तुम्हैं,
चित्रन में देखि देखि नैनन नवाइहै।
कामके विरोधी मत शोधि शोधि साधि सिद्धि,
बोधि बोधि अवधि के वासर गँवाइहै।
केशोराय की सौं मोहि कठिन यहै है वा की,
रसनै रसिक लाल पान को खवाइहै ॥१४॥

आपके गुणों से युक्त गीतों को सुन्दर स्वरों से गा-गाकर ललिता सखी उसके कानों को प्रसन्न करेगी। मैं चित्रनी अर्थात् चित्र खींचने

वाली हूँ, तुम्हारा बहुत ही अद्भुत चित्र बनाऊँगी तो चित्रों में तुम्हारी अद्भुत मूर्ति को देख-देख कर वह आँखों को नीचा कर लिया करेगी। सिद्धि नाम की सखी काम-विरोधी मतों की खोज कर-कर के उसे उपदेश देती हुई किसी प्रकार अवधि के दिनों को बितावेगी। परन्तु हे रसिक लाल केशवराय-ईश्वर-की शपथ मुझे कठिनाई यही है कि उसकी जीभ को पान कौन खिलावेगा ?

५—मरणाक्षेप

दोहा

मरण निवारण करत जहँ, काज निवारण होत।
जानहु मरणाक्षेप यह जो जिय बुद्धि उदोत ॥१५॥

जहाँ मरण भू निवारक शब्दों द्वारा जहाँ व्यंग्यपूर्वक कार्य में बाधा डाली जाती है। वहाँ मरणाक्षेप समझना चाहिए।

उदाहरण

कवित्त

नीके कै किंवार दैहौं, द्वार द्वार दर बार,
केशोदास आस-पास सूरज न आवैगो।
छिन में छवाय लैहौं, ऊपर अटानि आजु,
आंगन पटाय देहौं, जैसे मोहिं भावैगो।
न्यारे न्यारे नारिदान मूंदिहौं झरोखे जाल,
जाइ है न पानी, पौन आवन न पावैगो।
माधव तिहारे पीछे मो पहँ मरण मूढ़,
आवन कहत सो धौं कौन पैंड़े आवैगो ॥१६॥

('केशवदास' गोपी की ओर से श्रीकृष्ण से कहते हैं कि) मैं छोटे-बड़े सभी दरवाजों के किवाड़ बन्द कर दूँगी, जिससे सूर्य भी पास न फटकने पावेगा। ऊपर को सभी अट्टालिकाओं के आज क्षण भर में पटा दूँगी और जैसा मुझे अच्छा लगेगा वैसा आंगन भी पटवा दूँगी। मोरी,

झरोखों तथा जालों को अलग अलग बंद करवा दूंगी जिससे न तो पानी जा सकेगा और न हवा आ सकेगी। हे माधव! यह मूर्ख मरण तुम्हारे चले जाने पर जो आने की बात कहता है, सो अब बतलाओ! किस मार्ग से आवेगा?

६—आशिषाक्षेप

दोहा

आशिष पियके पंथ को, देवै दुःख दुराय।
आशिषको आक्षेप यह, कहत सकल कविराय ॥१७॥

प्रियतम के आशीष अर्थात् कुशल-क्षेम के लिए जब अपना दुःख छिपा लिया जाता है, तब कवि लोग उसे आशिषाक्षेप कहते हैं।

उदाहरण

कवित्त

मंत्री, मित्र, पुत्र जन केशव कलत्र गन,
सोदर सुजन जन भट सुख साज सों।
एतो सब होत जात जो पै है कुशल गात,
अबहीं चलौ कै प्रात सगुन समाज सौं।
कीन्हों जो पयान बाध, छमिये सो अपराध,
रहिये न पल आध, बँधिये न लाज सों।
हौं न कहौं, कहत निगम सब अब तब,
राजन परमहित आपने ही काज सों ॥१८॥

('केशवदास' किसी स्त्री की ओर से कहते हैं कि) मंत्री, मित्र, पुत्र, स्त्री, सगे भाई, स्वजन, योद्धा और सुख का समाज ये सब तो, यदि शरीर कुशल से रहे, तो होते जाते रहते हैं। इसलिए या तो आज अथवा प्रातःकाल आप शकुन- मुहूर्त्त-लेकर चले जाइए। मैंने जो आपके जाने में बाधा उत्पन्न की थी, उस अपराध को क्षमा कीजिए और अब आधे पल के लिए भी न रहिए तथा न संकोच कीजिए।

हे राजन ! यह बात कुछ मैं ही नहीं कहती, वेद पुराण सब बराबर यही कहते चले आये हैं कि अपने कार्य साधन में ही व्यक्ति का परमहित होता है।

—धर्माक्षेप

दोहा

राखत अपने धर्मको, जहँ कारज रहिजाय।
धर्माक्षेप सदा यहै, बरणत सब कविराय ॥१९॥

जहाँ अपने धर्म (कर्त्तव्य) का पालन करने से, दूसरे का काम रुक जाय, वहाँ सब कवि लोग, उसे धर्माक्षेप कहते हैं।

उदाहरण

(कवित्त)

जो हौं कहौं 'रहिये' तो प्रभुता प्रगट होत,
'चलन' कहौं तो हित हानि, नाहिं सहनो।
'भावे सो करहु' तो उदासभाव प्राणनाथ,
'साथ लै चलहु' कैसे लोक लाज बहनो।
'केशोराय' की सौं तुम सुनहु छबीले लाल,
चले ही बनत जो पै नाहीं आज रहनो।
तैसियै सिखाओ सीख, तुमही सुजान पिय,
तुमहिं चलत मोहि जैसे कुछु कहनो ॥२०॥

(एक स्त्री अपने पति से चलते समय कहती है कि) आपके चलते समय यदि मैं कहूँ कि 'न जाइए यहीं रहिए' तो इसमें मेरी प्रभुता प्रकट होती हैं। और यदि कहूँ कि-'आपको जैसा अच्छा लगे वैसा कीजिए' तो हे प्राणनाथ ! इसमें उदासीनता का भाव प्रकट होता है। यदि कहूँ कि 'अपने साथ ले चलो' तो लोक-लज्जा का कैसे निर्वाह होगा ? हे छबीले लाल ! यदि आज आपको जाना ही है और यहाँ नहीं रहना है तो, आपही मुझे सिखाइये कि 'आपके चलते

समय मुझे क्या कहना चाहिए।' क्योंकि आप तो सुजान (जानकार) ही ठहरे।

८—उपायाक्षेप

दोहा

कौनहु एक उपाय कहि, रोकै पिय प्रस्थान।
तासों कहत उपाय कवि, केशवदास सुजान ॥२१॥

'केशवदास' कहते हैं कि जब कोई उपाय काम में लाकर, प्रियतम का प्रस्थान रोक दे, तब सुजान कवि लोग, उसे उपायाक्षेप कहते हैं।

उदाहरण

सवैया

मोकों सबै ब्रजकी युवती, हर-गौरि समान सुहागिनि जानैं।
ऐसी को गोपी गोपाल तुम्हैं बिन, गोकुल में बसिबो उर आनैं॥
मूरति मेरी अदीठ कै ईठ, चलौ, कि रहौ, जु कछू मन मानैं।
प्रेमनिक्षेमनि आदिदे केशव कोऊ न मोहि कहूँ पहिचानैं ॥२२॥

(विदेश जाते समय कोई गोपी श्री कृष्ण से कहती हैं कि) मुझे तो ब्रज की युवतियां शिवजी और पार्वती जी के समान, आपकी अर्द्धाङ्गिनी समझती हैं। हे गोपाल! ऐसी कौन सी गोपी है जो आपके बिना ब्रज में रहने का विचार अपने मन में लावे। इसलिए किसी उपाय से मेरी मूर्त्ति को अदृश्य करके (जिससे मैं दिखलाई न पड़ूँ) आपको जैसा अच्छा लगे करें, चाहे रहें, चाहे जांय। (केशवदास गोपी की ओर से कहते हैं कि) आप मुझे ऐसा अदृश्य बनाइएगा कि मुझसे प्रेम करने वाली तथा मेरा कुशल चाहने वाली आदि जितनी स्त्रियाँ हैं, वे मुझे किसी भी तरह से, कभी पहचान न सकें

९—शिक्षाक्षेप

दोहा

सुखही सुख जहँ राखिये, सिखही सिख सुखदानि।
शिक्षाक्षेप कह्यो बरणि, छप्पय बारह बानि ॥२३॥

जहाँ सान्त्वना और उपदेश दे-देकर, पति को रोका जाता है, वहाँ शिक्षाक्षेप होता है। उसे यहाँ बारह प्रकार से वर्णन किया गया है।

१—चैत्रवर्णन

छप्पय

फूली लतिका ललित, तरुनितर फूले तरुवर।
फूलीं सरिता सुभग, सरस फूल सब सरवर॥
फूली कामिनि कामरूपकरि कंतनि पूजहि।
शुक-सारी-कुल केलि फूलि कोकिल कल कूजहिं॥
कहि केशव ऐसी फूल महि शूलन फूल लगाइये।
पिय आप चलन की को कहै चित्त न चैत चलाइये॥२४॥

चैत्र में सुन्दर लताएं, पूर्ण युवती होकर, फूल रही हैं। सुन्दर पेड़ भी फूल रहे हैं। नदियाँ तथा तालाब आदि भी फूले हुए हैं अर्थात् प्रसन्न दिखलाई पड़ते हैं। कामिनियां भी फूली हुई हैं और कामोत्तेज्जित होकर अपने-अपने पति की पूजा में लग रही हैं। तोता मैना, फूल कर क्रीड़ा कर रहे हैं और कोयल भी फूलकर ध्वनि कर रही है। ('केशवदास' नायिका की ओर से कहते हैं कि) हे प्रियतम! ऐसी फूल में (प्रसन्नता के वातावरण में) आप शूल (कांटे) न चुभाइये अर्थात् रंग में भंग न कीजिए। हे प्रियतम! इस चैत मास में आपके चलने की बात कौन कहे, चलने का विचार तक न करना चाहिए।

२—वैशाख वर्णन

केशवदास अकास अवनि बासित सुबास करि।
बहत पवन गति मंद गात, मकरंद बिंदु धरि॥
दिशि विदिशिनि छवि लाग भाग पूरित परागवर।
होत गन्धहो अन्ध बौर भौंरा विदेशि नर॥
सुनि सुखद सुखद सिख सीखि पति, रति सिखइ सुख साखमें।
वर विरहिन वधत विशेषकरि कामविशिख वैशाखमें॥२५॥

(केशवदास नायिका की ओर से कहते हैं कि) वैशाख में आकाश और पृथ्वी सभी सुगन्ध से सुगन्धित हो जाते हैं। वायु मकरंद बिंदु को धारण करके धीरे-धीरे बहने लगती है। प्रत्येक दिशा सुशोभित हो जाती है, और उनका प्रत्येक भाग पराग से पूर्ण हो जाता है। भौंरा (भ्रमर) और विदेशी जन, मारे सुगन्ध के, अन्धे और बावले (कामोन्मत्त) हो जाते हैं। इसलिए हे प्रियतम ! मेरी सुखदायिनी शिक्षा को (जिसे प्रेम ने) आनन्द के समय मुझे सिखाया है, सुनिये कि 'वैशाख में, पति से बिछुड़ी हुई स्त्री को, काम के बाण, विशेषरूप से सताते हैं।

३—जेठवर्णन

एक भूतमय होत भूत, भजि पंचभूत भ्रम।
अनिल, अंबु, आकाश, अवनि, ह्वैजात आगिसम॥
पंथ थकित मद मुकित सुखित सर सिंधुर जोवत।
काकोदर करि कोश, उदर तर केहरि सोवत॥
पियप्रबल जीव इहिविधि अबल, सकल विकल जल थल रहत।
तजि केशवदास उदास मति, जेठमास जेठे कहत॥२६॥

जेठ के महीने में सारी सृष्टि एक भूत-मय हो जाती है और उसके पंचभूतमय होने का भ्रम भाग जाता है। वायु, जल, आकाश, और पृथ्वी सभी अग्नि जैसे हो जाते हैं। मार्ग बंद हो जाता है और तालाबों को सूखा हुआ देखकर हाथी मद से मुक्त हो जाते हैं अर्थात् उनका मतवालापन जाता रहता है। उनकी सूंड की कुंडली में सांप तथा पेट के नीचे सिंह सोता रहता है। (गर्मी के मारे उन्हें अपने वैर का ध्यान ही नहीं रहता) ! हे पतिदेव ! इस तरह जल और थल के सभी प्रबल जीवगण निर्बल हो जाते हैं। (केशवदास पत्नी की ओर से कहते है कि) इसी लिए बड़े लोग कहते हैं कि 'जेठ के महीने में घर से उदास (विरक्त) होने के विचार को छोड़ देना चाहिए।

४—आषाढ़वर्णन

पवनचक्र परचंड चलत चहुँओर चपलगति ।
भवन भामिनी तजत भ्रमत मानहुँ तिनकी मति ॥
संन्यासी इहि मास होत इक आसनवासी ।
पुरुषनकी को कहै भये पच्छियो निवासी ॥
इहि समय सेज सोवन लियो, श्रीहि साथ श्रीनाथहू ।
कहि केशवदास अषाढ़चल मैं न सुन्यो श्रुति गाथहू ॥२७॥

आषाढ़ में चारों ओर से प्रचंड पवनचक्र चंचलगति से चला करते हैं। वे चलते हुए पवनचक्र ऐसे ज्ञात होते हैं मानों, इस मास में घर और स्त्री को छोड़ने वालों की मति चक्कर खा रही है। इस महीने में संन्यासी भी एक स्थान पर रहने वाले हो जाते हैं। पुरुषों की तो बात ही क्या है, पक्षी तक एक स्थान के निवासी हो जाते हैं! इस महीने में श्रीनाथ (भगवान्-नारायण) ने भी, लक्ष्मी को साथ में लेकर-शय्या पर सोना स्वीकार किया है। इसीलिए (केशवदास— पत्नी की ओर से कहते हैं कि) मैंने आषाढ़ के महीने में वेदों तक में परदेश जाना नहीं सुना।

५—सावनवर्णन

केशव सरिता सकल मिलत सागर मनमोहैं ।
ललित लता लपटाति. तरुनतन तरुवर सोहैं ॥
रुचि चपला मिलि मेघ. चपल चमकत चहुँ ओरन ।
मनभावनकहँ भेंटि भूमि, कूजत मिस मोरन ॥
इहिरीति रमन रमनी सकल रमन लगे मनभावने ।
पियगमन करनकी को कहै गमन न सुनियत सावने ॥२८॥

(केशवदास—पत्नी की ओर से कहते हैं कि) सावन में. सभी नदियां समुद्र से मिलती हुई मनको मोहती हैं। पेड़ों के शरीरों से लपटी हुई लताएं शोभा पाती हैं। बादलों से मिलकर, चंचल बिजली चारों ओर चमकती है और पृथ्वी भी मानो अपने मनभावन (जल) से

State Museum
LUCKNOW.

भेंट करके, मोरों के बहाने कूजती है। इस प्रकार सभी (जड़-चेतन) स्त्री-पुरुष रमने रमाने लगे। अतः हे प्रियतम ! विदेशगमन करने की कौन कहे, सावन में तो लोग गमन (गौना, द्विरागमन) तक नहीं करते।

६—भादौंवर्णन

घोरत घन चहुँओर, घोष निरघोषनि मंडहिं।
धाराधर धर धरनि मुशलधारन जल छंडहिं॥
झिल्लीगन झनकार पवन, झुकि झुकि झकझोरत।
बाघ, सिंह, गुंजरत पुंज, कुंजर तरु तोरत॥
निशिदिन विशेषनिहिशेष मिटिजात सुओली ओड़िये।
देश पियूष विदेश विष भादौं, भवन न छोड़िये॥२९॥

भादों में बादल चारों ओर से घिर कर गम्भीर गर्जना किया करते हैं। और पृथ्वी के निकट आ-आकर, मूसल जैसी धारा से पानी वर्षाया करते हैं। झिल्लियों की झनकार सुनाई पड़ती रहती है और पवन झुक-झुक कर झकझोरे लिया करता है अर्थात् वायु बहुत तेज़ चला करती है। बाघ और सिंह समूह गुंजारते हैं और हाथी पेड़ों को तोड़ते हैं। अन्धकार छाये रहने के कारण रात और दिन का सारा का सारा अन्तर मिट सा जाता है। कभी कभी ओलों की वृष्टि सहन करनी पड़ती है। ऐसे समय में स्वदेश अमृत और विदेश विष के समान होता है। अतः हे प्रियतम ! भादों में कभी घर नहीं छोड़ना चाहिये।

७—कुवांरवर्णन

प्रथम पिंडहित प्रकट पितर पावन घर आवैं।
नव दुर्गनि नर पूजि स्वर्ग अपवर्गहि पावैं॥
छत्रनिदै छितिपाल लेत, भुव लै सँग पंडित।
केशवदास अकास अमल जल थल जनमंडित॥
रमनीय रजनि रजनीशरुचि रमारमनहूँ रासरति।
कलकेलि कलपतरु क्वारमहि कंत न करहु विदेशमति॥३०॥

क्वाँर के महीने में पहले तो पवित्र पितृगण घर पर पधारते हैं। फिर 'नवदुर्गा' पक्ष में दुर्गाजी का पूजन करके, मनुष्य स्वर्ग और अपवर्ग प्राप्त करते हैं। राजा लोग, छत्र धारण करके, और पुरोहित को साथ में लेकर, पृथ्वी पूजन करते हैं। (केशवदास—पत्नी की ओर से कहते हैं कि) आकाश निर्मल हो जाता है, और जलाशय कमलों से सुशोभित हो जाते हैं। चन्द्रमा की चाँदनी से रात सुन्दर लगने लगती हैं, और रमारमन (श्रीकृष्ण) को भी रास में रुचि होने लगती है। अतः हे पतिदेव! सुंदर केलि-रूपी कल्पतरु क्वाँर के महीने में विदेश जाने की मति (विचार) न कीजिए।

८—कार्त्तिकवर्णन

वन, उपवन, जल, थल, अकाश, दीसंत दीपगन।
सुखही सुख दिन राति जुवा खेलत दंपतिजन॥
देवचरित्र विचित्र चित्र, चित्रित आंगन घर।
जगत जगत जगदीश ज्योति, जगमगत नारि नर॥
दिनदानन्हान गुनगान हरि, जनम सफल कर लीजिये।
कहि केशवदास विदेशमति कन्त न कातिक कीजिये॥३१॥

कार्त्तिक में, वन, उपवन जल, थल और आकाश सब जगह दीपक ही दीपक दिखलाई पड़ते हैं। रात-दिन सुख ही सुख दिखलाई पड़ता है और पति-पत्नी मिलकर जुआ खेलते हैं, अथवा आनंद में भरे हुए दंपति रात-दिन जुआ खेला करते हैं। देवताओं के चरित्रों के अद्भुत अद्भुत से चित्रों घरों के आंगन चित्रित रहते हैं। जगदीश की ज्योति से सारा संसार जग उठता है (क्योंकि इसी महीने में देवोत्थान होता है)। स्त्री-पुरुष सब प्रसन्न हो उठते हैं। अतः इस कार्त्तिक के दिनों दान, स्नान, और हरि गुण गान करके अपना जन्म सफल कीजिए और (केशवदास-पत्नी की ओर से कहते हैं कि) हे कंत! कार्त्तिक में विदेश जाने का विचार मत कीजिए।

९—मार्गशीर्षवर्णन

मासनमें हरिअंस कहत यासों सब कोऊ।
स्वारथ परमारथन देत भारतमँह दोऊ।
केशव सरिता सरनि फूल फूले सुगन्ध गुर।
कूजत कुल कलहंस कलित कलहंसनि के सुर॥
दिन परम नरम शीत न गरम करम करम यह पाइयतु।
करिप्राणनाथ परदेश को मारगशिर मारग न चितु॥३२॥

महीनों में इस महीने को सब लोग हरि अंश (भगवान का अंश) मानते हैं। यह महीना भारत वर्ष में, स्वार्थ तथा परमार्थ दोनों को देने वाला है। (केशवदास पत्नी की ओर से कहते हैं कि) नदियों और तालावों में सुगन्धित फूल फूलते हैं तथा सुन्दर हंस तथा हंसनियाँ मधुर-ध्वनि से कूजते हैं। इस महीने के दिन बड़े सुखदायी होते हैं। न तो बहुत ठंढे होते हैं और न बहुत गरम। बड़े भाग्य से ये दिन मिलते हैं। अतः हे प्राणनाथ! मार्ग शीर्ष में विदेश जाने का विचार न कीजिए।

१०—पूसवर्णन

शीतल, जल, थल, बसन, असन, शीतल अनरोचक।
केशवदास अकास अवनि शीतल असुमोचक॥
तेल, तूल, तामोल, तपन, तापन, नव नारी।
राज रंक सब छोंड़ि करत इनहीं अधिकारी॥
लघुद्योस दीह रजनी रवन होत दुसह दुख रूसमें।
यह मन क्रम बचन बिचारि पिय पन्थ न बूझिय पूसमें॥३३॥

इसमें शीतल जल, थल, वसन और शीतल भोजन अच्छे नहीं लगते। (केशवदास पत्नी की ओर से कहते हैं कि) आकाश और पृथ्वी मारे ठंढ के दुःखदायी हो जाते हैं। राजा से लेकर रंक तक सभी लोग सब छोड़कर इस ऋतु में तेल, रुई, पान, घाम, अग्नि, और नवीन स्त्री का ही सेवन करते हैं। दिन छोटा और रात बड़ी होती है, तथा रूटने

में असह्य दुःख होता है। अतः हे प्रियतम ! मन, कर्म, वचन से इन बातों पर विचार करके, पूस मास में, यात्रा की बात न सोचिए।

११—माघवर्णन

वन, उपवन, केकी, कपोत, कोकिल कल बोलत।
केशव भूले भ्रमर भरे, बहुभायन डोलत॥
मृगमद मलय कपूरधूर, धूसरित दशौंदिशि।
ताल, मृदंग, उमंग सुनत संगीत गीत निशि॥
खेलत वसन्त संतत सुघर, संत असंत अनंत गति।
घर नाह न छोड़िय माहमें जो मनमाहँ सनेह मति॥३४॥

माघ में मोर, कबूतर, तथा कोयलें वन तथा उपवनों में बोलते हैं। (केशवदास पत्नी की ओर से कहते हैं कि बहुत से भावों से भरे हुए भौंरे इधर-उधर घूमते हैं। दशो दिशाएं कस्तूरी, चंदन तथा कपूरधूल से भरी रहती है। लोग ताल, मृदंग, उपंग आदि बाजों पर-रात में-संगीत की ध्वनि सुना करते हैं। भले और बुरे सभी लोग अनेक प्रकार से लगातार वसंत खेलते हैं। इसलिए हे कंत ! यदि मन में तनिक भी स्नेह हो तो माघ में घर को न छोड़िए।

१२—फागुनवर्णन

लोक लाज तज राज रंक, निरशंक बिराजत।
जोइ भावत सोइ कहत, करत पुनि हँसत न लाजत॥
घरघर युवती जुवनि, जार गहि गांठनि जोरहिं।
वसन छीनि मुख मींड़ आंजि, लोचन तृण तोरहिं॥
पटवास सुवास अकास उड़ि, भूमंडल सब मंडिये।
कहि केशवदास विलासनिधि फागुन फाग न छंडिये॥३५॥

फागुन में राजा से लेकर रंक तक लज्जा छोड़कर निशंक-हो जाते हैं, और जो उनके मन को अच्छा लगता वही कहते और करते हैं।

फिर: हँसते भी हैं और लज्जित नहीं होते। घर-घर में युवती स्त्रियाँ युवकों को बलपूर्वक पकड़ कर गांठ जोड़ती हैं और कपड़े छीन कर, मुख को मसल कर और आँखों में काजल लगाकर व्यंगपूर्वक तिनके तोड़ती हैं (कि नज़र न लग जाय)। सुगन्धित चूर्ण उड़कर आकाश और पृथ्वी सबको सुशोभित करता रहता है। अतः (केशवदास पत्नी की ओर से कहते हैं कि) इस विलास निधि फागुन के फाग को न छोड़िए।

ग्यारहवां-प्रभाव

८—क्रम अलंकार

आदि अन्त भरि वर्णिये, सो क्रम केशवदास।
गणना गणना सों कहत हैं, जिन की बुद्धि प्रकास ॥१॥

'केशवदास' कहते हैं कि जहां आदि का शब्द अन्त में और अन्त का शब्द आदि में लेकर वर्णन किया जाय, वहां 'क्रम' अलंकार होता है। जो बुद्धिमान् लोग हैं, वे 'गणना' सूचक शब्दों वाले वर्णन को 'गणना' अलंकार कहते हैं।

उदाहरण—१

छप्पय

धिक्मंगन बिन गुणहिं, गुण सुधिक सुनत न रीझिय।
रीझ सुधिक बिन मौज, मौज धिक देत सुखीझिय ॥
दीबो धिक बिन सांच, सांच धिक धर्म न भावै।
धर्म सुधिक बिन दया, दया धिक अरिकहँ आवै ॥
अरि धिक चित न शालई, चित धिक जहँ न उदारमति।
मतिधिक केशव ज्ञान बिनु, ज्ञान सुधिक बिनु हरिभगति ॥२॥

बिना किसी गुण को दिखलाये हुए, योंही याचना करने को धिक्कार है। जिस गुण को सुनकर कोई न रीझे वह गुण भी धिक्कारने योग्य है। वह रीझ भी धिक्कारने योग्य है जो बिना मौज (भेंट, उपहार) की हो। उस मौज को धिक्कार है जिसे देते समय खीझ या झुंझलाहट उत्पन्न हो। उस दान को धिक्कार है, जो सत्य के लिए न हो। उस सत्य को धिक्कार है, जिसे धर्म अच्छा न लगे। उस धर्म को धिक्कार है, जो दया रहित हो। उस दया को धिक्कार है जो वैरी के ऊपर दिखलायी

जाय। उस शत्रु को धिक्कार है, जो सदा चित्त में खटकता न रहे। उस चित्त को धिक्कार है, जिसमें उदार मति का अभाव हो। ('केशवदास' कहते हैं कि) उस मति को धिक्कार है जो ज्ञान के बिना हो और उस ज्ञान को धिक्कार है जो हरि भक्ति से रहित हो।

उदाहरण—२

सवैया।

सोभति सो न सभा जहँ वृद्ध न, वृद्ध न ते जु पढ़े कछु नाहीं।
ते न पढ़े जिन साधु न साधित, दीहदया न दिपै जिनमाहीं।
सो न दया जु न धर्म धरै धर, धर्म न सो जहँ दान वृथाहीं।
दान न सो जहँ सांच न, केशव सांच न सो जु बसै छलछाहीं॥३॥

वह सभा शोभित नहीं होती, जिसमें कोई वृद्ध नहीं होता और वह वृद्ध अच्छा नहीं लगता जो कुछ पढ़ा नहीं होता। वे पढ़े-लिखे अच्छे नहीं लगते जिनके हृदय में साधु जनोचित दया दीप्तमान नहीं होती रहती वह दया नहीं, जिसके साथ धर्म न हो। वह धर्म नहीं, जहाँ दान व्यर्थ माना जाता हो। वह दान नहीं, जहाँ सत्य न हो और (केशवदास कहते हैं कि) वह सत्य नहीं जिसमें छल की छाया मात्र भी रहे।

उदारहण—३

छप्पय

तजहु जगत बिन भवन, भवन तजि तिय बिन कीनो।
तिय तजि जु न सुख देई, सुसुख तजि संपति हीनो॥
संपति तजि बिनु दान, दान तजि जहँ न विप्रमति।
विप्र तजहु बिन धर्म, धर्म तजि जहाँ न भूपति॥
तजि भूप भूमि बिन भूमि तजि, दीहदुर्ग बिनु जो बसइ।
तजि दुर्ग सुकेशवदास कवि जहाँ न जल पूरण लसइ।४।

ऐसे संसार को छोड़ दो जहाँ अपना भवन न हो और ऐसा घर छोड़ दो जो बिना स्त्री का हो। उस स्त्री को छोड़ दो जो सुख न देती हो। उस

सुख को छोड़ दो जो संपत्ति हीन हो। उस संपत्ति को छोड़ दो जो बिना दान की हो। उस दान को छोड़दो जिसमें ब्राह्मणों का आदर न हो। उस ब्राह्मण को छोड़ दो जो धर्म-रहित हो। उस धर्म को छोड़ दो जहाँ राजा न हो। उस राजा को छोड़ दो, जो भूमि रहित हो। उस भूमि को छोड़ दो, जिसमें बिना किले और परकोटे के रहना पड़े। और केशवदास कवि कहते हैं कि उस किले को छोड़ दो, जहाँ पूर्ण जल सुशोभित न होता हो।

९—गणना अलंकार

एक सूचक

दोहा

एक आत्मा, चक्र, रवि, एक शुक्रकी दृष्टि।
एकै दशन गणेशको, जानत सगरी सृष्टि ॥५॥

आत्मा, सूर्य के रथ का पहिया, शुक्राचार्य की दृष्टि, और श्रीगणेश जी का दाँत ये एक के सूचक हैः—इसको सभी जानते हैं।

दो सूचक.

दोहा

नदीकूल द्वै, रामसुत, पक्ष, खड्गकी धार।
द्वै लोचन द्विजजन्म, पद, भुज. अश्विनीकुमार ॥६॥
लेखनि डंक, भुजंगकी, रसना अयननि जानि।
गजरद मुखचुकरैंड के, कच्छाशिखा बखानि ॥७॥

नदी के किनारे, श्री रामचन्द्र जी के पुत्र, पक्ष, खड्गकी धार, नेत्र, द्विजन्म (ब्राह्मण, पक्षी, दांत आदि), चरण भुजाएं, अश्वनीकुमार, लेखनी का डंक (सेटें की कलम का मुँह जो बीच से चीर दिया जाता है), सांप की जीभ, अयन (दक्षिणायन, उत्तरायन), हाथी के दाँत दुमुंहा सांप, और कच्छ, शिखा ये दो के सूचक माने जाते हैं।

तीन सूचक

दोहा

गंगामग गंगेश दृग, ग्रीवरेख गुण लेखि।
पावक, काल, त्रिशूल, बलि, संध्या तीनि विशेखि ॥८॥
पुष्कर विक्रम राम, विधि, त्रिपुर, त्रिवेनी, वेद।
तीनिताप, परिताप, पद, ज्वरके तीनि सुखेद ॥९॥

गंगा जी के (तीन) मार्ग, श्री शिव जी के (तीन) नेत्र, गर्दन की (तीन) रेखाएं, गुण (सत्त्व रज और तम), अग्नि, काल (भूत, वर्तमान भविष्य), त्रिशूल, बलि (त्रिवली), संध्या (प्रातः, मध्यान्ह और सायं) पुष्कर (के तीन-वृद्धपुष्कर, शुद्धनाथ और ज्येष्ठ कुंड). राम (परशुराम, श्रीरामचन्द्र, और बलराम), विधि (बेदविधि, लोकविधि, कुलविधि) त्रिपुर, त्रिवेणी गंगा, यमुना, सरस्वती) वेद (ऋक, यजु, साम); ताप (दैहिक, दैविक, भौतिक), परिताप (मन परिताप, बल परिताप, वीर्य परिताप) और ज्वर के तीन (बात, पित्त, कफ) पैर-ये तीन संख्या के सूचक हैं।

चार सूचक

दोहा

वेद, वदनविधि, वारनिधि, हरिवाहन, भुज चारि।
सेना अंग, उपाय युग, आश्रम वर्ण, विचारि ॥१०॥
सुरनायक वारनरदन, केशव दिशा बखानि।
चतुर व्यूह रचना चमू, चरण, पदारथ जानि ॥११॥

'केशवदास' कहते हैं कि वेद (ऋक, यजु, साम, अथर्व), ब्रह्मा के मुख, श्रीकृष्ण के रथ के घोड़े, श्रीविष्णु की चार भुजाएं, सेना के (चार रथ हाथी, घोड़ा, पैदल) अंग, उपाय (साम, दाम, दंड, भेद) युग (सतयुग, त्रेता, द्वापर- कलियुग) आश्रम (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास), वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र), इन्द्र के हाथी-ऐरावत-के

दांत, दिशाएँ (पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण), सेना की चार (शकट, क्रौंच धनुष, चक्र) प्रकार की रचना, चरण (छंद के) और पदार्थ (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) ये चार संख्या के सूचक हैं।

पाँच सूचक

दोहा

पंडु पूत, इंद्रिय, कवल, रुद्र वदन, गति, बाण।
लक्षण पंच पुराणके, पंच अंग अरु प्राण ॥१२॥
पंचवर्ग तरु पंच अरु, पंच शब्द परमान।
पंच संधि पंचाग्नि भनि, कन्या पंच समान ॥१३॥
पंचभूत पातक प्रकट, पंचयज्ञ जिय जानि।
पंचगव्य, माता, पिता, पंचामृतन बखानि ॥१४॥

पाण्डु के पुत्र, इंद्रियां (५ कर्म- ५ ज्ञान), कवल (भोजन के आरम्भ के पांच कौर), श्री शङ्कर जी के मुख, गति (सालोक्य, सामिप्य, सारुप्य, सायुज्य, सारिष्ट), बाण, पुराण के पांच (सृष्टि की उत्पति, प्रलय देवताओं की उत्पति और वंशपरम्परा, मन्वन्तर और मनुवंश का विस्तार वर्णन) लक्षण, पंचाङ्ग (तिथि, वार, नक्षत्र, योग और करण), पंच (प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान) प्राण, पंच (क, च, ट, त, और प) वर्ग, पंच (मंदार, पारिजात, संतान, कल्पवृक्ष और हरि चंदन) तरु. पंच (सूत्र, वार्तिक, भाष्य, कोश और कवि प्रयोग) शब्द. पंच (स्वर, व्यंजन. विसर्ग, स्वादि और प्रकृतिभाव) संधि, पंच (अन्वहार्य, पचन, गार्हपत्य, आहवनीय और सभ्य) अग्नि, पंच (अहल्या द्रौपदी, कुंती, तारा और मंदोदरी) कन्या, पंच (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश) भूत, पातक (ब्रह्महत्या, सुरापान, स्वर्ण चोरी, गुरु शय्या गमन और इनका संग), पंच (ब्रह्म, देव, पितृ, भूत और नर) यज्ञ, पंच (दूध, दहीं. घी, गोबर. और मूत्र) गव्य, पंच (जननी, गुरुपत्नी, राजपत्नी, सास और मित्र-पत्नी) माता, पंच (जनक, यज्ञोपवीतदाता,

ससुर, अन्नदाता और भयत्राता)पिता और पंच (दूध, दही घी. मधु और मिश्री) अमृत—ये पांच की संख्या के सूचक हैं ।

छः सूचक

दोहा

कुलिश कोन षट, तर्क षट्, दरशन, रस, ऋतु अंग।
चक्रवर्ति शिवपुत्रमुख, मुनि षट्राग प्रसंग ॥१५॥
षट्माता षट्वदनकी, षट्गुण बरणहु मित्त।
आततायि नर षट् गनहु, षट्पद मधुप कवित्त ॥१६॥

कुलिश (वज्र) के छः कोण, षट् (वेदान्त, सांख्य पातंजलि, न्याय, मीमासा और वैशेषिक) तर्क षट (वैष्णव, ब्राह्मण, योगी, संन्यासी, जंगम और सेवरा) दर्शन षट् (खट्टा, मीठा, नमकीन, कड़ु, अम्ल. और कसैला), रस, षट् (वसंत, ग्रीष्म, पावस, शरद, हेमन्त, और शिशिर) ऋतु षट (शिक्षा कल्प, व्याकरण, निरुक्त छन्द और ज्योतिष) वेदाङ्ग, षट (वेणु, बलि धंधुमार अजपाल, प्रवर्तक और मानधाता) चक्रवर्ती, श्री शङ्कर जी के पुत्र श्री स्वामी कार्त्तिकय जी के मुख. षट (भैरव, मालकौस, हिंडोल, दीपक, श्री और मेघ) राग, षटमाता (कृतिका नक्षत्र के छः तारे), षट (संधि, विग्रह, मान, आसन, द्वैधीभाव और संश्रय) गुण, षट (आग लगाने वाला, विष देने वाला, शस्त्र चलाने वाला, धन छीनने वाला, खेत छीनने वाला, और स्त्री हरने वाला) आततायी, षट पद (भौंरे के छः चरण) और कवित्त अर्थात् छन्द (छप्पय) के छः चरण—इन्हें छः की संख्या का सूचक समझना चाहिए ।

सात सूचक

दोहा

सात रसातल, लोक, मुनि, द्वीप, सूरहय, वार।
सागर, सुर, गिरि, ताल, तरु, अन्न ईति करतार ॥१७॥
सात छंद, सातौ पुरी, सात त्वचा, सुख सात।
चिरंजीवि ऋषि, सात नर, सप्तमातृका, धात ॥१८॥

सात रसातल (तल, अतल, वितल, सुतल, तलातल, रसातल, और पाताल), लोक (भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः और सत्य) मुनि (मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वशिष्ठ), द्वीप (जम्बू, लेच्च, शाल्मलि, कुश, कौंच, शाक और पुष्कर), सूर्य के घोड़े वार, समुद्र (क्षीर, क्षार, दधि, मधु. घृत, सुरा, और इक्षु). स्वर (स, रे, ग, म, प, ध, नि), पर्वत (मेरु, हिमालय, उदयाचल; विंध्य, लोकालोक, गन्ध मादन और कैलाश), ताल (चार मेरु पर्वत पर और मानसर, विन्ध्यसर और पंपासर), वृक्ष (स्वर्ग के पांच वृक्ष और, अक्षय-वट तथा कैलाशवट,), अन्न (गेहूं, यव, धान, चना, उर्द, मूंग, और अरहर), ईतियां (अति वृष्टि, अनावृष्टि, मूषक, शुक, शलभ, स्वचक्र, और परचक्र), करतार (श्रीब्रह्मा, श्री विष्णु, श्रीशिव, प्रकृति, सत्व, रज और तम) सात (गायत्री उष्णिक, अनुष्टुप वृहती, पंक्ति त्रिष्टुप, और जगती पुरी (अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, कांची, अवन्तिका और द्वारका), सात प्रकार की त्वचा, सुख खान. पान, परिधान, ज्ञान, गान, शोभा, और संयोग), चिरंजीव (अश्वत्थामा, बलि; व्यास, हनुमान, विभीषण, कृपाचार्य और परशुराम). ऋषि (कश्यप, जमदग्नि, विश्वामित्र; वशिष्ठ भारद्वाज, और गौतम), सात (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, अन्त्यज और यवन) नर, सात (ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी और चामुण्डा) मातृकाएं, और सात (रस, रक्त मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और वीर्य) धातुएं—ये सात संख्या के सूचक माने जाते हैं। **आठ सूचक**

दोहा

योगअंग, दिगपाल, वसु, सिद्धि, कुलाचल चारु।
अष्टकुली अहि, व्याकरण, दिग्गज. तरुनि विचारु ॥१९॥

योग के (यम, नियम आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि) आठ अंग, दिग्पाल (इन्द्र, अग्नि यम नैऋत, वरुण,

वायु, कुवेर और ईशान), वसु (जल, ध्रुव, सोम, धरा, अनिल, अग्नि, प्रत्यूष और प्रभाव), सिद्धि (अणिमा महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्रकाम्य और ईशित्व), कुलाचल (हिम, मलय, महेन्द्र, सह्य, शुक्ति, ऋक्ष, विन्ध्य और पारियात्र), साँपों के (तक्षक, महापद्म, शंख, कुलिक, कंबल, अश्वतर धृतराष्ट्र और बलाहक) आठ कुल, आठ (इन्द्र, चन्द्र, गार्ग्य, साकल्य, शाकटायन, कात्यायन जैनेन्द्र और पाणिनि) व्याकरण, दिग्गज (ऐरावत पुंडरीक, बामन, कुमुद, अंजन, पुष्पदंत, सार्वभौम और सुप्रतीक), और आठ (स्वाधीन पतिका, उत्कंठिता, बासक सज्जा, कलहंतरिता खंडिता, प्रोषित पतिका, विप्रलब्धा और अभिसारिका) नायिकाएं—ये आठ संख्या के सूचक माने जाते हैं।

नौ सूचक

दोहा

अंगद्वार, भूखण्ड, रस, बाघिनिकुच, निधि जानि।
सुधाकुण्ड, ग्रह, नाड़िका, नवधा भक्ति बखानि ॥२०॥

अंग द्वार (शरीर के नौ छिद्र), भूखण्ड (पृथ्वी के इलावर्त, कुरु, हरि, किंपुरुष, भरत, केतुमाल, भद्राश्व और हिरण्य-नौखंड) रस (काव्य के शृंगार वीर करुण हास्य भयानक बीभत्स, अद्भुत, रौद्र और शान्त) बाघिन के कुच नौ निधियाँ (पद्म, शंख महापद्म, मकर, कच्छप, मुकुंद, कुंद, नील और खर्व), सुधा के नौ कुंड, नौग्रह, नौ (इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, गंधारी, पूषा, गजजिह्वा, पयाद, शनि और शंखिनी), शरीर की नाड़ियां और नौ (श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य और आत्म निवेदन) भक्तियां ये नौ संख्या के सूचक बतलाये गये हैं।

दश सूचक

दोहा

रावणशिर, श्रीराम के, दश अवतार बखान।
बिश्वेदेवा, दोष दश, दिशा, दशा, दश जान ॥२१॥

रावण के शिर, श्रीरांम (श्रीविष्णु) के दश अवतार, विश्वेदेवा और दोष (चोरी, जुआ, अज्ञानता, कायरता, गूंगापन, कुरूपता, अंधापन, लंगड़ापन, बहरापन, और क्लीवता) ये दश संख्या के सूचक हैं।

उदाहरण (१)

कवित्त

एक थल थित पै बसत प्रति जन जीव,
द्विकर पै देश देश कर को धरनु है।
त्रिगुन कलित बहु बलित ललित गुन,
गुनिन के गुनतरु फलित करनु है।
चार ही पदारथ को लोभ चित नित नित,
दीबे को पदारथ समूह को परनु है।
'केशोदास' इन्द्रजीत भूतल अभूत, पंच,
भूत की प्रभूत भवभूति को शरनु है ॥२२॥

वह एक स्थान पर रहते हैं, परन्तु प्रत्येक मनुष्य के हृदय में निवास करते हैं। वह हैं तो दो हाथ वाले, परन्तु देश-देश के निवासियों के हाथों को पकड़े हुए हैं अर्थात् सहारा दिए हुए है अथवा रक्षक है या देश-देश के राजाओं से कर लेते हैं। वह तीन गुण (सत्व, रज और तम) से सम्पन्न होने पर भी बहुत से सुन्दर गुणों से युक्त हैं और गुणवानों के गुणरूपी वृक्षों को फलित करने वाले हैं। उनके मन में चार (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) पदार्थों का ही लोभ नित्य रहता है, परन्तु पदार्थों के समूह को देने का प्रण किए हुए हैं। 'केशवदास' कहते हैं कि राजा इन्द्रजीत इस पृथ्वी के अभूतपूर्व राजा है, वह हैं तो पंचभूतों से उत्पन्न परन्तु सारे संसार को शरण देने वाले हैं।

उदाहरण—२

कवित्त

दरशै न सुर से नरेश सिरनावैं नित,
षट दर्शन ही को सिर नाइयतु है।
'केशौदास' पुरी पुर-पुंजन के पालक पै,
सात ही पुरी सों पूरो प्रेम पाइयुत है।
नायिका अनेकन को नायक नगर नव,
अष्ट नायिकान ही सों मन लाइयतु है।
नवधाई हरि को भजन इन्द्रजीत जू को,
दश अवतार ही को गुन गाइयतु है ॥२३॥

देवता जैसे अनेक राजाओं के नित्य शिर झुकाने पर भी दरशन नहीं देते अर्थात् उनकी ओर देखते तक नहीं और केवल षट दर्शनों ही को सिर झुकाते हैं। 'केशवदास' कहते हैं कि वह अनेक पुरी और नगरों के पालक होने पर भी केवल सात पुरियों से ही पूर्ण प्रेम रखते हैं। वह अनेक नायिकाओं के चतुर और युवा नायक होने पर भी, केवल आठ प्रकार की नायिकाओं से ही मन लगाते हैं। राजा इन्द्रजीत भगवान् का भजन नौ प्रकार की भक्तियों से ही करते हैं, और दशो अवतारों का ही गुण गाते हैं।

१०—आशिषालंकार

दोहा

मातु, पिता, गुरु, देव, मुनि, कहत जु कछु सुख पाय।
ताही सों सब कहत हैं, आशिष कवि कविराय ॥२४॥

माता, पिता; गुरु, देव और मुनि प्रसन्न होकर जो वचन कहते हैं, उसी को समस्त कवि तथा कविराज आशिष कहते हैं।

उदाहरण

कवित्त

मलय मिलित बास, कुंकुम कलित, युत,
जावक, कुसुम नख पूजित, ललित कर।
जटित जराय की जंजीर बीच नील मणि,
लागि रहे लोकन के नैन, मानो मनहर।

हय पर, गय पर, पलिका सुपीठ पर,
अरि उर पर, अवनीशन के शीश पर।
चिरु चिरु सोहौ रामचन्द्र के चरण युग,
दीबो करैं 'केशौदास' आशिष अशेष नर ॥२५॥

चंदन की सुगन्ध से मिले हुए, कुंकुम और महावर से युक्त और फूलों से पूजित, जिनके नख हैं और जिनकी सुन्दर शोभा है। (उन चरणों में) रत्नों से जड़ी हुई जंजीर पहने हैं जिसके बीच बीच में नीलमणि जड़े हुए ऐसे प्रतीत होते हैं, मानोलोगों की आँखें हैं। 'केशवदास' जहते हैं कि अनेक मनुष्य सदा यही आशीर्वाद दिया करते हैं कि श्रीरामचन्द्र के दोनों चरण हाथी, घोड़े, पलंग, आसन, शत्रु हृदय तथा राजाओं के शिरों पर चिर काल तक शोभित होते रहें।

उदाहरण—२

सवैया।

होयधौं कोऊ चराचर मध्य में, उत्तम जाति अनुत्तमहीको।
किन्नर कै नर नारि विचार कि बास करै थलकै जलहीको॥
अंगी अनंग कि मूढ़ अमूढ़ उदास अमीत कि मीत सहीको।
सो अथवै कि कहूँ जनि केशव जाके उदोत उदो सबहीको॥२६॥

चाहे वह चराचर में कोई भी हो, उत्तम जाति का हो या निकृष्ट जाति का। चाहे किन्नर हो, चाहे मनुष्य अथवा स्त्री। चाहे स्थल पर रहता हो, चाहे जल में। चाहे शरीरधारी हो या अंग रहित हो। चाहे मूर्ख हो या बुद्धिमान् हो। उदासीन हो शत्रु हो अथवा मित्र हो केशव दास कहते हैं कि जिसके प्रकाश से सब प्रकाशित हैं वह कहीं भी अस्त न हो।

११—प्रेमालंकार

कपट निपट मिटिजाय जहँ, उपजै पूरण क्षेम।
ताहीसों सब कहत हैं, केशव उत्तम प्रेम॥२७॥

जहाँ कपट बिलकुल दूर हो जाय और पूर्ण रूप से मंगल कामना के भाव उत्पन्न हो उसको (केशवदास कहते हैं कि) सब लोग उत्तम 'प्रेमालंकार' कहते हैं।

जहाँ कपट बिलकुल दूर हो जाय और पूर्णरूप से मंगल कामना के भाव उत्पन्न हों, उसको (केशवदास कहते हैं कि) सब लोग उत्तम 'प्रेमालंकार' कहते हैं।

उदाहरण

सवैया

कछु बात सुनै सपनेहूं वियोग की, होन चहै दुइ टूक हियो।
मिलिखेलिये जा सँगबालकतैं, कहि तासों अबोलो क्यों जातकियो॥
कहिये कह केशव नैननसों, बिन काजहि पावकपुंज पियो।
सखि तूं बरजै अरु लोग हँसैं सब, काहेको प्रेमको नेमलियो॥२८॥

वियोग की तनिक सी भी चर्चा सपने में भी सुनने पर, मेरा हृदय दो टुकड़े होना चाहता है। जिसके साथ बालकपन से मिल-जुल कर खेलती रही, उससे चुप होकर रहना कैसे बन सकता है। (केशवदास-सखी की ओर से कहते हैं कि) इन आँखों को मैं क्या कहूँ जो (उन्हें बिना देखे) आग सी पिये रहते हैं अर्थात् जलते रहते हैं। हे सखी! इधर तू तो मना करती है (कि उससे मत बोला कर) और उधर लोग हँसते हैं और कहते हैं कि फिर तूने प्रेम का नियम क्यों लिया?'

उदाहरण

दो अर्थ का श्लेष

कवित्त

धरत धरणि, ईश शीश चरणोदकनि,
गावत चतुर मुख सब सुख दानिये।
कोमल अमल पद कमला कर कमल,
लालित, बलित गुण, क्यों न उर आनिये।
हिरणकशिपु दानकारी प्रहलाद हित,
द्विज पद उरधारी वेदन बखानिये।
'केशोदास' दारिद दुरद के बिदारबे को,
एकै नरसिंह कै अमरसिंह जानिये॥३०॥

पहला अर्थ

श्री नृसिह पक्ष में

वह पृथ्वी को धारण करते हैं, उनके चरणोदक को श्री शंकर जी अपने शिर पर लेते हैं। उनका यश ब्रह्मा जी गाते हैं और वह सब सुखों को देने वाले हैं अथवा ब्रह्मा जी उन्हें 'सर्व सुखदाता' कहकर उनकी प्रशंसा करते हैं। जिनके कोमल और निर्मल चरण श्री लक्ष्मी जी के कर-कमलों द्वारा सेवित हैं। जो गुणों से युक्त हैं। उन्हें हृदय में क्यों स्थान नहीं देते ? अथवा उन्हें हृदय में स्थान क्यों न दिया जाय। जो हिरण कशिपु को मारने वाले तथा प्रहलाद के हितकर्त्ता हैं, ब्राह्मण (भृगु) के चरण को छाती पर धारण करने वाले हैं तथा वेदों में जिनकी प्रशंसा है। 'केशवदास' कहते हैं कि दरिद्र रूपी हाथी को मारने के लिए एक नृसिंह को अथवा राजा अमरसिंह को समर्थ समझना चाहिए।

दूसरा अर्थ

(अमरसिंह पक्ष में)

पृथ्वी के बड़े बड़े राजा जिनका चरणोदक अपने शिर पर धारण करते हैं, तथा जिन्हें लोग सुखदाता बतलाते हुए चारों ओर प्रशंसा करते हैं। जिनके कोमल तथा स्वच्छ चरण, सुन्दर स्त्रियों के हाथों से सेवित होते हैं, जो अनेक गुणों से युक्त हैं। उन्हें अपने हृदय में क्यों न स्थान दिया जाय। जो सोने की शैय्या के दान करने वाले हैं और महा आनन्द के हितू हैं। जो ब्राह्मण के चरण को हृदय में रखते हैं अर्थात् उसका आदर करते हैं) और जो वेदों की व्याख्या करने वाले हैं। अतः (केशवदास कहते हैं कि) दारिद्रयरूपी हाथी को मारने के लिए एक नृसिह अथवा राजा अमरसिंह ही को समर्थ मानना चाहिए।

तीन अर्थ का श्लेष

कवित्त

परम विरोधी अविरोधी ह्वै रहत सब
दानिन के दानि, कवि केशव प्रमान है।
अधिक अनन्त आप, सोहत अनन्त संग,
अशरण शरण, निरत्तक निधान है।
हुतभुक, हित मति, श्रीपति बसत हिय,
गावत है गंगाजल, जग को निदान है।
'केशौराय' की सौं कहैं 'केशौदास देखि देखि,
रुद्र की समुद्र की अमरसिंह रान है॥३१॥

पहला अर्थ

श्रीरुद्र पक्ष में

जिनके यहाँ परम विरोधी (सिंह, बैल, सांप मोर, चूहा-साँप, और अग्नि-जल) जीव और पदार्थ अविरोधी होकर (परस्पर प्रेम पूर्वक) रहते हं। जो दानियों को दान देने वाले हैं अर्थात् देवताओं को भी वरदान देते हैं और जो केशव (श्रीनारायण) के सच्चे कवि हैं अर्थात् उनका गुण गान करते हैं। जो स्वयं अनन्त से अधिक (बड़े) हैं, परन्तु अनन्त (शेष नाग) के साथ रहते हैं। जो शरण हीनों की शरण हैं तथा अरक्षित जीवों के लिए (सुख के) निधान हैं। अग्नि के हित पर जिनकी बुद्धि रहती हैं अर्थात् जिन्हें यज्ञादि अच्छे लगते हैं और जिनके हृदय में श्रीपति (श्रीविष्णु) रहते हैं जिन्हें गंगाजल अच्छा लगता है तथा जो संसार के जीवों की शरण हैं। ईश्वर की शपथ, केशवदास देख देखकर कहता है कि यह रुद्र है, समुद्र है या अमर सिंह राना हैं।

दूसरा अर्थ
समुद्र पक्ष में

जहाँ पर परम विरोधी (विष, वारुणी, सुधा आदि) भी अविरोधी होकर रहते हैं । जो दानियों (श्री लक्ष्मी जी, कल्पवृक्ष कामधेनु आदि मन चाही वस्तुओं को देने वालों) का भी दानी है अर्थात् उत्पन्न करने वाला है। जिसके सच्चे कवि (प्रशंसक) स्वयं केशव (श्रीनारायण भगवान्) हैं । जो स्वयं अधिक अनन्त है और जिसके साथ अनन्त (शेषनाग जी) रहते हैं। जो शरण विहीनों (मैनाक, वड़वाग्नि) को शरण देता है और जो अरक्षित जल का भंडार है। जो बड़वाग्नि का मित्र है और जिसके हृदय में श्रीनारायण भगवान् निवास करते हैं। जिसे गंगाजल अच्छा लगता है और जो संसार की उत्पति का आदि कारण है। अतः ईश्वर की शपथ, केशवदास देख देखकर कहते हैं कि यह रुद्र है या समुद्र है या राणा अमरसिंह है।

तीसरा अथ
राणाअमरसिंह पक्ष में

जिनके यहाँ परम विरोधी (शत्रु गण भी (उनके प्रभाव के कारण) अविरोधी (मित्र बनकर) रहते हैं। जो केशव (श्रीनारायण भगवान) के गुणों का कवि की तरह वर्णन करते हैं और जो प्रकृष्ट अर्थात् अधिक मान वाले हैं। जो दानियों के भी दानी है अर्थात् इतना दान करते हैं कि याचक भी दानी बनकर दान देने लगते हैं। जो स्वयं अधिक अनंत (गंभीर) है (क्योंकि उनका कोई भेद नहीं पा सकता) और अनन्त (असंख्य) मनुष्यों के साथ रहते हैं। जो शरण विहीनों को शरण देते हैं और अरक्षित पुरुषों के लिए रक्षा का भंडार हैं। जो यज्ञादि में मन लगाते हैं. जिनके हृदय में श्रीनारायण का निवास रहता है अर्थात् जो ईश्वर भक्त हैं और जिन्हें गंगाजल प्रिय है तथा सारे संसार के लोगों के पूज्य हैं। ईश्वर की शपथ, केशवदास देख देखकर कहते हैं कि यह रुद्र है या समुद्र है या राणा अमरसिंह हैं।

चार अर्थ का श्लेष

कवित्त

दानवारि सुखद, जनक जातनानुसारि,
करषत धनु गुन सरस सुहाये हैं।
नरदेव क्षयकर करम हरन, खर.
दूषन के दूषन सु केशौदास गाये हैं।
नागधर प्रियमानि, लोकमाता सुखदानि,
सोदर सहायक नवल गुन गाये हैं।
ऐसे राजा राम, बलराम, कै परशुराम,
कैधों हैं अमरसिंह मेरे उर आये हैं ॥३२॥

पहला अर्थ

श्रीराम चन्द्र पक्ष

जो दानवों के वैरी इन्द्र को सुख देने वाले हैं, जो राजा जनक की यातना (मानसिक पीड़ा, चिन्ता) का विचार कर धनुष की प्रत्यंचा को खींचते समय अत्यन्त सुशोभित हुए। जो मनुष्य तथा देवताओं का नाशक रावण के कर्मो को हरने वाले और खर-दूषण राक्षसों को मारने वाले हैं। 'केशव' कहते हैं कि उनके गुणानुवाद उनके दासों (भक्तों) द्वारा गाये गये हैं। जो नागधर (श्रीशंकर जी) को प्रिय मानते हैं, और लोक माता श्रों लक्ष्मी जी को सुख देने वाले हैं। जिनके सगे भाई (भरत, लक्ष्मण, शत्रुघन) सदा सहायक हुए और जिनके सुन्दर गुणों का सबने वर्णन किया हैं। ऐसे गुणों वाले राजा रामचन्द्र हैं या बलराम जी हैं, या परशुराम जी हैं या राजा अमरसिंह हैं जो मेरे मन को अच्छे लगते हैं। 'दूसरा अर्थ

श्रीबलराम पक्ष

जो दानवारि (श्रीकृष्ण) को सुख देने वाले और जनक (पिता) की यातना को दूर करने के लिए, अनुकूल आचरण करने वाले हैं।

जो गौओं को आकर्षित करते हैं अर्थात् गौएं उनके पीछे पीछे घूमती फिरती हैं और जो सुन्दर गुणों से भूषित हैं बड़े बड़ राजाओं को परास्त करने वाले या दुष्ट राजाओं को मारने वाले हैं। जो पाप कर्मों को हरने वाले और खर (गदहे का रूप रखकर आने वाले धेनुक राक्षस) को मारने वाले हैं तथा 'केशव' कहते हैं जिनका यश दासों (भक्तों) ने गाया है। जिन्हें नाग का शरीर प्रिय है (क्योंकि प्रभास क्षेत्र में सांप का रूप रखकर समुद्र में गये थे) और जो लोग-माता यशोदा, रोहिणी आदि को सुख देने वाले हैं। जो अपने भाई (श्रीकृष्ण) के (कुबलया और कंस बध आदि कार्यों में सहायक हैं, जो सदा नवल वय के और मन को अच्छे लगने वाले हैं। ऐसे या तो राजा रामचन्द्र हैं, या श्रीबलराम जी हैं, या श्री परशुराम जी है या राजा अमरसिंह हैं।

तीसरा अर्थ

परशुराम पक्ष

जिन्हें दान वारि (दान देते समय संकल्प का जल) सुख देता है अर्थात जिन्हें दान देने में बड़ा आनन्द मिलता है। अपने जनक (जमदग्नि) की पीड़ा (कष्ट) का अनुसरण करके जो धनुष की प्रत्यंता खींचते हुए, तत्कालीन (रौद्र) रस से सुशोभित लगते थे। जो अनेक राजाओं को मारने वाले कर्मों (पाप कर्मों) के हरने वाले हैं। जो बड़े बड़े दोषों के नाशक हैं और केशव कहते हैं कि उनके दासों ने उनकी प्रशंसा इसी प्रकार की हैं। जिन्हें नागधर (श्री शंकर जी) प्रिय मानते हैं और जो लोक-माता श्री पार्वती को (अपने गुणों से सुख देने वाले हैं। जिनका सहायक कोई सगा भाई न था और अपने बल के भरोसे रहने के कारण ही जिनकी प्रशंसा की जाती है। ऐसे श्री परशुराम जी हैं, जो मेरे मन को अच्छे लगते हैं।

चौथा अर्थ

राजा अमरसिंह पक्ष

जो दानवों के बैरी देवताओं को (यज्ञ, पूजा-पाठ-आदि से) सुख देते हैं और नीच पुरुषों के अनुकूल नही चलते। धनुष की डोरी खींचते समय बहुत ही अच्छे लगते हैं। जो नर-देव (ब्राह्मणों) के लिए क्षयकर (हानि पहुँचाने वाले) कर्म (कार्य) हैं, उन्हें हर लेते हैं अर्थात् उनको हानि करने वाले कार्यों को नहीं होने देते। 'केशव कहते हैं कि जो खर दूषण को मारने वाले श्री रामचन्द्र के दास हैं। जो नाग-धर (हाथियों को पकड़ने वाले) भीलों को प्रिय मानते हैं। अपनी माता को सुख देने वाले हैं। प्रजा को भाई के समान सहायता देने वाले तथा नवल गुणों से भूषित हैं, जिनकी सभी प्रशंसा करते हैं। ऐसे राजा अमरसिंह हैं जो मेरे मन को अच्छे लगते है।

पाँच अर्थ का श्लेष

कवित्त

भावत परम हंस, जात गुण सुनि सुख,
पावत संगीत मीत विबुध बखानिये।
सुखद सकति घर समर सनेही बहु,
बदन विदित यश 'केशौदास' गानिये।
राजै द्विज राज पद भूषन विमल कम—
लासन प्रकास परदार प्रिय मानिये।
ऐसे लोकनाथ कै त्रिलोकनाथ नाथ नाथ,
कैधौं रघुनाथ कै अमरसिंह जानिये ॥७३॥

पहला अर्थ

ब्रह्मा जी के पक्ष में

जिन्हें परम् अर्थात् श्रीनारायण भगवान् अच्छे लगते हैं तथा जिन्हें हंस प्रिय है (क्योंकि उनका वाहन है) और जो जात अर्थात्

मानसिक पुत्रों के गुणों (शास्त्र संबंधी वाद विवाद आदि) को सुन कर सुख पाते हैं। अथवा जो हंसावतार श्रीनारायण और अपने मानसिक पुत्रों के गुणों को सुनकर सुखी होते हैं। संगीत (साम वेद आदि) के मित्र हैं और जो विशेष बुद्धिमान कहे जाते हैं अथवा जिनकी प्रशंसा विबुध (देवता) गण करते हैं। सुख देने वाली शक्ति (श्रीसरस्वती जी) के घर हैं, और कामदेव के स्नेही अर्थात् सखा हैं तथा बहुत मुख वाले हैं। उनका यश सभी को विदित है और वह 'केशव' (श्रीनारायण भगवान्) के दास हैं, इसलिए उनके गुण गाया करते हैं। उनके सुन्दर चरण द्विजराज (पक्षियों के राजा-हंस) पर सुशोभित होते हैं और उनका आसन कमल है और जिन्हें ब्रह्माणी जी प्रिय हैं। ऐसे श्री ब्रह्मा जी हैं।

दूसरा अर्थ

त्रिलोकनाथ श्रीकृष्ण के पक्ष में

जिन्हें हंस-जात (सूर्य से उत्पन्न) यमुना जी परम प्यारी लगती हैं, इसीलिए उनके गुणों को सुनकर उन्हें सुख मिलता है। वह संगीत के मित्र हैं तथा देवतागण उनकी प्रशंसा करते हैं। जो सुखदायिनी शक्ति श्रीराधिका जी के साथ रहने वाले हैं और कामदेव के मित्र हैं। जिन्होंने रास रचते समय बहुत से शरीर धारण किये थे, यह बात सभी लोगों को विदित है 'केशव' कहते हैं कि जिनका यश दास भक्त लोग) बखानते रहते हैं। अथवा 'केशवदास' कहते हैं कि उनके विदित यश का वर्णन अनेक मुखों द्वारा होता रहता है। जिनके हृदय पर द्विजराज (ब्राह्मण वर) भृगु का चरण सुन्दर भूषणवत् सुशोभित होता है। जो श्रेष्ठ नारियों के प्रत्यक्ष साथी हैं और जिन्हें परनारियां प्रिय हैं। इन गुणों से युक्त त्रिलोक नाथ श्रीकृष्ण को समझना चाहिए।

तीसरा अर्थ

नाथ-नाथ श्रीशंकर जी के पक्ष में

जो प्रभायुक्त और परमहंस की भाँति रहते हैं और फिर भी अपने पुत्र (श्रीगणेश अथवा कार्त्तिकेय) की कीर्त्ति को सुनकर सुख पाते हैं। जो संगीत के मित्र हैं तथा देवता लोग जिनकी प्रशंसा करते हैं। जो सुखदायिनी शक्ति (श्रीपार्वती जी) के साथ रहते हैं और शरीर धारण के कष्टों से छुड़ाने के कारण कामदेव के स्नेही हैं। जो अनेक मुख वाले हैं। जो दास रूप से भगवान् नारायण के यश को गाते रहते हैं। जिनके शिरपर द्वितीया का चन्द्रमा सुशोभित होता है। जो कमलासन या पद्मासन लगाकर बैठते हैं और श्रीलक्ष्मी जी के प्रिय हैं। इन गुणों से युक्त श्रीशंकर जी को मानना चाहिए।

चौथा अर्थ

श्री रघुनाथ पक्ष में

जिन्हें परम हंस-समूह (महात्मा गण) बड़े अच्छे लगते हैं और जो उनकी प्रशंसा सुनकर सुख पाते हैं। जिन्हें संगीत अच्छा लगता है तथा जिनकी देवतागण प्रशंसा किया करते हैं। जो सुख देने वाली शक्ति (श्रीसीता जी) के साथ रहते हैं और जो युद्ध प्रेमी हैं। बहु-वदन (अनेक मुख वाले) रावण को मारने के कारण जिनका यश सभी को विदित है और 'केशव' कहते हैं कि 'दास' अर्थात् भक्त जिनका यश गाते हैं। जिनके साथ द्विजराज (चन्द्र) पद (शब्द) सुशोभित होता है (अर्थात् रामचन्द्र कहलाते हैं)। जो स्वच्छ, चमकीले भूषणों से सुशोभित हैं और परदार (उत्कृष्ट दारा श्रीसीता जी) के प्यारे हैं। ऐसे गुणों से युक्त श्रीरघुनाथ जी को समझना चाहिए।

पाँचवां अर्थ

श्रीराजा अमरसिंह के पक्ष में

जिन्हें परम (श्रीशङ्कर भगवान् एकलिङ्ग) अच्छे लगते हैं और हंसजात अर्थात् सूर्यवंश के गुणों को सुनकर जिन्हें सुख मिलता है।

जो संगीत प्रिय हैं तथा बड़े बुद्धिमान कहे जातें हैं जो सुन्दर शक्ति (बर्छी) के धारणकर्त्ता हैं अर्थात् भाला चलाने में निपुण हैं। जो युद्ध-प्रिय हैं। जिनके यश का वर्णन बहुत से लोग करतें हैं और केशवदास भी करते हैं। जो ब्राह्मणों के चरणों को स्वच्छ भूषण मानते हैं अर्थात् उनके भक्त हैं। जो लक्ष्मीवान और परदार (शत्रु की भूमि) को प्यार करने वाले अथवा लेने की इच्छा रखने वाले हैं। ऐसे गुणों से युक्त राणा अमरसिंह को समझना चाहिए।

श्लेष अलंकार के भेद

दोहा

तिनमें एक अभिन्न पद. और भिन्नपद जानि।
श्लेष सुबुद्धि दुवेष के, केशवदास बखानि ॥३४॥

'केशवदास' कहते हैं कि हे सुबुद्धि पाठक! श्लेष अलंकार दो तरह के होते हैं। उनमें से एक 'अभिन्नपद' कहलाता है और दूसरा 'भिन्नपद' कहलाता है।

उदाहरण

अभिन्नपद

कवित्त

सोहति सुकेशी मंजुघोषा रति उर बसी,
राजाराम मोहिबे को सूरति सोहाई है।
कलरव कलित सुरभि राग रंग युत,
बदन कमल षटपद छवि छाई है।
भृकुटी कुटिल धनु, लोचन कटाक्ष शर,
भेदियत तन मन अति सुखदाई है।
प्रमुदित पयोधर दामिनी सी नाथ साथ,
काम की सी सेना काम सेना बनि आई है ॥३५॥

काम सेना वेश्या कामदेव की सेना के समान ही बनकर आई है। क्योंकि जिस कामदेव की सेना में सुकेशी, मंजुघोषा, रति, तथा उरवसी जैसी सुन्दरियाँ रहती हैं, उसी प्रकार कामसेना भी सुकेशी (सुन्दर वाले वाली) मंजुघोषा (मधुर बोलने वाली , रति के समय हृदय में बसने वाली है। जिस प्रकार काम की सेना देखने में सुन्दर लगती है, उसी प्रकार कामसेना वेश्या की भी सुहावनी मूर्त्ति है। जिस प्रकार कामदेव की सेना सुन्दर स्वर और रागरंग से युक्त रहती है, उसी प्रकार यह कामसेना वेश्या मी सुन्दर स्वरवाली और सुगंध तथा रागरंग से युक्त रहती है। काम की सेना का जिस प्रकार बदन कमल है, उसी प्रकार इसका मुख भी कमल के समान है। जैसे काम की सेना में भौंरे गुँजारते हैं वैसे इसके मुख कमल पर भी भौंरे मंडराते हैं। जिस प्रकार काम की सेना में टेढ़ी भौहें, टेढ़े धनुष का काम करती हैं और आँखों की तिरछी दृष्टि बाण के समान शरीर को भेद डालते हैं, उसी प्रकार इस काम सेना वेश्या की टेढ़ी भौहें तथा आँखों की तिरछी दृष्टि धनुष-बाण का काम देती हुई शरीर को भेद डालती हैं। कामदेव की सेना जिस प्रकार तन और मन को सुख देने वाली होती है, उसी प्रकार यह कामसेना वेश्या भी शरीर और मन को सुख दायिनी है। काम की सेना में जिस प्रकार उन्नतकुच और दामिनी जैसी नायिकाएँ होती हैं उसी प्रकार यह कामसेना भी उन्नत कुचवाली और दामिनी जैसी सुन्दर वर्ण की तथा चचल है। काम की सेना जिस प्रकार अपने नाथ (कामदेव) के साथ रहती है, उसी प्रकार यह अपने साथ राजारामसिंहा के साथ रहती है !

भिन्नपद श्लेष

दोहा

पदही में पद काढिये, ताहि भिन्नपद जानि।
भिन्नभिन्न पुनि पदनिके, उपमा श्लेष बखानि ॥३६॥

जहाँ एक पद (शब्द) को काट कर दूसरा शब्द बना कर अर्थ किया जाय, वहाँ 'भिन्नपद श्लेष' जानना चाहिए और जहाँ पर शब्दों के भिन्न-भिन्न अर्थ किये जाते हैं, वहाँ उपमाश्लेष कहला है।

उदाहरण (१)

उपमाश्लेष

दोहा

वृषभवाहिनी अंग उर, वासुकि लसत नवीन।
शिवसँग सोहत सर्वदा. शिवा कि रायप्रवीन ॥३७॥

उदाहरण

भिन्नपद श्लेष

राजै रज 'केशौदास' टूटत अरुण लार,
प्रतिभट अकन ते अंक पै सरतु है।
सेना सुन्दरीन के बिलोकि मुख भूषणनि,
किलकि किलकि जाही ताही को धरतु है।
गाढ़े गढ़ खेलही खिलौननि ज्यों तोरि डारै,
जग जय जश चारु चंद्र को अरतु है।
चंद्रसेन भुवपाल आंगन विशाल रण,
तरो कर बाल बाल लीला सी करतु है ।।३८॥

हे चन्द्रसेन राजा ! आपकी तलवार विशाल रण-भूमि में बालकों जैसी लीला करती है, क्योंकि जिस प्रकार (केशवदास कहते हैं कि) बालक धूल से सन जाता है, उसी प्रकार आपको तलवार भी रजोगुण में सन जाती है। जिस प्रकार बालक के मुँह से लाल-लाल टपकती है, उसी प्रकार आपकी तलवार से लाल-लाल लार अर्थात् रक्त टपकता है। जैसे बालक एक गोद से दूसरी गोद में जाता रहता है वैसे आपकी तलवार भी एक की गोद से दूसरे की गोद में जाती है अर्थात् एक

State Museum
LUCKNOW.

शत्रु को काटकर दूसरे को काटती है। जिस प्रकार बालक सुन्दरियों की सेना (समूह) को देखकर उनके मुख भूषणों में से जिसे चाहता है उसे, किलक-किलककर पकड़ता है उसी प्रकार आपकी तलवार भी सेनारूपी सुन्दरी के मुख्य भूषणों अर्थात् मुख्य सिपाहियों या सरदारों को किलक-किलककर पकड़ती है। जिस प्रकार बालक खेल में बनाये हुए बड़े-बड़े किलों को खिलौनों की भाँति तोड़ डालता है, उसी प्रकार आपकी तलवार भी बड़े-बड़े दुर्गों को खेल ही खेल खिलौनों की भाँति तोड़ डालती है अर्थात् जीत लेती है। जैसे बालक चन्द्रमा के लिए हठ करता है, वैसे आपकी तलवार जगत में यशरूपी चन्द्रमा को लेने का हठ ठानती है।

श्लेष के अन्य भेद

दोहा

बहुरथो एक अभिन्न क्रिय, औ भिन्न क्रिय आन।
पुनि विरुद्ध कर्मा अपर, नियम विरोधी मान ॥३९॥

श्लेष के अभिन्न क्रिया' 'भिन्न क्रिया' 'विरुद्धकर्मा' 'नियम और 'विरोधी' ये पाँच भेद और होते हैं।'

उदाहरण (१)

अभिन्न क्रियाश्लेष

कवित्त

प्रथम प्रयोगियतु बाजि द्विजरात प्रति,
सुवरण सहित न विहित प्रमान है।
सजल सहित अंग विक्रम प्रसंग रंग,
कोष ते प्रकाशमान धीरज निधान है।
दीन को दयाल प्रतिभटन को शाल करै,
कीरति को प्रतिपाल जानत जहान है।

जात हैं बिलीन ह्वै दुनी के दान देखि राम-
चन्द्र जी को दान कैधों केशव कृपान है ॥४०॥

'केशवदास' कहते हैं कि यह श्रीरामचन्द्र जी का दान है या उनकी तलवार है। क्योंकि जिस प्रकार दान में पहले श्रेष्ठ ब्राह्मणों को सोने के आभूषणों सहित इतने घोड़े दिये जाते हैं कि जिनका कोई प्रमाण (सीमा) नहीं होता, उसी प्रकार तलवार भी घोड़ों पर सवार क्षत्रिय राजाओं पर चलती हैं और वह सुन्दर रंग की अर्थात् चमकीली तथा जिसका कोई प्रमाण नहीं है अर्थात् बहुत लम्बी है। जिस प्रकार दान सजल (जल के सहित) तथा सहित (प्रेम पूर्वक) होता है और अंग (शरीर) में उत्साह के साथ प्रसंग पर प्रेम रखकर दिया जाता है, उसी प्रकार तलवार सजल (पानीदार) अङ्ग (मूठ) सहित होती है और विक्रम का प्रसंग उपस्थित होने पर अपना रंग दिखलाती है। जिस प्रकार दान (कोष) खजाने से निकालकर धैय पूर्वक दिया जाता है उसी प्रकार तलवार भी कोष (मियान) से नि लकर चलानेवाले को धैर्य देती है। जिस प्रकार दान दीनों को दयालु होकर दिया जाता है और इतना दिया जाता है प्रति द्वन्द्वी दानी को खटकता है, उसी प्रकार तलवार कायरों पर दया प्रकट करती है और शत्रुओं को खटकती है। जिस प्रकार दान कीर्त्ति का प्रतिपालन करता है, उसी प्रकार तलवार से भी कीर्त्ति ाप्त होती है इसे सारा संसार जानता है। जिस प्रकार उनके दान को देखकर सब दान लुप्त हो जाते हैं उसी कार उनकी तलवार को देखकर सब का मद उतर जाता है।

उदाहरण—२

भिन्न क्रिया श्लेष

कछु कान्ह सुनौ कल कूकति कोकिल काम की कीरति गावन सी।
पुनि बातैं कहै कलभाषिनि कामिनि कोक कलान पढ़ावत सी॥

सुनि बाजत बीन प्रबीन नवीन सुराग हिये उपजावत सी।
कहि केशवदास प्रकास बिलास सबै बन शोभ बढ़ावत सी ॥४१॥

हे कृष्ण सुनो। कोयल, कामदेव की कीर्त्ति गाती हुई सी, बोल रही है। मधुर भाषिणी कामिनियाँ, काम-कला पढ़ाती हुई सी बातें कर रहीं हैं। हृदय में नवीन राग को उत्पन्न करती हुई सी नवीन-वीणा किसी प्रवीण के द्वारा बज रही है। 'केशवदास कहते हैं कि ये सभी विलास बन (बाग, घर और जंगल) की शोभा ही बढ़ाते हैं।

उदाहरण—३

विरुद्धकर्मा श्लेष

कवित्त

दोऊ भगवंत, तेजवंत, बलवंत दोऊ,
दुहुन की बेदन बखानी बात ऐसी है।
दोऊ जानैं पुण्यपाप, दुहुन के ऋषि बाप,
दुहुन की देखियत मूरति सुदेशी है।
सुनौ देवदेव बलदेव, कामदेव प्रिय,
'केशोराय' की सौं तुम कहौ तैसी जैसी है।
वारुणी को राग होत, सुरुज करत अस्त,
उदौ द्विजराज को जु होत यह कैसी है ॥४२॥

दोनों (सूर्य और चन्द्रमा) किरणधारी हैं, दोनों ही तेजस्वी और बलवान हैं तथा दोनों ही का वर्णन वेदों में है। दोनों ही पाप-पुण्य जानत हैं, दोनों के पिता ऋषि हैं। दोनों ही की मूर्त्ति सुन्दर दिखलाई पड़ती है हे देव-देव बलदेव सुनिए! आपको केशवराय (श्रीकृष्ण) की शपथ है। जैसी बात है वैसी ठीक-ठीक बतलाइए। वारुणी (पश्चिम) के लाल होते ही चन्द्रमा के उदय होने पर, सूर्य अस्त हो जाते हैं, ऐसी बात क्यों होती है? वारुणी (शराब) पर अनुराग

होने पर सूर्य (क्षत्रिय वर्ण) का अस्त हो और चन्द्र (ब्राह्मण) का उदय हो, यही विचित्रता है।

उदाहरण—४

नियमश्लेष

कवित्त

बैरी गाय ब्राह्मन को, कालै सब काल जहां,
कवि कुल ही को सुबरण हर काज है।
गुरु सेज गामी एक बालकै बिलोकियत,
मातंगनि ही को मतवारे को सो साज है।
अरि नगरीन प्रति होत है अगम्या गौन,
दुर्गन ही 'केशौदास' दुर्गति आज है।
राजा दशरथ सुत राजा रामचन्द्र तुम,
चिरु चिरु राज करौ जाको ऐसो राज है॥ ३॥

जहाँ गाय और ब्राह्मण का वैरी यदि कोई है तो काल (मृत्यु) ही है, अन्यथा कोई वैरी नहीं। जहाँ सुवरण हरने का काम केवल कवियों का ही है अर्थात् कोई सुवर्ण सोने की चोरी नहीं करता, केवल कवि लोग सुवर्ण (सुन्दर अक्षर) का हरण काव्य रचना के लिए करते हैं। जहाँ गुरु की शय्या पर सोता हुआ केवल बालक ही देखा जाता है अर्थात् गुरु (माता) के साथ केवल बालक सोता है अन्यथा गुरु सेजगामी कोई नहीं है। जहाँ मतवालापन केवल हाथियों में ही पाय जाता है, अन्यथा कोई मतवाला नहीं है। जहाँ अगम्यागमन (अगम्य स्थानों में पहुँचना) केवल शत्रु नगरी पर ही होता है अन्यथा अगम्यागमन (अगम्य स्त्री-संगम) कहीं सुनाई तक नहीं पड़ता। 'केशवदास' कहते हैं कि जहाँ दुर्गति (टेढी हालत) केवल दुर्गों (किलों में ही मिलती है अन्यत्र दुर्गति कहीं नहीं है। हे राजादशरथ

के पुत्र रामचन्द्र ! आपका ऐसा राज्य है; आप चिरकाल तक राज्य करें।

उदाहरण—५

विरोधीश्लेष

सवैया

कृष्ण हरे हरये हरैं संपति, शंभू विपत्ति इहै अधिकाई।
जातक काम अकामनि को हित घातक काम सुकाम सहाई।
छातीमें लच्छि दुरावत वेतो फिरावत ये सबके सँग धाई।
यद्यपि 'केशव' एक तऊ, हरि त हर सेवक कोसत भाई ॥४४॥

श्रीकृष्ण तो अपने दासों की) धीरे-धीरे सम्पत्ति हर लेते हैं और श्रीशङ्कर जी विपत्ति को हरते हैं यही अधिकता है। हरि (श्रीकृष्ण) काम को उत्पन्न करनेवाले हैं अर्थात् उसके पिता है और निष्काम भक्तों के हितैषी हैं। श्रीशङ्कर ज कामदेव का घातक (मारने वाले) और सकाम इच्छा से भक्ति करनेवाले) भक्तों के सहायक हैं। वे श्रीकृष्ण) लक्ष्मी को अपनी छाती में छिपाए रखते हैं और ये (श्री शंकर जी) सभी (भक्तों) के साथ उसे फिराते रहते हैं अर्थात् भक्तों को लक्ष्मी प्रदान करते रहते हैं। 'केशवदास' कहते हैं कि यद्यपि हरि और (श्रीकृष्ण) और हर (श्रीशङ्कर जी) एक ही हैं, परन्तु शङ्कर जी सेवक (भक्त) पर अधिक सद्भाव रखते हैं।

१३—सूक्ष्म अलङ्कार

दोहा

कौनहु भाव प्रभाव ते, जानै जिय की बात।
इंगित तें आकार तें, कहि सूक्षम अवदात ॥ ४५ ॥

किसी भी भाव, संकेत या आकार से, जब दूसरे के मन की बात जान ली जाती है, तब उसे सूक्ष्म अलंकार कहते हैं।

उदाहरण—६

सवैया

सखि सोहत गोपसभा महि गोविन्द बैठे हुते द्युतिको धरिकै।
जनु केशव पूरणचन्द्र लसै चित चारु चकोरनिको हरिकै॥
तिनको. उलटोकरि आनि दियो केहु नीर नयो भरिकै।
कहि काहेतें नेकु निहार मनोहर फेरि दियो कविता करिकै॥४६॥

(केशवदास किसी सखी की ओर से कहते हैं कि हे सखी! श्रीकृष्ण गोपों की मंडली में, शोभा धारण किये हुए बैठे थे। वह ऐसे ज्ञात हो रहे थे मानों चकोरों का मन हरण करता हुआ पूर्ण चन्द्रमा सुशोभित हो रहा हो। इसी बीच में, किसी ने उनको कमल के पुष्प में पानी भरकर उलटा करके, दे दिया। श्रीकृष्ण ने उसकी ओर तनिक देखा और उस कमल को काली जैसा करके (खिले हुए फूल को, बन्द करके) लौटा दिया। बता, क्यों?

[कमल पुष्प लाने वाले का तात्पर्य यह था कि वियोगिनी अपना कमल-मुख लटकाये हुए, आपके विरह में रो रही है। श्रीकृष्ण ने, कमल को कली बनाकर यह संकेत किया कि जब कमल संकुचित हो जाते हैं, तब, रात में मिलूँगा।]

१४—लेशालंकार

दोहा

चतुराई के लेसतें. चतुर न समझैं लेस।
बर्णत कवि कोविद सबै, ताको केशव लेस॥४७॥

केशवदास कहते हैं जहाँ ऐसी गूढ़ चतुराई की जाय कि उसे चतुर लोग भी लेशमात्र न समझ पावें, वहाँ, उसे कवि लोग तथा विद्वान् सभी 'लेश' अलंकार कहा करते हैं।

उदाहरण

सवैया

खेलत हैं हरि बागै बने जहँ बैठी प्रिया रतितें अतिलोनी ।
केशव कैसेहु पीठ में दीठि परी कुच कुंकुमकी रुचिरोनी ॥
मातु ममीप दुराइ भले तिन सात्त्विक भावन की गति होनी ।
धूरिकपूरकी पूरि विलोचन सूँघि सरोरुह ओढ़ि उढ़ोनी ॥४८॥

श्रीकृष्ण बने-ठने हुए बाग में खेल रहे थे और उनकी रति से भी सुन्दर प्रिया वहीं बैठी हुई थी। 'केशवदास' कहते हैं कि किसी प्रकार उसकी दृष्टि उनकी पीठ पर लगे हुए, निज कुचकुँकुम की रमणीय चमक पर जा पड़ी। माता के समीप होने के कारण उसने अपने सात्त्विक भावों (आँसू, कम्प तथा रोमाञ्च) को भलीभाँति छिपा लिया। आँसुओं को छिपाने के लिए कपूर की धूल आँखों में छोड़ ली, कम्प छिपाने के लिए कमल को सूंघने लगी (जिससे ज्ञात हो कि कमल की सुगंध की प्रशंसा में शिरहिल रहा है), और रोमांच को छिपाने के ओढ़नी को अच्छी तरह से ओढ़ लिया।

[प्रणय-कलह के समय श्रीकृष्ण ने प्रिया की ओर से पीठ दी थी। नायिका ने प्रेम-वश, पीछे से हो उनके मुख का चुम्बन किया था, अतः उसके कुचों का कुँकुँम उनकी पीठ पर लग गया था। उसी को देखकर नायिका को सात्त्विक भाव उत्पन्न हुए और उसने उन्हें चतुराई से छिपालिया।]

१५—निदर्शना

दोहा

कौनहुँ एक प्रकारते, सत अरु असत समान ।
कहिये प्रकट निदर्शना, समुझत सकल सुजान ॥ ४९ ॥

जहाँ किसी भी एक ढङ्ग से, भली और बुरी बातों का समान परिणाम (अर्थात् भले का भला और बुरे का बुरा) प्रकट किया जाता है उसे निदशना' कहते हैं, इसको सभी चतुर लोग जानते हैं

उदाहरण

कवित्त

तेई करें चिरराज, राजन में राजैं राज,
तिनही को यश लोक-लोक न अटतु है।
जीवन, जनम तिनही के धन्य 'केशौदास'
औरन को पशु सम दिन निघटतु है।
तेई प्रभु परम प्रसिद्ध पुहुमी के पति.
तिनही की प्रभु प्रभुताई को रटतु है।
सूरज समान सोम मित्रहू अमित्र कहँ,
सुख, दुख निज उदै अस्त प्रगटतु है ॥५०॥

वे ही राजा चिरकाल तक राज्य करते हैं, तथा वे ही राजाओं में अच्छे माने जाते हैं और उन्हीं का यश लोकों में नहीं समाता। 'केशवदास' कहते हैं कि उन्हीं का जन्म धन्य समझना चाहिए और अन्य राजाओं के दिन तो पशु के समान केवल, खाने-पीने और सोने में) कटते हैं। वही राजा प्रसिद्ध होते हैं और उन्हीं राजाओं की प्रभुताई को लोग रटते रहते हैं, जो सूर्य और चन्द्रमा की भाँति अपने उदय तथा अस्त से, मित्र तथा शत्रुओं को, सुख अथवा दुःख देते हैं।

१६—ऊर्जालंकार

दोहा

तजै निज हँकार को, यद्यपि घटै सहाय।
ऊर्ज नाम तासों कहें, केशवकवि कविराय ॥ ५१ ॥

केशवदास कहते हैं कि जहाँ सहायता के घटने पर भी (अर्थात् सहायहीन होने पर भी) स्वाभिमान को न छोड़ा जाय, वहाँ सभी श्रेष्ठ कविगण 'ऊर्ज' अलंकार कहते हैं।

उदाहरण

सवैया

को बपुरो जो मिल्यो है विभीषण है कुलदूषण जीवैगो कौलों।
कुम्भकरन्न मर्यो मघवारिपु, तौह कहा न डरों यम सौलों।
श्रीरघुनाथ के गातनि सुन्दरि जानसि तूँ कुशलात न तौलों।
शाल सबै दिगपालनिको कर रावण के करवाल है जौलों ॥५२॥

(रावण मन्दोदरी से कहता है कि) विभीषण जो रामचन्द्र से जा मिला है, वह बेचारा क्या है और वह कुलकलंक जीवेगा ही कब तक ? कुम्भकर्ण और मेघनाथ भी जो मर गये, उसका भी मुझे शोच नहीं है मैं सौ यमराजों से भी नहीं डरता। हे सुन्दरी ! जब तक समस्त दिग्पालों को शालनेवाला खड्ग मेरे हाथों में है, तब तक श्रीरामचन्द्र जी के शरीर की कुशल मत समझ।

१७—रसवत अलङ्कार

दोहा

रसवत होय सुजानिये, रसवत केशवदास।
नव रसको संक्षेपही, समझो करत प्रकास ॥ ५३ ॥

'केशवदास' कहते हैं कि किसी भी रस-मय वर्णन को रसवत अलंकार समझिए। अथवा यह मानिए कि यह अलकार मानों नवों रसों का संक्षेप में प्रकटीकरण है।

उदाहरण

शृङ्गार रसवत

आन तिहारी, न आन कहौं, तनमें कछु आन न आनहीं कैसो।
केशव स्याम सुजान स्वरूप न, जाय कह्यो मन जानतु जैसो ॥

लोचन शोभहि पीवत जात, समात सिहात, अघात न तैसो।
ज्यों न रहात बिहात तुम्हें, बलिजात सुबात कहौ टुक वैसो ॥५४॥

मैं आपकी शपथ खाकर कहती हूँ कि 'मुझे आपसे और कुछ भी नहीं कहना है।' (यदि कुछ कहना चाहती हूँ तो यही कि कुछ कुछ आपका शरीर तथा पूर्णरूप से मुख अन्य (अर्थात् मेरे पति) जैसा ही है। (केशवदास उस नायिका की ओर से कहते हैं कि) सुजान श्याम का जैसा स्वरूप है, वह कहा नहीं जा सकता। वह जैसा है, वैसा मन ही जानता है। (परन्तु) मेरे नेत्र आपकी शोभा को भी पीते जाते हैं, उसी में समाते से जाते हैं और वैसे ही सिहाते हुए अघाते नहीं। यदि आपको मेरे पास रहते नहीं बनता तो मैं बलिहारी जाती हूँ, थोड़ी देर मेरे पास बैठकर कुछ बातें ही कीजिए।'

[इसमें वियोग श्रृङ्गार मुख्य है, क्योंकि नायिका वियोगिन है परन्तु अन्य पुरुष से प्रेम प्रकट करती हुई बातें करना चाहती है, अतः संयोग श्रृङ्गार भी गौण रूप से विद्यमान है। अतः वियोग श्रृङ्गार का पोषक सयोग श्रृगार रसवत है]

वीर रसवत

छप्पय

जिहि शर मधुमद मर्दि, महामुर मर्दन कीनों।
मारयो कर्कस नरक शंख, हनि शंख सुलीनों॥
निःकण्टक सुरकटक कर्यो, कैटभ वपु खण्ड्यो।
खरदूषण त्रिशिरा कबन्ध तरु खण्ड विहण्डयो॥
बल कुम्भकरण जिमि संहर्यो पल न प्रतिज्ञातैं टरौं।
तिहि बाण प्राणदशकंठ के, कंठ दशौ खंडित करौं॥५५॥

जिस बाण से मैंने 'मधु' राक्षस के अभिमान को चूर किया और जिससे मैंने 'मुर' राक्षस का मर्दन किया। जिससे दुष्ट नरकासुर और

शंखासुर को मारा जिससे 'कैटभ' राक्षस के शरीर को खंडित करके देवताओं के समूह को निष्कंटक बनाया। जिससे खर, दूषण, त्रिशिरा और कबन्ध राक्षसों को नष्ट किया और सातों ताल वृक्षों को काट गिराया जि के बल मैंने कुम्भकर्ण को मारा, उसी बाण से रावण के दशों शिरों को काट गिराऊँगा इसकी मैं प्रतिज्ञा करता हूँ। इससे मैं पल भर को भी न डिगूंगा।

[इस उक्ति को श्रीरामचन्द्र जी ने श्रीलक्ष्मण जी को हतोत्साह होते देख कहा था। उत्साहित करने के कारण इसका स्थायी भाव उत्साह है अतः वीर रस से पुष्ट वीर रसवत हुआ]

रौद्र रसवत

उदाहरण

छप्पय

क्रूर आदित्य अदृष्ट नष्ट यम करौं अष्ट वसु।
रुद्रनि बोरि समुद्र करों गन्धर्व सर्व पसु॥
बलित अबेर कुबेर बलिहि गहि देउँ इन्द्र अब।
विद्याधरनि अविद्य करौं बिन सिद्धि सिद्ध सब॥
लैकरों दासिदिति की अदिति अनिल अनल मिलिजाहि जब।
सुनि सूरज सूरज उगतहीं, करों असुर संसार सब॥५६॥

[यह श्रीरामचन्द्र जी की उक्ति है। जिस समय श्रीलक्ष्मण जी के शक्ति लगी थी और वह अचेत पड़े हुए थे, उस समय वह बहुत व्यग्र हो रहे थे कि कहीं सूर्योदय न हो जाय और श्रीलक्ष्मण जी की औषधि न हो सके, क्योंकि ऐसा ही बतलाया गया था कि सूर्योदय पर औषधि का कोई प्रभाव न रहेगा। उन्हें देवताओं पर क्रोध आ गया कि मैं तो इनके हित के लिए ही रावण से युद्ध कर रहा हूँ और ये

वरदानों द्वारा मुझे हानि पहुँचाने को उद्यत प्रतीत होते हैं उसी क्रोधावेश में वह कह रहे हैं कि]

मै बारहो सूर्य को अदृश्य करके, या, आठों वसुओं को नष्टकर डालूंगा। रुद्रों को समुद्र में डुबाकर, गन्धर्वों को पशु के समान बलि चढ़ा दूँगा। वरुण सहित कुबेर और इन्द्र को पकड़कर बलि को समर्पित कर दूँगा। विद्याधरों का अस्तित्व मिटा दूँगा और सिद्धों को सिद्धि-रहित कर दूँगा। आदिति को दिति की दासी बनाकर छोड़ूंगा। वायु, अग्नि और जल सब मिट जायँगे। हे सूरज (सूर्यपुत्र-सुग्रीव)! सुनो, सूर्य के उदय होते ही मैं सारे संसार को, अपने बल से देव-रहित कर डालूँगा।

[इसमें 'क्रोध' स्थायी भाव है, इसलिए रौद्र रसवत अलंकार है]

करुणा रसवत

उदाहरण

सवैया

दूरि ते दुन्दुभी दीह सुनी न गुनी जनु पुंज की गुंजन गाढ़ी।
तोरन तूर न ताल बजैं, बरह्मावत भाट न गावत ढाढ़ी॥
विप्र न मंगल मन्त्र पढ़ैं, अरु देखैं न बारवधू ढिग ठाढ़ी।
केशव तात के गात, उतारति आरति मातहि आरति बाढ़ी।५७॥

(जिस समय श्री भरत जी अपनी ननिहाल से लौटे, उस समय उन्होंने देखा कि न तो दूर से दुन्दुभी की ध्वनि सुनाई पड़ी और गुणी गायकों का ही शब्द सुनाई पड़ा। न तो रण सजा हुआ देखा, न तुरही और मँजीरे बजाते हुए सुने और न भाटों ने विरुदावली गाई तथा न ढाढ़ी गाते हुए मिले। न ब्राह्मण मंगल मंत्र पढ़ते देखे और न वेश्याएँ द्वार पर खड़ी हुई पाईं। 'केशवदास' कहते हैं कि

केवल माता को आरती उतारते देख पुत्र (भरत जी) का दुःख बढ़ गया।।

(इसमें शोक' स्थायी भाव है अतः करुणा रसवत अलङ्कार है)

भयानक रसवत

उदाहरण (१)

सवैया

रामकी बाम जु ल्याये चुराय, सु लंक में मीचुकी बेलि बईजू।
क्यों रणजीतहुगे तिनसों, जिनकी धनुरेख न नांघी गईजू॥
बीसबिसे बलवन्तहुते जो, हुती दृग केशव रूप रईजू।
तोरि शरासन शंकर को पिय, सीय स्वयम्बर क्यों न लईजू॥५८॥

(मन्दोदरी रावण से कहती है कि) तुम जो श्रीरामचन्द्र की भार्या को चुरा लाये, सो तुमने मानों लंका में मृत्यु की बेल बो दी। उनसे तुम युद्ध में कैसे जीतोगे, जबकि उनके धनुष से खींची हुई रेखा को तुम न लांघ सके ? (केशवदास-मन्दोदरी की ओर से कहते हैं कि) यदि तुम बीसो विश्वा (पूर्ण रूप से) बलवान थे तो, जो सीता तुम्हारी दृष्टि में रूपमयी ज्ञात होती थी, उसे श्री शङ्कर जी का धनुष तोड़कर, स्वयंवर के समय, क्यों न ले लिया ?

(यहाँ मन्दोदरी के मन में 'भय' उत्पन्न हुआ ज्ञात होता है अतः वही स्थायी भाव है और इसीलिए यह भयानक रसवत अलङ्कार है)

उदाहरण (२)

सवैया

बालि बली न बच्यो पर खोरि, सु क्यों बचिहौ तुमकै निज खोरहि।
केशव छीर समुद्र मथ्यो कहि, कैसे न बांधि हैं सागर थोरहि॥

श्रीरघुनाथ गनो असमर्थ न, देखि बिना रथ हाथिहि घोरहि।
तोयो शरासन शंकर को जिहि, शोच कहा तुव लंक न तोरहि ॥५९॥

(मन्दोदरी ही फिर कह रही है कि) जब दूसरे (सुग्रीव) का अपराध करके उनके हाथ से बालि नहीं बच सका, तब तुम उन्हीं का अपराध करके कैसे बचोगे ? (केशवदास मन्दोदरी की ओर से कहते हैं कि) जब उन्होंने क्षीर समुद्र मथ डाला, तब इस छोटे समुद्र को क्यों न बाँधलेंगे। इसलिए तुम श्रीरघुनाथ जी को, बिना रथ, घोड़े और हाथियों के देख असमर्थ न समझो। जिन्होंने श्रीशङ्कर जी का धनुष तोड़ डाला, वह तुम्हारी लंक (कमर) को न तोड़ सकेगा — इसमें सोच-विचार ही क्या है !

अद्भुत रसवत

उदाहरण (१)

कवित्त

आशीविष, सिन्धु विष, पावक सों नातो कछू
हुतो प्रह्लाद सों, पिता को प्रेम टूटो है।
द्रौपदी की देह में खुथी ही कहा दुःशासन,
खरोई खिसानों खैंचि बसन न खूँटो है।
पेट में परीछित की, पैठि कै बचाई मीचु,
जब सब ही को बल विधवान लूटो है।
केशव अनाथन को नाथ जो न रघुनाथ,
हाथी कहा हाथ कै हथ्यार करि छूटो है !॥६१॥

जिस समय पिता का प्रेम टूट गया, उस समय सर्प हलाहल विष, तथा अग्नि से क्या प्रह्लाद का कुछ नाता था (जो वह बच गया) ? द्रौपदी की देह में क्या वस्त्रों की धरोहर रखी हुई थी, जो दुःशासन

खींच-खींच कर थक गया और वस्त्र कम न हुए। जब ब्रह्मा के वाण (ब्रह्मास्त्र) ने सबका बल लूट लिया अर्थात् निःशक्त बना दिया, तब (चक्रसुदर्शन) द्वारा पेट में पहुँचकर परीक्षित को बचाया था। 'केशवदास' कहते हैं कि यदि श्रीरामचन्द्र जी अनाथों के नाथ न होते तो क्या हाथी ग्राह के फन्दे से, अस्त्र चलाकर छूटा था ?

(उक्त घटनाओं से आश्चर्य का भाव उत्पन्न होता है अतः अद्भुत रसवत है)

उदाहरण (२)

कवित्त

केशौदास वेद विधि व्यर्थ ही बनाई विधि,
व्याध शवरा को, कौने संहिता पढ़ाई ही।
वेष धारी हरि वेष देख्यो है अशेष जग,
तारका को कौने सीख तारक सिखाई ही।
बारानसी बारन करयो हो वसोबास कब,
गनिका कबहि मनि कनिका अन्हाई ही।
पतितन पावन करत जो न नन्दपूत,
पूतना कबहिं पति देवता कहाई ही ॥६२॥

'केशवदास' कहते हैं कि वेद-विधि व्यर्थ ही बनाई गई है (क्योंकि यदि वेदानुकूल चलने से ही मोक्ष मिलता तो) व्याध तथा शबरी को किसने सहिता पढ़ाई थी (जो तर गये , ? (श्रीकृष्ण का रूप रखकर राजकुमारी से विवाह करने वाले श्रीकृष्ण वंशधारी की जो लज्जा रखी थी, उसे भी सारे संसार ने देखा था ताड़का को त्ररक मन्त्र की शिक्षा किसने दी थी (जो वह भी तर गई) ? हाथी ने बनारस में जाकर कब निवास किया था और गणिका कब मणि करिंर्थका पर स्नान करने गई थी ? यदि नन्द के पुत्र (श्रीकृष्ण) पतितों को

उद्धार करनेवाले न होते तो पूतना कहाँ की पतिव्रताई कहलाती थी (जो उसका उद्धार हो गया)।

(इसमें भी अद्भुत बातों के कारण 'आश्चर्य' का उदय होता है अतः अद्भुत रसवत है)

हास्य रसवत

उदाहरण

सवैया।

बैठति है तिनमें हठिकै, जिनकी तुमसों मति प्रेमपगी है।
जानत हौं नलराज दमन्ती की दूत कथा रसरंग रँगी है॥
पूजैगी साध सबै सुखकी मन, भाग को केशव जोति जगी है।
भेद की बात सुनेते कछू वह. मासकते मुसुक्यान लगी है॥६३॥

(एक दूती नायक से कहती है कि जिसकी बुद्धि तुम्हारे प्रेम में पगी हुई है अर्थात् जो तुमसे प्रेम करती हैं, वह उन्हीं में हठपूर्वक जाकर बैठा करती है। मैं यह भी जानती हूँ कि वह राजा नल और दमयन्ती की कथा में बड़ा आनन्द लेती है (क्योंकि दमयन्ती ने पहले हँस के द्वारा दूतत्व करवाया था)। (केशवदास दूती की ओर से कहते हैं कि, मुझे ऐसा ज्ञात होता है कि तुम्हारे मन की सब साध पूरी होगी और तुम्हारे भाग्य की ज्योति अब जग गई है अर्थात् तुम्हारा भाग्योदय हो गया है। इधर भेद की बातें (प्रेम मयी बातें) सुनकर वह लगभग एक महीने से मुसकराने भी लगी है।

(उक्त बातों को सुनकर नायक के मन में हँसी का भाव उदय होना स्वाभाविक है, अतः हास्य रसवत अलंकार है)

शान्त रसवत

उदाहरण

सवैया

देइगो जीवनवृत्ति वहै प्रभु है सबरे जगको जिनदैये।
आवत ज्यों अन उद्यमते सुख, त्यों दुख पूरबके कृत पैये॥
राज औ रंक सुराज करो. अब काहे को केशव काहु डरैये।
मारनहार उबारनहार सुतौ सबके शिर ऊपर हैये॥६४॥

जो प्रभु सारे संसार को जीवन वृत्ति देता है, वही मुझे भी जीविका देगा। बिना उद्यम किये जैसे सुख मिलता है वैसे ही पूर्वजन्म कृत पुण्य के अनुसार दु ख भी प्राप्त होता है। 'केशवदास' कहते हैं कि (यही सोचकर राजा और रंक सभी आनन्द करो क्योंकि मारने और बचानेवाला तो सबके ऊपर है ही।

(इसमें ईश्वर पर दृढ़ विश्वास की शिक्षा दी गई है, अतः शान्त रसवत अलङ्कार है)

१८—अर्थान्तर न्यास

दोहा

और जानिये अर्थ जहँ. औरे वस्तु बखानि।
अर्थातर को न्यास यह, चारि प्रकार सुजानि॥६५॥

जहाँ दूसरी वस्तु का वर्णन करके, दूसरा अर्थ लगाया जाय, वहाँ अर्थान्तर न्यास अलङ्कार होता है। यह चार प्रकार का समझना चाहिए।

सामान्य उदाहरण

सवैया

भोरेहूँ भौह चढ़ाय चितै, डरपायइये कै मन केहूँ करेरो।
ताको तौ केशव कारहिये दुख होत, महा सु कहौं इत हेरो॥

कैसोहै तेरो हियो हरि में रहि. छोरै नहीं तनु छूटत मेरो।
बूँदकदूधको मारयो है बांधि, सुजानत हौं माई जायो न तेरो ॥६६॥

(कोई एक ब्रजनारी यशोदा जी से कहती है कि) मैं तो धोखे से भी अपने बच्चे को भौहें चढ़ाकर जी कड़ा करके डरवाती हूँ तो (केशवदास उसकी ओर से कहते हैं कि) मुझे उसका करोड़ों भाँति से, हृदय में महादुःख होता है इसीलिए कहती हूँ कि जरा इधर देख ! तेरा हृदय श्रीकृष्ण के प्रति कैसा है ? तनिक ठहर जा ! (देख ऐसी गाँठ लगाई है कि) तनिक भी खोलने से नहीं खुलती तूने एक बूंद दूध को फैला देने पर अपने पुत्र को बाँधकर मारा है इससे ऐसा समझती हूँ कि यह तेरा जन्माया हुआ नहीं है।

[इसमें 'जायो न तेरो' वाक्यांश से तुझे पुत्र के प्रति प्रेम नहीं है' अर्थ सूचित होता है अतः अर्थान्तर न्यास है।]

अर्थान्तर न्यास के चार भेद

दोहा

युक्त, अयु , बखानिये, और अयुक्तायुक्त।
केशवदास विचारिये, चौथो युक्तायुक्त ॥ ६७।

'केशवदास' कहते हैं कि (अर्थान्तर न्यास के) (१) युक्त (२) अयुक्त (३) अयुक्तायुक्त और (४) युक्ता-युक्त ये चार भेद माने जाते हैं।

१—युक्त अर्थान्तर न्यास

दोहा

जैसो जहाँ जु बूझिये, तैसो तहाँ सु आनि।
रूपशील गुण युक्ति बल, ऐसो युक्त बखानि। ६८॥

जिसको जैसा समझकर वर्णन किया जाय, उसको रूप, शील, गुण और युक्ति वल से वैसा ही प्रमाणित भी किया जाय तब उसे युक्त कहते हैं।

उदाहरण

कवित्त

गरुवो गुरू को दोष, दूषित कलंक करि,
भूषित निशचरीन अंकन भरत हैं।
चंडकर मण्डल तें लै लै वहु चंडकर,
'केशौदास' प्रतिभास मास निसरत हैं।
विषधर बन्धु हैं. अनाथिनि को प्रति बन्धु,
विष को विशेष बन्धु हिये हहरत हैं।
कमल नयन की सौं, कमल नयन मेरे,
चन्द्रमुखी! चन्द्रमा ते न्याय ही जरत हैं।

(कोई विरहिणी अपनी सखी से कहती है कि) हे चन्द्रमुखी! मैं कमल-नयन (श्रीकृष्ण) की शपथ खाकर कहती हूँ कि मेरे कमल जैसे नेत्र चन्द्रमा को देखकर ठीक ही जलते हैं, (क्योंकि चन्द्रमा और कमल का वैर स्वाभाविक ही है) दूसरे यह चन्द्रमा गुरु के प्रति भारी अपराध का अपराधी है कलंक से दूषित है। निशाचरियों को को अङ्क भरता है। क्योंकि राक्षसनियाँ रात में ही विचरती और सुख पाती हैं) सूय मण्डल से बहुत सी किरणों को चुरा-चुरा प्रतिमास निकला करना है। इसके विषधर (श्रीशङ्कर जी) बन्धु हैं। विरहिणियाँ शत्रु हैं और उस विष का तो विशेष भाई (सहोदर) ही है, जिससे सबके हृदय हिल जाते हैं।

[इसमें चन्द्रमा का वर्णन पहले यह कह कर किया गया कि 'मेरे नेत्र चन्द्रमा को देखकर जलते हैं फिर इसी कथन को उसके रूप, शील, गुण तथा युक्ति बल से प्रमाणित किया गया है अतः युक्ति अर्थान्तर न्यास है]

Cate Museum, LUCKNOW

२—अयुक्त अर्थान्त न्यास

दोहा

जैसो जहां न बूझिये, तैसो तहां जु हो।
केशवदास अयुक्त कहि, बरणत हैं सब कोय ॥ ७० ॥

जहाँ जैसा वर्णन न करना चाहिए, वहाँ वैसा ही वर्णन किया जाय तब 'केशवदास' कहते हैं कि उसको सब लोग अयुक्त अर्थान्तर न्यास कहकर वर्णन करते हैं।

उदाहरण

कवित्त

'केशवदास' होत मारसिरो पै सुमार सी री,
आरसी लै देखि देह ऐसिये है रावरी।
अमल बतासे ऐसे ललित कपोल तेरे,
अधर तमोल धरे दृग तिल चावरी।
येहीं छबि छकि जात, छन में छबीले छैल,
लोचन गँवार छीनि लै हैं, इत आवरी।
बार-बार बरजति, बार-बार जातिकत,
मैले बार बारों, अनिवारी है तू बावरी ॥७१॥

(केशवदास किसी सखी की ओर से, उसकी सखी से कहते हैं कि) हे सखी ! तेरी शोभा से, कामदेव पर मानो मार सी पड़ रही है अर्थात् उसकी शोभा तेरी शोभा के आगे मन्द जान पड़ती है तनिक दर्पण लेकर देख ! तेरी छवि ऐसी ही है तेरे बतासे जैसे सुन्दर कपोल हैं, ओठों पर तेरे पान हैं और आँखें तिल चावरी (सफेद और काले तिल) की भाँति काली और श्वेत हैं। तेरी इस शोभा से ही तो छबीले छैल क्षण भर में छक जाया करते हैं। गँवारों के नेत्र, तेरी इस शोभा को छीन लेंगे (नज़र लग जायगी), इसलिए तू इधर

State Museum,
LUCKNOW.

आजा। मैं तुझे बार-बार मना करती हूँ कि तू दरवाजे-दरवाजे क्यों घूमती है ? मैं शोभावली अनेक स्त्रियों को तुझ पर निछावर करती हूँ, तू ऐसी ही शोभावली है।

[इसमें स्त्री की शोभा की समता रति से न करके कामदेव से की गई है आरसी में मुँह न दिखाकर, देह को दिखाने के लिए कहा गया है, बतासे जैसे गाल बताये गये हैं, अधर पर तमोल का वर्णन है तथा सितासित न कहकर तिल चाँवरी सी आँखें बताई गई हैं। अतः ये सब वर्णन अयुक्त हैं—इसीलिए अयुक्त अर्थान्तर न्यास है]

३—अयुक्त-युक्त अर्थान्तर न्यास

दोहा

अशुभै शुभ ह्वै जात जहँ, क्यों हूँ केशवदास।
इहै अयुक्तै युक्त कवि, बरणत बुद्धि विलास॥ ७२॥

'केशवदास' कहते हैं कि जहाँ पर अशुभ वर्णन किसी प्रकार शुभ वर्णन हो जायँ, वहाँ बुद्धिमान कवि लोग अयुक्तायुक्त अर्थान्तर न्यास कहते हैं।

उदाहरण (१)

सवैया

पातकहानि पितासंगहारि वे, गर्भ के शूलनितें डरिये जू।
तालनि को बँधिबो बध रोरको, नाथ के साथ चिता जरिये जू॥
पत्रफटेतैं कटे ऋण केशव, कैसहूँ तीरथ में मरिये जू।
नीकी सदा लगै गारि सगेन की, डांड़ भलो जु गया भरिये जू॥७३॥

पातक (पाप) की हानि भली है, पिता से हार जाना अच्छा है। गर्भवास के कष्टों से डरना अच्छा है तालाबों का बंधना निर्धनता का नाश. और अपने पति के साथ चिता पर जलना भी अच्छा है

'केशवदास' कहते हैं जिस कागज के फटने से ऋण से छुटकारा मिलता हो, उसका फटना भला है और इसी प्रकार तीर्थ में मरना भी अच्छा है। अपने सगे-सम्बन्धियों की गाली अच्छी है और वह दण्ड अच्छा है, जो गया में भरना पड़े।

[इसमें हानि, हार, शूल, बांधना, वध, चिता पर जलना, फटना, करना, मरना, गाली खाना तथा दण्ड भरना आदि वर्णन अशुभ हैं परन्तु उनको शुभ वर्णन किया गया है अतः अयुक्त-युक्त अर्थान्तर न्यास अलंकार है]

उदाहरण (२)

सवैया

आगैह्वै लीबो यहै, जु चितै इत, चौंकि उतै दृग ऐंचिलई है।
मानिबे को वहई प्रति उत्तर, मानिये बात जु मौनमई है॥
रोषिकी रेख, वहै रस की रुख, काहे को केशव छांड़ि दई है।
नाहिं इहाँ तुम नाहिं सुनी यह नारि नईन की रीति नई है ॥७४॥

(कोई दूती नायक से कहती है कि) उसने जो तुम्हें आगे बढ़कर लेना मानों तुम्हारा स्वागत करना था उसने जो चौंक कर तुम्हारी ओर से आँखें फेर ली, यह संकोच था। तुम्हारी बातों को मानने का प्रत्युत्तर यही था कि वह चुप हो गई, इसलिए मेरी बात मानिए। उसने जो क्रोध की रेखा प्रकट की वही मानों उसकी रसिकता है अतः (केशवदास उस दूती की ओर से नायक से कहते हैं कि) तुमने उसे क्यों छोड़ दिया ? तुमने क्या यह नहीं सुना कि नई स्त्रियों की रीति भी नई ही हुआ करती है।

[इसमें आँखें फेर लेना, चुप हो जाना और रोष की रेखा प्रकट करना आदि बातें अयुक्त है परन्तु युक्त (उचित) बतलाई गई हैं अतः अयुक्तायुक्त अर्थान्तर न्यास अलंकार है]

४—युक्ता-युक्त अर्थान्तर न्यास

दोहा

इष्ट बात अनिष्ट जहँ, कैसे हूँ ह्वै जाय।
सोई युक्तायुक्त कहि, बरणत कवि सुखपाय ॥७५॥

जहाँ अशुभ वर्णन किसी प्रकार शुभ वर्णन हो जायँ, वहाँ कवि लोग युक्तायुक्त अर्थान्तर न्यास कहा कहते हैं।

उदाहरण (१)

सवैया

शूल से फूल, सुवास कुवाससी, भाकसी से भये भौन सभागे।
केशव बाग महावनसो जुरसी चढ़ी जोन्ह सबै अँग दागे॥
नेह लग्यो उन नाहरसों, निशि नाह घरीक कहूँ अनुरागे।
गारीसे गीत बिरा बिषसी सिगरेई शृंगार अँगारसे लागे॥ ७६॥

उसे फूल शूल जैसे प्रतीत होने लगे सुगंध दुर्गन्ध ज्ञात होने लगी और सुन्दर भवन जलती हुई भट्ठी सा लगने लगा। 'केशवदास' कहते हैं बाग, महावन (घोर जङ्गल) सा प्रतीत हुआ और चाँदनी तो ऐसी ज्ञात हुई मानों ज्वर चढ़ा है जिसने उसके सब अङ्ग झुलसा दिए हों। जिस नायक से उसका प्रेम था वह एक क्षण भर के लिए कही पर रुक गये तो उसे संगीत, गाली जै ा, पान का बीड़ा विष सा और सब शृङ्गार अंगार से लगने लगे।

[इसमें फूल को शूल, सुवास को कुवास, भवन को भट्टी, बाग को घोर जंगल, चाँदनी को ज्वर, गीत को गाली और पान के बीड़े को विष तथा शृङ्गारों को अंगार सदृश कह कर युक्त पदार्थों को अयुक्त कर दिया गया है। अतः युक्तायुक्त अर्थान्तरन्यास अलंकार है]

उदाहरण (२)

सवैया

पाप की सिद्धि सदा ऋणवृद्धि सुकीरति आपनी आप कहीकी।
दुःख को दान जु सूतकन्हान जु दासीकी संतति, संतत फीकी॥
बेटीको भोजन, भूषण राँड़को, केशव प्रीति सदा परतीकी।
युद्धमें लाज, दया अरि को, अरु ब्राह्मणजातिसों जी तननीकी॥७७॥

सिद्धि अच्छी होने पर भी पाप की सिद्धि अच्छी नहीं। इसी प्रकार वृद्धि भी अच्छी है परन्तु ऋण की वृद्धि अच्छी नहीं। सुकीर्त्ति अच्छी है परन्तु अपने मुँह से कही हुई नही। दान अच्छा है। पर दुख का नही, स्नान अच्छा है, पर सूतक का नही, सन्तान अच्छी है पर दासी से उत्पन्न संतति कभी भी अच्छी नहीं। भोजन अच्छा है पर बेटी के यहाँ नहीं, भूषण अच्छे हैं पर विधवा के लिए नहीं। 'केशवदास' कहते हैं कि इसी तरह प्रीति अच्छी है, परन्तु पर स्त्री से नहीं। लज्जा अच्छी है, पर युद्ध में नहीं, दया अच्छी है पर शत्रु पर नहीं। विजय अच्छी है पर ब्राह्मण जाति पर नही।

[इसमें 'सिद्धि', 'वृद्धि', 'कीर्त्ति', 'दान'. 'स्नान', 'सन्तति', 'भोजन', 'भूषण', 'प्रीति', 'लज्जा', 'दया', और जीत शब्द युक्त होने पर भी अयुक्त करके वर्णन किए गये हैं, अतः युक्तायुक्त अर्थान्तर न्यास अलङ्कार है।]

१९ व्यतिरेक

दोहा

तामें आनै भेद कछु, होय जु वस्तु समान
सो व्यतिरेक सु भाँति द्वै, युक्त सहज परिमान॥ ७८॥

जहाँ एक समान दो वस्तुओं में कुछ भेद या अन्तर दिखलाया जाय, वहाँ व्यतिरेक अलङ्कार होता है। वह दो प्रकार का होता है। (१) युक्त और (२) स०

१ युक्त व्यतिरेक

कवित्त

सुन्दर सुखद अति अमल सकल विधि,
सदल सफल बहु सरस सङ्गीत सों।
विविध सुवास युत 'केशौदास' आस पास,
राजै द्विजराज तनु परम पुनीत सों!
फूले ही रहत दोऊ छीवे होत प्रति पल,
देत कामनानि सब मीत हू अमीत सों।
लोचन बचन गति बिन, इतनोई भेद,
इन्द्र तरुवर अरु इन्द्र इन्द्रजीत सों।

इन्द्र तरुवर (कल्पवृक्ष) और राजा इन्द्रजीत में इतना ही भेद है कि कल्पवृक्ष बिना लोचन, वचन तथा गति के हैं और इन्द्रजीत में ये सब बातें भी विद्यमान हैं। अन्यथा दोनों ही सुन्दर हैं, सब तरह से सुख देते हैं और सब प्रकार से निर्मल है। कल्पवृक्ष सदल (पत्तों सहित) है तो राजा इन्द्रजीत भी सदल (सेना सहित) हैं। वह सफल है तो यह भी सफल (फल देने वाले) हैं। 'केशवदास कहते हैं कि वह आस पास सुगंध फैलाता है। तो यह भी सुवास (सुन्दर वस्त्रों के सहित) है। और इनके आस पास दास रहते हैं। उस पर द्विजराज (पक्षीगण) बैठे रहते हैं। इनके पास और (द्विजराज) ब्राह्मण रहते हैं। दोनों का शरीर परम पवित्र है दोनों हो फूले रहते हैं। दोनों ही मित्र तथा शत्रु की कामनाओं को पूरा करते हैं।

[राजा में कल्पवृक्ष की अपेक्षा ऊपर लिखी हुई तीन बातें अधिक हैं अर्थात् वह देख भी सकते हैं, बोल भी सकते हैं और चल भी सकते और कल्पवृक्ष इन गुणों से हीन है। अतः व्यतिरेक अलङ्कार हुआ]

२—सहज व्यतिरेक

सवैया

गाय बराबरि धाम सबै, धन जाति बराबरिही चलिआई।
केशव कंस दिवान पितानि, बराबरिही पहिरावनि पाई॥
बैस बराबरि दीपति देह, बराबरि हो बिधि बुद्धि बड़ाई।
ये अलि आजुही हाहुगो कैसे, बड़ी तुम आँखि नहीं की बड़ाई॥८०॥

दोनों के गायें बराबर हैं, घर, धन और जाति भी सदा से बराबर ही चले आते हैं। (केशवदास सखी की ओर से) कहते हैं कि तुम्हारे पिताओं ने कंस के दरबार से पहरावन (सिरोपाव) भी बराबर ही पाई है। तुम लोगों की वयस भी बराबर ही है। देह की सुन्दरता भी एक सी है तथा विधि (संस्कारादि, कुल परम्परा), बुद्धि और प्रतिष्ठा भी बराबर है। फिर हे सखी! केवल आँखों की बड़ाई के कारण तुम आज उनसे कैसे बड़ी हो जाओगी ?

[यहाँ सब बातें समान होने पर भी नायिका की आँखें बड़ी हैं अतः व्यतिरेक अलङ्कार है]

२०—अपन्हुति अलङ्कार

दोहा

मनकी वस्तु दुराय मुख, औरै कहिये बात।
कहत अपन्हुति सकल कवि, यासों बुधि अवदात॥८१॥

जहाँ मन की वस्तु छिपाकर कोई दूसरी बात प्रकट की जाय, वहाँ श्रेष्ठ बुद्धि वाले सभी कवि 'अपन्हुति' अलङ्कार कहते हैं।

उदाहरण (१)

कवित्त

सुन्दर ललित गति, बलित सुबास अति,
सरस सुवृत्त मति मेरे मन मानी है।
अमल अदूषित, सु भूषननि भूषित,
सुवरण, हरनमन, सुर सुखदानी है।
अंग अंग हो को भाव, गूढ़ भाव के प्रभाव,
जानै को सुभाव रूप रुचि पहिचानी है।
'केशौदास' देवी कोऊ देखी तुम ? नाहीं राज,
प्रगट प्रवीन राय जू की यह बानी है ॥८७॥

वह सुन्दर है, ललित गति वलित (सुन्दर चाल वाली या सुन्दर रागिनी बोलने वाली) है, सुबास (सुन्दर वस्त्र वाली अथवा सुगंध युक्त मुखवाली) है, अति रसीली है, सुवृत्त मति (सुन्दर चरित्र तथा बुद्धि वाली अथवा सुन्दर छन्दों में बुद्धि लगाने वाली) है, और मेरे मन को अच्छी लगती है। वह निर्मल है, अदूषित (दोष रहित) है, सु भूषन भूषित (अच्छे गहनों से सजी हुई अथवा अलङ्कार युक्त) है, सुवरण (अच्छे रंगवाली अथवा सुन्दर अक्षरों वाली) है, वह मन हरने वाली है, और सुर सुखदायिनी (देवताओं को सुख देने वाली अथवा स्वरों को सुख देने वाली है। उसके अंग अंग से हृदय का (गूढ़ अथवा दिव्य) भाव प्रकट होता है। उसके गूढ़ भाव के प्रभाव को (दूसरों के मन की बात को जानने के गुण को अथवा व्यंग्य भरे भेद को) कौन जान सकता है ? मैंने तो उसे रूप और रुचि से पहचानता हूँ। 'केशवदास' कहते हैं कि राजा इन्द्रजीत मुझसे पूछने लगे कि 'तुमने क्या कोई देवी देखी है, जिसका वर्णन कर रहे हो ? मैंने कहा नहीं राजन्। मैं तो प्रवीणराय की वाणी का प्रत्यक्ष वर्णन कर रहा हूँ।

उदाहरण (२)

कवित्त

कारे सटकारे केश, लोनी कछु होनी बैस,
सोने ते सलोनी दुति देखियत तन की।
आछे आछे लोचन, चितौनि औ चलनि आछी,
सुख मुख कविता विमो है मति मन की।
'केशौदास' केहूँ भाग पाइये जो बाग गहि.
सांसनि उसासैं साध पूजै रति रन की।
बटी काहू गोप की बिलोकी प्यारे नन्द लाल ?
नाहीं लोल लोचनी ! बड़वा बड़े पन की ॥८३॥

उसके काले सटकारे (लम्बे) केश (बाल अथवा गर्दन पर के बाल) हैं, वह लोनी (सुन्दर) है, और होनहार वयस की है अर्थात् युवती होने वाली है। उसके शरीर की चमक सोने जैसी दिखलाई पड़ती है। उसके अच्छी अच्छी आँखें है, चितवन और चाल भी अच्छी है। सुख-मुख सुन्दर मुख वाली अथवा मुख से सुख देने वाली) है। उसकी कविता (काव्य अथवा लगाम चबाने की ध्वनि) बुद्धि और मन को हर लेती है। (केशवदास श्रीकृष्ण की ओर से कहते हैं कि) यदि किसी तरह भाग्य वश उसे बाग में पकड़ पाऊँ (अथवा किसी प्रकार भागकर लगाम पकड़ पाऊँ) तो एक सांस में मेरे रति-रण (रति रूपी रण अथवा रण के प्रति प्रेम) की साध (इच्छा) पूरी हो जाय। श्रीकृष्ण की इन बातों को सुनकर श्री राधिका जी ने पूछा कि 'हे प्यारे नन्द लाल ! क्या आपने किसी गोप की बेटी को देखा है, जिसका वर्णन कर रहे हो ?' उन्होंने उत्तर दिया— 'नहीं ! चंचल नेत्र वाली ! मैं तो किसी बहुमूल्य घोड़ी का वर्णन कर रहा हूँ।'

—:❀:—

बारहवाँ प्रभाव

२१—उक्ति अलंकार

दोहा

बुद्धि विवेक अनेक विधि उपजत तर्क अपार।
तासों कविकुल युक्ति कहि, बरणत बिविध प्रकार ॥ १ ॥

बुद्धि और विवेक आदि के बल पर जहाँ अनेक तर्क उपस्थित किये जा सकें, वहाँ कविगण उसे 'युक्ति' अलङ्कार कहकर अनेक प्रकार से वर्णन करते हैं।

'युक्ति' अलंकार के भेद

दोहा

बक्र अन्य. व्यधिकरण कहि, और विशेष समान।
सहित सहोकति में कही, उक्ति सु पंच प्रमान ॥ २ ॥

वक्रोक्ति, अन्योक्ति, व्याधिकरणोक्ति, विशेषोक्ति और सहोक्ति ये पाँच भेद उक्ति अलङ्कार के कहे गये हैं।

१—वक्रोक्ति

दोहा

केशव सूधी बात में, बरणत टेढ़ो भाव।
वक्रोकति तासों कहत, सदा सबै कविराव ॥ ३ ॥

'केशवदास' कहते हैं कि जहाँ सीधी-सरल बात में टेढ़े अथवा गूढ़ भाव प्रकट किये जाते हैं, वहाँ सभी कविलोग 'वक्रोक्ति' कहा करते हैं।

उदाहरण (१)

सवैया

ज्यों-ज्यों हुलाससों केशवदास. विलास निवास हिये अवरेख्यो।
त्यों-त्यों बढ़्यो उर कंप कछू भ्रम. भीत भयो किधौं शीत विशेख्यो॥
मुद्रित होत सखी वरही मम नैन सरोजान सांच कै लेख्यो।
तैं जु कह्यो मुख मोहन को अरविंद सोहै. सोतो चन्द सो देख्यो ॥२॥

'केशवदास (किसी खंडिता की ओर से उसी सखी से) कहते हैं कि मैंने जैसे-जैसे विलास-निवास (श्री कृष्ण) को हृदय से देखा, वैसे-वैसे मेरे हृदय में कंप बढ़ गया। मैं नहीं जानती कि वह भ्रम वश ऐसा हुआ, या मुझे डर लग गया या विशेष शीत लग गया मेरी कमल जैसी आँखें बरबस मुँदी जा रही हैं। मैंने तो तेरा कहना सच मान लिया था कि मोहन (श्रीकृष्ण) का मुख कमल सा है परन्तु अब देखा तो उसे चन्द्र जैसा पाया (अन्यथा यह बात न होती तो मेरी आँखें उन्हें देखकर क्यों मुंद जाती, क्योंकि चन्द्रमा को देखकर ही कमल मुदता है)।

(गूढ़ भाव यह छिपा हुआ है कि उनके मुख पर अन्य स्त्री के काजल आदि के चिन्ह हैं. इसीसे मैंने उनकी ओर से मारे क्रोध के आँखें बन्द करलीं)

उदाहरण (२)

सवैया

अंग अली धरिय अंगियाऊ न आजु तें नींद न आवन दीजै।
जानति हौ जिय नाते सखीन के, लाज हू को अब साथ न लीजै॥
थोरेहि द्यौस तें खेलन तेऊ लगीं. उनसो जिन्हें देखि कै जीजै।
नाह के नेह के मामिले आपनी छांहहु को परतीति न कीजै॥ ५॥

हे सखी ! मन होता है कि आज से अंगिया न पहनूँ और नींद को भी पास में न आने दूँ और सखी के नाते लज्जा को भी साथ में न लूँ (क्योंकि ये भी स्त्री वर्ग की हैं, कहीं पति से मेल न कर लें । (क्योंकि मैं देखती हूँ कि) थोड़े दिनों से वे सखियाँ भी उनसे प्रेम करने लगीं हैं, जिन्हें देख देखकर मैं जिया करती थी अर्थात् जिन्हें प्राणों के समान प्यारा समझती थी । इसीलिये अब यह सिद्धान्त स्थिर किया है कि) प्रेम के मामले में (सखी तो सखी) अपनी छांह तक का विश्वास नहीं करना चाहिए (क्योंकि सम्भव है वह भी प्राणों से प्यारी सखियों की भाँत धोखा दे जाय)

[इसमें गूढ़ व्यंग्य द्वारा अपनी सखी के प्रति क्रोध प्रकट करती हुई संकेत करती है कि तेरी अंगिया फटी है तू रात भर सोई नहीं, तू निर्लज्ज है और तेरी छाया भी मलिन जान पड़ती है]

२—अन्योक्ति

दोहा

औरहि प्रति जु बखानिये, कछू और की बात ।
अन्य उक्ति यह कहत हैं, बरणत कवि न अघात ।। ६ ।।

जहाँ किसी दूसरे की बात किसी दूसरे के प्रति कहकर प्रकट की जाती है, वहाँ 'अन्योक्ति' कहते हैं, जिसका वर्णन करते-करते कविलोग कभी तृप्त नहीं होते ।

उदाहरण

सवैया

दल देखौ नहीं जड़ जाड़ो बड़ो, अरु घाम घनो जल क्यों हरिहै ।
कहि केशव बावु बहै, दिन दाव, दहै धर धारज क्यों धरिहै ।।
फलहै फुलि है नहीं तोलौ तुहीं, कहि सो पहि भूख सही परिहै ।
कछु छांह नहीं सुख शोभा नहीं रहि कीर करील कहा करिहैं ।। ७ ।।

इस करील के वृक्ष में कभी पत्ते नहीं देखे। यह बड़ा जाड़ा, घाम और वर्षा से कैसे बचावेगा? केशवदास कहते हैं कि जब दिन प्रतिदिन प्रचंड वायु चलेगी और दावाग्नि जलेगी, तब तू कैसे धैर्य धारण करेगा? जब तक यह फले फूलेगा नहीं तब तक तू ही बता, तुझसे भूख कैसे सही जायगी? इसमें न तो कुछ छाया है, न सुख है और न शोभा है, अतः हे सुग्गे! तू करील पर रहकर क्या करेगा?

[इसमें तोते को लक्ष्य करके, ऐसे व्यक्ति के प्रति संकेत किया गया है, जो किसी ऐसे व्यक्ति की सेवा करता है, जो साधन सम्पत्ति हीन है, अतः उससे सुख पाना व्यर्थ है]

३—व्याधिकरणोक्ति

दोहा

औरहि में कीजै प्रकट, औरहि को गुण दोष।
उक्ति यहै व्यधिकरन की, सुनत होत संतोष॥ ८॥

जहाँ किसी और का गुण-दोष किसी और में प्रकट किया जाता है वहाँ व्याधिकरण उक्ति होती है, जिसे सुनकर संतोष होता है।

उदाहरण (१)

कवित्त

जानु, कटि, नाभि कूल, कंठ पीठ, भुजमूल,
उरज करज रेख रेखी बहु भाँति है।
दलित कपोल, रद ललित अधर रुचि,
रसना-रसित रस, रोस में रिसाति है।

लेटि लेटि लौट पौटि लपटाति बीच बीच,
हां हां, हूँ हूँ, नेति, नेति बाणी होति जाति है।
आलिंगन अंग अंग पीड़ियत पद्मिनी के,
सौतिन के अंग अंग पीड़नि पिराति है॥ ९॥

जंघा, कमर, नाभि, कण्ठ पीठ, भुजामूल तथा उरोजों में नखों के चिन्ह अनेक भाँति किये गये हैं। कपोल दलित हैं, ओठों पर दाँतों की शोभा है। जीभ से तत्कालीन ध्वनियों का आनन्द लेती है और बनावटी रोष भी प्रकट करती है। बार-बार लेट-लेटकर और उलट-पलटकर हां, हां, हूँ, हूँ तथा नहीं, नहीं की ध्वनि भी करती जाती है। उधर तो पद्मिनी नायिका के अग अंग आलिंगन से पीड़ित किये जा रहे हैं और इधर सौतों के अंग मर्दन से पीड़ित होते हैं।

[इसमें दोष तो नायिका का है पर अंग सौतों के पीड़ित होते हैं अतः और का दोष और में प्रकट किया गया है]

उदाहरण (२)

कवित्त

राजभार, रजभार, लाजभार, भूमिभार,
भवभार, जयभार, नीके ही अटतु हैं।
प्रेमभार, पनभार, केशव सम्पत्तिभार,
पतिभार युत अति युद्धनि जुटतु हैं।
दानभार, मानभार, सकल सयान भार,
भोगभार, भागभार, घटना घटतु हैं।
ऐते भार फूल सम राजे राजा रामसिर,
तेहि दुःख शत्रुन के शीरष फटतु हैं॥ १०॥

राज्य का भार, क्षत्रियपन का भार, भूमि का भार, संसार का भार विजय का भार अच्छी तरह उठाये रहते हैं। प्रेम का भार प्रतिज्ञा का भार, केशवदास कहते हैं कि सपत्ति का भार, मर्यादा का भार उठाते हुए युद्धों में भी भिड़ जाते हैं। दान का भार, मान का भार, सभी गुणों का भार, भोग का भार और लोगों के भाग्यों का भार सहन करते हुए भी काम करते रहते हैं। राजाराम तो अपने सिर इतने भारों को फूल के समान सरलता पूर्वक वहन करते हैं और शत्रुओं के शिर फटते हैं।

उदाहरण—३

सवैया

पूत भयो दशरत्थको केशव, देवन के घर बाजी बधाई।
फूलिकै फूलनको बरषै, तरु फूलि फलै सबही सुखदाई॥
क्षीर बही सरिता सब भूतल, धीर समार सुगंध सुहाई।
सर्वसु लोग लुटावत देखि कै, दारिद देह दरारसी खाई॥११।

'केशवदास' कहते हैं कि राजा दशरथ के पुत्र हुआ तो देवताओं के घर बधाई बजने लगी। पेड़ फूल, फूलकर फूल बरसाने लगे और सभी को आनन्द देने लगे सभी नदियों दूध की धारा बहाने लगीं और मन्द वायु सुगंधित हो गई इस तरह लोगों को सर्वस्व लुटाते देख, दरिद्रता के शरीर में दरारें सी हो गई।

[इसमें दूसरे के गुणों से दूसरे के दोषों का वर्णन है, अतः व्याधिकरणोक्ति है]

उदाहरण—४

दोहा

होय हँसी औरनि सुनै, यह अचरज की बात।
कान्ह चढ़ावत चंदनहिं, मेरो हियो सिरात॥१२॥

यस आश्चर्य की बात सुनकर दूसरों को हँसी आवेगी कि श्रीकृष्ण तो चन्दन लगाते हैं और उससे मेरा हृदय शीतल होता है।

उदाहरण—५

सोरठा

दिये सोनारन दाम, रावर को सोनो हरौ।
दुख पायो पतिराम, प्रोहित केशव मिश्रसों ॥१३॥

रनिवास का सोना तो पतिराम सुनार ने चुराया और दाम दूसरे सुनारों को दण्ड स्वरूप देने पड़े। राजा का अधिक प्रेम तो केशव मिश्र पर है, पर दुख पतिराम सुनार को होता है।

[उक्त दोनों दोहों तथा सोरठे में और के गुणदोष से और के गुणदोष का वर्णन है अतः व्याधिकरणोक्ति अलङ्कार है]

४—विशेषोक्ति

दोहा

विद्यमान कारण सकल, कारज होइ न सिद्ध।
सोई उक्ति विशेषमय, केशव परम प्रसिद्ध ॥१४॥

'केशवदास' कहते हैं जहाँ सभी कारणों के रहते हुए भी, कार्य की सिद्धि न हो, वही परम प्रसिद्ध विशेषोक्ति है।

उदाहरण (१)

सवैया

कर्ण से दुष्ट ते पुष्ट हुते भट, पाप और कष्ट न शासन टारे।
सोदरसैन कुयोधन से सब, साथ समर्थ भुजा उसकारे॥
हाथी हजारन के बल केशव, खैंचि थके पट को डरडारे।
द्रौपदी को दुःशासन पै तिल, अंग तऊ उघरयो न उघारे ॥१३॥

कर्ण जैसे दुष्ट से भी अधिक दुष्ट बहुत से योद्धाथ, पाप और कष्ट भी जिनके शासन को नहीं टालते थे अर्थात् उनकी अवज्ञा नहीं करते थे और आज्ञानुसार चलते थे दुर्योधन जैसे सब भाइयों का दल भी, बाहें उसकाये हुए साथ था केशवदास कहते हैं कि हजारों हाथियों के बल से, निडरता के साथ, वस्त्र को खींचते खींचते थक गया, परन्तु दुःशासन से, द्रौपदी का तिल-भर अंग भी उघारे नहीं उघरा।

उदाहरण—२

कवित्त

सिखै हारी सखी, डरपाय हारी कादंबिनी
    दामिनि दिखाय हारी, दिसि अधिरात की।
झुकि झुकिहारी रति, मारि मारि हारयो मार,
    हारी झकझोरति विविध गति बात की।
दई निरदई दई वाहि ऐसी काहे मति,
    आरति जु ऐन रैन दाह ऐसे गात की।
कैसेहू न मानै, हौं मनाइहारी 'केशौदास'
    बोलिहारी कोकिला, बोलायहारी चातकी ॥१६॥

सखी सिखा सिखाकर हार गई, मेघमाला डरा-डराकर हार गई, और बिजली आधी रात के समय दिशाओं को दिखला दिखलाकर हार गई। रति बेचारी झुक झुककर (निहोरे करते, करते) हार गई, कामदेव मार-मारकर (आक्रमण कर, करके) हार गया और वायु की गति की अनेक विधियाँ (शीतल, मन्द, और (सुगंध) झकझोर, झकझोर कर हार गई। हे निर्दयी दैव! ऐन रात में, अपने ऐसे शरीर को कष्ट देने की बुद्धि क्यों दे दी? केशयदास (सखी की ओर से) कहते

हैं कि वह किसी प्रकार भी मनाये नहीं मानती, मैं मना, मनाकर हार गई। कोयल बेचारी कूक कूककर हार गई और चातकी बुलाने की चेष्टा कर, करके हार गई (पर उस पर असर नहीं हुआ)

[यहाँ सभी कारणों के रहते हुए भी कार्य सिद्ध नहीं होता अतः विशेषोक्ति हुई]

उदाहरण—३

सवैया

कर्ण कृपा द्विज द्रोण तहाँ, तिनको पन काहू पै जाय न टारयो।
भीम गदाहि धर धनु अर्जुन, युद्ध जुरे जिनसों यम हारयो॥
केशवदास पितामह भीषम, माच करी वश लै दिशि चारयो।
देखतहा तिनके दुरयोधन द्रौपदी, सामुहे हाथ पसारयो॥१७॥

कर्ण, कृपाचार्य और द्रोणाचार्य, जैसे वीर जिनका व्रत किसी के हटाये नहीं हटता था, विद्यमान थे। गदाधारी भीम तथा धनुधारी अर्जुन सरीखे भी थे जिनसे युद्ध करने पर यम भी हार जाते थे। 'केशवदास' कहते हैं कि भीष्म पितामह जैसे वीर, जिन्होंने चारों ओर मृत्यु तक को वश में कर लिया था विद्यमान थे परन्तु इन सबों के देखते-देखते दुर्योधन ने द्रौपदी के आगे हाथ फैला ही दिया।

[अनेक प्रबल कारण द्रौपदी के आगे हाथ फैलाने के कार्य को न रोक सके अतः विशेषोक्ति हुई]

उदाहरण—४

सवैया

वेई हैं बान बिधान निधान, अनेक चमू जिन जोर हईजू।
वेई हैं बाहु वहै धनु धीरज, दीह दिशा जिन युद्ध जईजू॥
वेई हैं अर्जुन आन नहीं जगमें, यशकी जिनि बेलि बईजू।
देखतही तिनके तब कोलनि, नीकहि नारि छिनाय लईजू॥१८॥

अर्जुन के पास वे ही अनेक विधानों से चलनेवाले वाण थे, जिनसे उन्होंने कई सेनाओं को बल पूर्वक मारा था। वे ही भुजाएँ थी, वही धनुष था और वही धैर्य था जिससे युद्ध में उन्होंने चारों दिशाएँ जीत ली थी। यह वही अर्जुन थे, कोई दूसरे नहीं, जिन्होंने संसार में यश की बेल बोदी थी। परन्तु उनके देखते-देखते (श्री कृष्ण के परिवार की) स्त्रियों को (हस्तिनापुर जाते समय) भीलों ने छीन ही लिया।

[यहाँ भी प्रबल कारणों के रहते हुए भी कार्य सिद्ध नहीं हुआ, अतः विशेषोक्ति है]

उदाहरण—५

दोहा

तुला, तोल, कसवान बनि, कायथ लखत अपार।
राख भरत पतिराम पै, सोनो हर्रति सुनार ॥१९॥

कोई तराजू लेकर, कोई बाट लेकर, कोई कसौटी लेकर अनेक कायस्थ देख भाल करते रहते हैं परन्तु पतिराम सुनार की स्त्री राख भरते समय, सोना चुराही ले जाती है।

[यहाँ भी प्रबल कारणों के रहते हुए भी कार्य सिद्ध नहीं होता अतः विशेषोक्ति है]

५—सहोक्ति

दोहा

हानि वृद्धि शुभ अशुभ कछु, करिये गूढ़ प्रकास।
होय सहोक्तिसु साथहीं, वर्णत केशवदास ॥२०॥

केशवदास कहते हैं कि जहाँ हानि, वृद्धि, शुभ, अशुभ गूढ़ या प्रकट कुछ भी वर्णन करते समय साथ ही एक और घटना का वर्णन रहे, वहाँ 'सहोक्ति' होती है।

उदाहरण

कवित्त

शिशुता समेत भई, मन्दगति चरनंनि,
गुणन सों बलित, ललित गति पाई है।
भौंहन की होड़ा होड़ी ह्वै गई कुटिल अति,
तरी बानी मेरी रानी सुनत सुहाई है।
'केशौदास' मुखहास हिसखै ही कटितर,
छिन छिन सूछम छबीली छवि छाई है।
बार बुद्धि बारन के साथ ही बढ़ी है बीर,
कुचनि के साथ ही सकुच डर आई है।।२१।।

शिशुता के सान ही साथ तेरे चरणों की गति भी मन्द पड़ गई है और गुणों के साथ ही तुझ में सुन्दर चाल भी आ गई है हे मेरी रानी (सखी)। भौंहों की स्पर्द्धा के साथ ही तेरी वाणी भी कुटिल हो गई है। केशवदास (उस सखी की ओर से) कहते हैं कि हास्य की होड़ करते करते तेरी कमर भी क्षण क्षण पतली होती जा रही है और हे सखी ! बाल-बुद्धि (भोलापन) के साथ ही साथ तेरे बाल भी बढ़े हैं तथा कुचों के साथ ही साथ तेरे हृदय में सकुच भी आ गई है।

२२—२३ व्याज स्तुति-निन्दा

दोहा

स्तुति निंदा मिस होय जहँ स्तुतिमिस निंदा जानि।
व्याजस्तुति निन्दा यहै, केशवदास बखानि।।

केशवदास कहते हैं कि जहाँ निन्दा के बहाने स्तुति और स्तुति बहाने निन्दा की जाती है, वहाँ 'व्याज स्तुति' और 'व्याज निन्दा' अलङ्कार कहा जाता है।

उदाहरण

कवित्त

शीतलहू हीतल तुम्हारे न बसति वह,
तुम न तजत तिल ताको उर ताप गेहु।
आपनो ज्यौं हीरा सो पराये हाथ ब्रजनाथ,
दैकै तो अकाथ साथ मैन ऐसो मन लेहु।
एते पर 'केशौदास' तुम्हैं परवाह नाहिं,
वाहै जक लागी भागी भूख सुख भूल्यो गेहु।
मांड़ो मुख छांड़ों छिन छल न छबीले लाल,
ऐसी तो गँवारिन सों तुमही निबाहौ नेहु॥२३॥

(कोई दूती श्रीकृष्ण से आकर कहती है कि) वह तो तुम्हारे शीतल हृदय में भी नहीं रहती और तुम उसके तप्त हृदय-निवास को एक घड़ी भर को नही छोड़ते अर्थात् तुम्हारे हृदय में उसके प्रति प्रेम की गर्मी नहीं है और तुम उसके विरह से जलते हुए हृदय में सदा रहते हो ! हे ब्रजनाथ। तुम अपना हीरा सा मन पराये हाथ में देकर उसका मोम जैसा मन व्यर्थ ही लेते हो अर्थात् तुम हीरा के समान कठोर मन रखते हो और वह मोम जैसा कोमल मन रखती है। केशवदास (दूती की ओर से) कहते हैं कि इतने पर भी तुम्हें अपने हीरा जैसे मन की परवाह नहीं है और उसे अपने मोम जैसे मन की ऐसी धुन लग गई है कि तुम्हारे पास उसके मन के आ जाने से उसकी भूख भाग गई है, घर और सुख भी भूल गया है। वह

मुख से तो प्रशसा करती है, पर क्षण भर के लिए भी छल नहीं छोड़ती। हे छबीले लाल ! ऐसी गँवारिन से तुम्हीं प्रेम निबाहते हो। दूसरा अर्थ यह भी निकल सकता है कि वह तो ऐसी गँवारिन नहीं है (ऐसी गँवारिन सो) तुम्ही प्रेम को नहीं निबाहते (तुम ही न बाहो नेहु)।

[इसमें ऊपर से श्रीकृष्ण की प्रशंसा जँचती है पर है वास्तव में निन्दा। उधर नायिका की निन्दा प्रतीत होती है पर है वास्तव में स्तुति]

उदाहरण

व्याजस्तुति

कवित्त

केसर, कपूर, कुंद, केतकी, गुलाब लाल,
सूधत न चंपक चमेली चारु तोरी हैं।
जिनकी तू पासवान बूझियत, आस पास,
ठाढ़ीं 'केशौदास' किन्हीं भय भ्रम भोरी हैं।
तेरी कौनो कृति किधौं सहज सुबास ही ते,
बसि गई हरि चित कहूँ चोरा चोरी हैं।
सुनहि ! अचेत चित, आई यह हेत, नाहीं,
तोसो ग्वारि गोकुल में गोबरहारी थोरी हैं।

जब से तेरी देह की सुगन्ध पाली है, तब से लाल (श्रीकृष्ण) केसर, कपूर, कुन्द, केतकी और गुलाब को सूंघते तक नहीं और सुन्दर चमेलियों को तो उन्होंने तोड़कर फेंक दिया है। केशवदास (सखी की ओर से) कहते हैं कि तू जिनकी दासी जैसी जान पड़ती

है, ऐसी बहुत सी सुन्दरियाँ उनके आस पास भय और भ्रम में विमूढ़ होकर खड़ी हैं। यह तेरा ही कोई जादू है या स्वाभाविक सुबास ही के कारण तू ही श्री कृष्ण के चित्त में चुपचाप बस गई है ? सुन ! वह अचेत पड़े हैं इसीलिए आई हूँ. नहीं तो क्या तेरी जैसी गोबर बीनने वाली ग्वालिनें गोकुल गाँव में कम है ?

उदाहरण

कविच

जानिये न जाकी माया मोहित गिलेहिं माझ,
एक हाथ पुन्य, एक पाप को बिचारिये।
परदार प्रिय मत्त मातंग सुताभिगामी,
निशिचर को सो मुख देखो देह कारिये।
आज लौं अजादि राखे बरद विनोद भावै,
एते पै अनाथ अति केशव निहारिये।
राजन के राजा छांड़ि की जतु तिलक ताहि.
भीषम सों कहा कहौं पुरुष न नारिये।२५॥

(जब भीष्म के कहने से श्रीकृष्ण को तिलक करने का विचार पक्का कर लिया गया तब शिशुपाल कहता है कि) जिसकी माया कुछ समझ में नहीं आती और जिनकी माया बीच ही में लोगों को मोह लेती है, तथा जिसके हाथ में पुण्य और एक में पाप रहता है। जो परदार प्रिय है (पराई स्त्रियां) का प्रेमी है. मतवाले मातंग नामक चांडाल के पुत्र के पास जाता आता रहता है। जिसका निश्चर जैसा काला मुख है और देखो, निश्चर ही जैसा काल शरीर है। जो आज तक बकरियों को रखाता रहा और जिसे बैलों के साथ खेलना ही अच्छा लगता रहा। केशवदास (शिशुपाल की ओर से) कहते

हैं कि इतने पर भी अति अनाथ ही दिखलाई पड़ा, क्योंकि यह तनिक भी भूमि का नाथ नहीं रहा । इतने पर राजाओं के राजा को छोड़कर इसका तिलक कराते हैं । मैं उन भीष्म से भला क्या कहूँ जो पुरुष हैं न स्त्री हैं ।

[यह श्रीकृष्ण की निन्दा है, इसी में उनकी स्तुति का भाव भी निकलता है, वह इस प्रकार है —]

जिनकी माया समझ में नहीं आती और चक्कर में डाल देती है । जो एक हाथ से पुण्य और एक हाथ में पाप कर्मों को विचारते हैं । जो लक्ष्मी के प्यारे हैं, गजेन्द्र को बचाने वाले हैं । जिनका चन्द्रमा सा मुँह है और जो सब जीवों की देह का बनानेवाले हैं । आज तक जो ब्रह्मादि देवताओं की रक्षा करते आये और जो वर देने वाले हैं तथा जिन्हें विनोद ही अच्छा लगता है । इतने पर भी नाथ रहित हैं अर्थात् उनका कोई स्वामी नहीं है और क्षीर समुद्र में सोने वाले हैं । अतः राजाओं को छोड़कर जो इन देव पुरुष को राज तिलक दिलवाने की बात भीष्म कहते हैं उनकी प्रशंसा मैं क्या करूँ क्योंकि ये कृष्ण न तो पुरुष हैं और न स्त्री (क्योंकि ब्रह्म तो नपुँसक माना गया है)

२४—अमित अलङ्कार

दोहा

जहां साधनैं भोगई, साधक की शुभ सिद्धि ।
अमित नाम तासों कहत, जाकी अमित प्रसिद्धि ॥२६॥

जहाँ पर साधक (कार्य को करने वाले) की सफलता का श्रेय साधन (जिसके द्वारा कार्य हो) भोगता है उसको अमित प्रसिद्धि वाले अर्थात् विख्यात पुरुष 'अमित' अलङ्कार कहते हैं ।

उदाहरण (१)

सवैया

आनन सीकर सोक हियेकत ? तोहित ते अतिआतुर आई।
फीको भयो सुखही मुखराग क्यों ? तेरे पिया बहुबार बकाई॥
प्रीतमको पट क्यों पलटयो ? अलि, केवल तेरी प्रतीति कौ ल्याई।
केशव नीकेहि नायक सों रमि नायका बातनहीं बहराई॥ २७॥

मुँह पर पसीने की बूंदे और हृदय में लंबी उसासें क्यों हैं ? इस लिए कि तेरे लिए दौड़ती हुई आई हूँ। तेरे मुख का राग सरलता से फीका कैसे पड़ गया ? क्योंकि तेरे पति ने मुझे अनेक बार बकवाया है। मेरे प्रियतम का वस्त्र तुझसे कैसे बदल गया ? हे सखी इसे तो मैं तेरे विश्वास के लिए लाई हूँ। 'केशवदास' कहते हैं इस तरह से उसके पति के साथ स्वयं रमण करके, बेचारी नायिका को बातों ही बातों में बहला दिया।

[इसमें जो सिद्धि नायिका को मिलनी चाहिए थी, वह उसकी सखी को मिल गई अतः अमित अकलंार है]

उदाहरण (२)

सवैया

को गनै कर्ण जगन्मणिसे नृप, साथ सबै दल राजनहीं को।
जानै को खान किते सुलतानसो, आयो शहाबुदीं शाह दिलीको॥
ओड़छे आनि जुरयो कहि केशव, शाहि मधूकरसों शँक जीको।
दौरिकै दूलह राम सुजीति, करयो अपने शिर कीरति टीको॥२८॥

जगतमणि कर्ण से राजाओं को कौन गिने ? उसके साथ तो राजाओं का पूरा दल ही था। ज्ञात नहीं कितने खान और सुलतानों को साथ लेकर, दिल्ली का शहाबुद्दीन लड़ने आया था। 'केशवदास' कहते हैं

कि जिससे राजा मधुकर शाह को अपने प्राणों की शंका थी वहा शहाबुद्दीन ओड़छे पर आकर डट गया। यह सुनते ही दूलहराम ने दौड़कर उसे जीत कर अपने सिर कीर्त्ति का टीका ले लिया।

[यहाँ साधक मधुकरशाह को कीर्त्ति न मिलकर साधन दूलहराम को कीर्त्ति प्राप्त हुई अतः अमित अलंकार हुआ]

२५ पर्यायोक्ति

दोहा

कौनहुँ एक अदृष्टत, अनहीं किये जु होय।
सिद्ध आपने इष्टकी, पर्यायोकति सोय ॥

जहाँ अपने इष्ट की सिद्धि, किसी अदृष्ट कारण से, बिना प्रयत्न किए, हो जाय, वहाँ, पर्यायोक्ति होता है।

उदाहरण

कवित्त

खेलत ही सतरंज अलिन में, आपहि ते,
तहाँ हरि आये किधौं काहू के बोलाये री।
लागे मिलि खेलन मिलै कै मन हरें हरें,
देन लागे दाउं आपु आपु मन भाये री।
उठि उठि गईं मिस मिसहीं जितहीं तित,
'केशौदास' कि सौं दोऊ रहे छवि छायेरी।
चौंकि-चौंकि-तेहि छन राधा जू के मेरी आली,
जलज से लोचन जलद से ह्वै आयेरी।

राधा जी सखियों में सतरंज खेल रही थीं। इतने में श्रीकृष्ण या तो स्वयं या किसी के बुलाये हुए वहां आपहूँचे। वहां फिर मिलकर

खेलने लगे और धीरे धीरे मन मिलाकर अपना दांव भी देने लगे। इसी बीच में किसी न किसी बहाने से सब सखियाँ उठगई और ईश्वर की सौगन्ध दोनों छबीले (श्रीकृष्ण और श्रीराधा) ही रह गये। हे मेरी सखी! उस समय राधा जी की कमलवत् आँखें चौंक चौंककर बादल सी हो आई। (भाव यह है कि उनके आनन्दाश्रु आने लगे)

[यहाँ बिना यत्न किये ही अचानक कार्य-सिद्धि हुई है, अतः पर्यायोक्ति अलंकार है)

२६ युक्ति अलंकार

दोहा

जैसो जाको बुद्धि बल, कहिये तैसो रूप।
तासों कविकुल युक्ति यह, बरणत बहुत सुरूप॥

जिसका जैसा बुद्धि-बल हो, उसको वैसाही वर्णन करने को कवि लोग 'युक्त' कहते हैं।

उदाहरण

कवित्त

मदन बदन लेत लाज को सदन देखि
यदपि जगत जीव मोहिबे को है छमी।
कोटि कोटि चन्द्रमा निबारि! बारि बारि डारों,
जाके काज ब्रजराज आज लौं हैं संयमी।
'केशौदास' सविलास तेरे मुख की सुबास,
सुनियत आरस ही सारसनि लैरमी।
मित्रदेव, छिति, दुर्ग, दंड, दल, कोष, कुल.
बल जाके ताके कहौ कौन बात की कमी॥३०॥

हे प्यारी ! यद्यपि कामदेव सारे संसार को जीतने में समर्थ है, तथापि तेरे लज्जा से भरे मुख की वह प्रशंसा करता है। मैं तेरे मुख पर करोड़ों चन्द्रमा को निछावर कर डालूं जिस मुख के लिए श्रीकृष्ण आजतक संयमी हैं अर्थात् नियम किए हुए हैं कि दूसरा मुख न देखूंगा। केशवदास (सखी की ओर से) कहते हैं कि ऐसा सुना जाता है कि तेरे आलस के कारण तेरे मुख की सुगन्ध को कमल ले भागे हैं। उन कमलों के पास मित्र (सूर्य) जैसे हित्, पृथ्वी, दुर्ग, दंड, दल, कोष और कुल तथा बल सभी कुछ तो है, न जाने उन्हें किस बात की कमी थी (जो मुख बास चुराई)।

—:❀:—

तेरहवाँ प्रभाव

२७—समाहित अलंकार

दोहा

हेतु न क्यों हूँ होत जहँ, दैवयोग तें काज।
ताहि समाहित नाम कहि, बरणत कविशिरताज ॥ १ ॥

जो कार्य किसी प्रकार भी न हो रहा हो, वह दैव योग से अचानक हो जाय, तब कवि शिरोमणि उसे 'समाहित' अलङ्कार कहकर वर्णन करते हैं।

उदाहरण (१)

कवित्त

छवि सों छबीली वृषभानु की कुँवरि आजु,
रही हुती रूप मद मान मद छकि कै।
मारहू ते सुकुमार नन्द के कुमार ताहि,
आये री मनावन सयान सब तकि कै।
हँसि, हँसि, सौंहैं करि-करि पाँय परि-परि,
'केशौराय' की सौं जब रहे जिय जकि कै।
ताही समै उठे घनघोर घोरि, दामिनी सी,
लागी लौटि श्याम घन उर सौं लपकि कै ॥२॥

हे सखी! आज छवि (शोभा) से छबीली वृषभानु की बेटी राधा, अपने रूप के मद में मान किये बैठी थी इतने में कामदेव से भी सुकुमार नन्द के कुमार (श्रीकृष्ण), चतुराई से, अवसर

देखकर, उसे मनाने आये। हँस हँसकर, शपथ खा-खाकर और पैरों पड़ पड़कर, ईश्वर की सौगन्ध, जब वह थक गये, तब उसी समय घनघोर बादल उठे और वह बिजली की भाँति लपक घनश्याम से लपट गई।

[इसमें दैव योग से अचानक कार्य हो गया, अतः समाहित अलङ्कार है]

उदाहरण (२)

सवैया

सातहु दीपनि के अवनीपति हारि रहे जियमें जब जाने।
बीस बिसे व्रत भंग भयो, सु कह्यो अब केशव को धनु ताने।
शोक कि आगि लगी परिपूरण, आइगये घनश्याम बिहाने।
जानकी के जनकादिक केशव फूलि उठे तरु पुण्य पुराने॥ ३॥

'केशवदास कहते हैं कि जब सातों द्वीपों के राजा लोग हार गये, तब उन्होंने (राजा जनक ने) अपने मनमें कहा कि 'अब मेरी प्रतिज्ञा पूरी तरह से भंग होना चाहती है क्योंकि अब धनुष को कौन खींचेगा।' उनके मनमें शोकाग्नि पूरी तरह से लगी हुई थी कि उसी समय घनश्याम (यहाँ श्रीराम) आ पहुँचे और उनके आते ही जानकी जी तथा जनकादि के पुराने पुण्य-तरु फूल उठे अर्थात् उनकी इच्छा पूरी हुई।

२९—सुसिद्धालङ्कार

दोहा

साधि-साधि औरै मरैं, औरै भोगै सिद्धि।
तासों कहत सुसिद्धि सब, जे हैं बुद्धि समृद्धि॥ ४॥

जहाँ कार्य कर करके तो कोई और मरे और उसकी सफलता कोई दूसरा भोगे उसे समृद्धि-बुद्धि (बुद्धिमान्) सुसिद्धालङ्कार कहते हैं।

उदाहरण (१)

सवैया

मूलनिसों फल फूल सबै, दल जैसी कछू रसरीति चलीजू।
भाजन, भोजन, भूषण भामिनि भौन भरी भव भांति भलीजू॥
डासन, आसन, वास निवास, सुवाहन यान विमान थलीजू।
केशव कैकै महाजन लोग, मरैं भुव, भोगवै न भोग बलीजू॥ ५॥

मूल से लेकर फलफूल तक जैसी कुछ आनन्द के साधन प्रचलित है, वे सभी तथा पात्र, भोजन, गहने, तथा भलीँाँति भावों से भरी हुई गृह-पत्नी शैय्या, आसन, सुगन्ध, घर, सुन्दर विमानादि सवारियां आदि को (केशवदास कहते हैं कि) एकत्र कर करके महाजन मरते हैं और उनका उपभोग कोई बलवान करता है।

उदाहरण (२)

छप्पय

सरघा साँच सँचि मरै, शहर मधु पानकरत सुख।
खनि खनि मरत गँवार, कूप जल पथिक पियत सुख॥
बागवान बहिमरत, फूल बांधत उदार नर।
पचि पचि मरहिं सुआर, भूप भोजननि करत वर॥
भूषण सुनार गढ़ि गढ़ि मरहि, भामिनी भूषित करत तन।
कहि केशव लेखक लिखिमरहिं पंडित पढ़हिं पुराणगन॥ ६॥

मधु मक्खी तो शहद इकट्ठा कर करके मरती है और शहर के लोग सुख पूर्वक उसका मधु पीते हैं। गँवार तो कुआँ खोद खोदकर मरते हैं और पथिक आनन्दित होकर उसका पानी पीते हैं। बागवान फल फूल लगाकर मरता है और फूलों को उदार पुरुष बाँधते हैं। रसोईया पकवान बना बनाकर मरता है और राजा उन्हें खाते हैं। सुनार तो गहनें बना बनाकर मरता है और स्त्रियाँ उनसे अपना शरीर

State Museum
LUCKNOW.

सजाती हैं। 'केशवदास' कहते हैं कि लेखक तो पुराणों को लिख लिखकर मरता है और पंडित उसे पढ़ते हैं।

२९—प्रसिद्धालङ्कार

दोहा

साधन साधै एक भुव, भुगवै सिद्धि अनेक।
तासों कहत प्रसिद्ध सब, केशव सहित विवेक॥ ७॥

'केशवदास' कहते हैं कि जहाँ कार्य को साधने वाला तो एक हो और उसकी सिद्धि को भोगने वाले अनेक हों, वहाँ विवेकी लोग, उसे प्रसिद्ध अलङ्कार कहते हैं।

उदाहरण

सवैया

माता के मोह पिता परितोषन, केवल राम भरे रिसभारे।
औगुण एकहि अर्जुन को, छिति मंडल के सब छत्रिय मारे॥
देवपुरी कहँ औधपुरी जन, केशवदास बड़े अरु बारे।
शूकर श्वान समेत सबै हरिचन्द के सत्य सदेह सिधारे॥ ८॥

[इसका अर्थ प्रभाव के सं० में लिखा जा चुका है]

३०—विपरीतालंकार

दोहा

कारज साधक को जहाँ, साधन बाधक होय।
तासों सब विपरीत यों कहत सयाने लोय॥ ९॥

जहाँ साधक का बाधक साधन हो जाता है, वहाँ सभी चतुर लोग उसे विपरीतालङ्कार कहते हैं।

उदाहरण (१)

कवित्त

नाह ते नाहर, तिय जेबरी ते साँप करि,
घालै, घर, बीथिका बसावती बननि को।
शिवहि शिवाहू भेद पारति जिनकी माया.
माया हू न जानै छाया छलनि तिननि की।
राधा जू सौं कहा कहौं, ऐसिन की मानैं सीख
सांपिनि सहित विष रहित फननि की।
क्यों न परै बीच, बीच आंगियौ न सहि सकें,
बीच परी अगना अनेक आंगननि की।।१०॥

जो दूतियाँ पति का सिंह जैसा भयानक और रस्सी का साँप बनाकर घरों को नष्ट करके, जङ्गलों में घर बसाती हैं। जिनकी भाषा श्रीशङ्कर तथा श्री पार्वती में भी भेद करा दे सकती हैं और स्वयं माया जिनके छल-कपटों की छाया तक नहीं समझ पातीं। मैं राधा जी से क्या कहूँ, वह ऐसी स्त्रियों की शिक्षा को मानती हैं जो बिना फन की विषैली साँपिने हैं। फिर भला बीच क्यों न पड़े जो कृष्ण आंगया तक का मध्यस्थ होना नहीं सह सकते थे, उनके बीच ये अनेक आंगनों अर्थात् घरों में जाने वाली स्त्रियां पड़ी हैं।

[यहाँ दूती द्वारा मिलन होना चाहिये था, पर वही अनबन का कारण बन गई, अतः 'विपरीत' अलङ्कार है]

उदाहरण (२)

कवित्त

साथ न सहाय कोऊ, हाथ न हथ्यार, रघु,
नाथ जू के यज्ञ को तुरग गहि राख्यो ई।

काछन कछोटे सिर छोटे-छोटे काकपच्छ,
पांच ही बरस के सु युद्ध अभिलाख्यो ई।
नील नल, अंगद सहित जामवंत हनु—
मंत से अनन्त जिन नीरनिधि नाख्यो ई।
'केशौदास' दीप-दीप भूपनि स्यों रघुकुल,
कुश लव जीति कै विजय रस चाख्यो ई ॥११।

जिनके साथ में कोई सहायक न था, और न जिनके हाथों में कोई हथियार था उन्होंने श्रीरामचन्द्र के यज्ञ के घोड़े को पकड़ कर रख ही लिया। जो अभी लंगोटी ही पहते थे, जिनके घुंघराले वाल (या जुलफी) अभी छोटे छोटे थे, और जो अभी पांच ही वर्ष के थे, उन्होंने युद्ध करने की इच्छा कर ही ली। नील, नल, अंगद, जामवंत तथा हनुमान् जैसे वीर, जिन्होंने समुद्र को लांघ ही डाला था, उनके साथ ही (केशव दास कहते हैं) अन्य द्वीप द्वीपान्तरों के राजाओं के सहित श्रीरामचन्द्र जी को जीत कर, कुश और लव ने विजय रस चख ही लिया।

[कुश लव श्रीरामचन्द्र जी के सहायक न होकर बाधक हुए, अतः विपरीतालंकार है]

अथ रूपक

दोहा

उपमाही के रूपसों, मिल्यो बरणिये रूप।
ताही सों सब कहत हैं, केशव रूपक रूप ॥ १ ॥

केशवदास कहते हैं कि जहाँ पर उपमा से ही मिला हुआ उपमान का रूप वर्णित किया जाता है, वहाँ रूपक अलंकार कहते हैं।

उदाहरण

दोहा

बदन चन्द्र, लोचन कमल, बाँह पाश, ज्यों जान।
कर पल्लव, अरु भ्रू लता, बिंबाधरणि बखान॥ १३॥

जैसे मुख, और चन्द्रमा को मिलाकर मुखचन्द्र, लोचन और कमल को मिलाकर लोचन-कमल, बाँह और पाश को मिलाकर बांह-पाश, कर और पल्लव को मिलाकर कर-पल्लव भ्रू और लता को मिलाकर भ्रू लता और बिंबातथा अधर को मिलाकर बिंबाधर शब्द बनते हैं। इसी तरह औरों का भी वर्णन करना चाहिए।

रूपक के भेद

दोहा

ताके भेद अनेक सब, तीनै कहो सुभाव।
अद्‌भुत एक विरुद्ध अरु, रूपकरूपक नाव॥ १४॥

इस रूपक के कई भेद हैं पर मैं तीन भेदों का ही वर्णन करता हूँ। उनमें से एक 'अद्भुत' दूसरा 'विरुद्ध' और तीसरा 'रूपक रूपक' नाम का है।

१—अद्भुत रूपक

दोहा

सदा एकरस बरणिय, और न जाहि समान।
अद्‌भुत रूपक कहत हैं, तासों बुद्धिनिधान॥ १५॥

जहां रूपक का वर्णन करते समय कोई ऐसी विचित्रता का उल्लेख भी कर दिया जाता है कि जिसके समान दूसरी न हो, उसे बुद्धि निधान (बुद्धिमान) अद्भुत रूपक कहते हैं।

उदाहरण—३

कवित्त

शोभा सरवर मांहि फूल्यो ई रहत सखि,
राजैं राजहंसिनि समीप सुख दानिये।
"केशौदास" आसपास सौरभ के लोभ घनी.
घ्रानिनि की देवि भौंरि भ्रमत बखानिये।
होति जोति दिन दूनी, निशि में सहस गुनी,
सूरज सुहृद चारु चन्द्र मन मानिय।
रति को सदन छूइ सकै न मदन ऐसो,
कमस-वदन जग जानकी को जानिये॥ १६॥

श्री जानकीजी का मुख-कमल संसार में ऐसा है कि वह शोभा के सरोवर में सदा फूला ही रहता है। उसके पास सखियां रूपी राजहंसिनी आनन्द प्रदान करती रहती हैं। 'केशवदास' कहते हैं कि उसके आस-पास. सुगन्ध के लोभ से, भ्रमरी-रूपी घ्राण देवियां मंडराया करती हैं। उसकी दिन में दूनी और रात में सहस्र गुणी कांति बढ़जाती है क्यकि (दिन में सूर्य और (रात में श्रीराम) चंद्र उसके सुहृद होते हैं। इसको मन में सच्चा समझिए। वह रति का सदन है, परन्तु मदन (कामदेव) उसे छू भी नहीं सकता।

२—विरुद्धरूपक

दोहा

जहँ कहिये अनमिल कछू, सुमिल सकल विधि अर्थ।
सो विरुद्ध रूपक कहत, केशव बुद्धि समर्थ॥१७॥

'केशवदास' कहते हैं कि जहाँ पर अर्थ के सब प्रकार के सुमिल होने पर भी कुछ अनमिल (जो न मिलता हो) कहा जाय, वहां समर्थ-बुद्धि वाले 'विरुद्ध' रूपक कहते हैं।

उदाहरण

सवैया

सोने की एकलता तुलतोबन, क्यों बरणों सुनि सकै छ्वै।
केशवदास मनोज मनोहर ताहि, फले फल श्रीफल से वै॥
फूलि सरोज रह्यो तिन ऊपर, रूप निरूपन चित्त चलै च्वै।
तापर एक सुवा शुभ तापर, खेलत बालक खंजन के द्वै॥ १८॥

मैंने तुलसीवन अर्थात् वृन्दावन में एक सोने की लता देखी है, उउका वर्णन कैसे करूँ, क्योंकि बुद्धि वहाँ तक पहुँचती ही नहीं। 'केशवदास' कहते हैं कि उस लता में कामदेव का भी मन हरने वाले दो श्रीफल फले हुए हैं। उन श्रीफलों या वेलों पर एक कमल फूला हुआ है जिसको देखते ही चित्त द्रवीभूत हो जाता है। उसपर एक सुआ बैठा है और उस सुआपर दो खंजन के बच्चे खेल रहे हैं।

[इसमें सोने की लता, नायिका है, श्रीफल कुच हैं, कमल मुख है, सुआ नाक है और आंखें खंजन है]

३—रूपक रूपक

दोहा

रूपक भाव जहँ बरणिये, कौनहु बुद्धि विवेक।
रूपकरूपक कहत कवि, केशवदास अनेक॥ १९॥

केशवदास कहते हैं कि किसी वस्तु या भाव का रूप अपने बुद्धि-विवेक के बलपर (परम्परा से हट कर भी) किया जाता है, उसे अनेक कवि 'रूपकरूपक' कहते हैं।

उदाहरण

सवैया

काछे सितासित काछनो केशव, पातुर ज्यों पुतरीनि विचारो।
कोटि कटाक्ष चलैं गति भेद नचावत नायक नेह निनारो॥

बाजत है मृदुहास मृदंग. सुदिपति दीपन को उजियारो।
देखतहौं हरि देखि तुम्है यह, होत है आंखिनही में अखारो ॥२० ॥

हे हरि ! देखते हो, तुम्हें देखकर आँखों में ही संगीत का अखाड़ा बन जाता है। 'केशवदास' कहते हैं इस अखाड़े में काली सफेद काछनी पहने हुए पुतलियां पातुरें (वेश्याएँ) हैं। जो करोड़ों कटाक्ष हैं, वे ही गति भेद हैं। स्नेह को, नचाने वाला निराला नायक मानों। उसमें मृदुहास का मृदंग बजता है। और उसकी दीप्ति को दीपकों का उजाला मानों।

[इसमें परम्परा छोड़ कर मनमाने ढंग से वर्णन किया गया है]

३२ दीपक अलंकार

दोहा

वाचि, क्रिया, गुण, द्रव्य को, बरणहु करि इक ठौर।
दीपक दीपति कहत हैं, केशव कवि शिरमौर ॥२१ ॥

'केशवदास' कहते हैं कि जहाँ पर वर्ण्यवस्तु के अनुरूप ही उसकी क्रिया और गुण को भी समुचितस्थान पर वर्णन किया जाता है, उसे कवि शिरमौर 'दीपक' अलंकार कहते हैं।

दीपक के भेद

दोहा

दीपक रूप अनेक हैं, मैं बरणे द्वै रूप।
मणिमाला तासों कहैं, केशव सब कविभूप ॥ २२ ॥

'केशवदास' कहते हैं कि 'दीपक' के, अनेक भेद हैं, परन्तु मैंने उसके दो रूपों का ही वर्णन किया है। उन दोनों भेदों को सभी कविराज लोग (१) मणि और (२) माला कहते हैं।

१-मणि दीपक।

दोहा

बरषा, शरद, बसंत, शशि, सुभता, शोभ सुगंध।
प्रेम, पवन, भूषण, भवन, दीपक दीपकबंधु ॥ २३ ॥

इनमें एक जु वरणिये, कौनहु बुद्धि विलास।
तासों मणिदीपक सदा, कहिये केशवदास ॥ २४ ॥

'केशवदास' कहते हैं कि वर्षा, शरद, वसंत, चन्द्रमा, सौंदर्य, शोभा सुगन्ध, प्रेम, पवन, भूषण और भवन ये दीपक अलंकार के बंधु हैं अर्थात् इन्हीं के वर्णन से दीपक अलंकार का वर्णन अच्छा लगता है। इनमें से यदि एक का भी वर्णन अपनी बुद्धि के चमत्कार से किया जाय तो उसे सदा 'मणिदीपक' कहना चाहिए।

उदाहरण

कवित्त

प्रथम हरिन नैनी ! हेरि हरे हरि की सौं,
हरषि हरषि तम तेजहि हरतु हैं।
'केशौदास' आस-पास परम प्रकास सों,
बिलासिनी ! बिलास कछु कहि न परतु है।
भाँति भाँति भामिनि ! भवन यह भू षो नव,
सुभग सुभाय शुभ शोभा को धरतु है।
मानिनि ! समेत मान मानिनीनि वश कर,
मेरो दीप तेरो मन दीपत करतु है॥ २५ ॥

हे हरिण नैनी ! पहले श्रीकृष्ण के सामने को देख, प्रसन्न हो होकर तेरे मानरूपी अन्धकार को अपने तेज से हरे लेते हैं। 'केशवदास' (सखी की ओर से) कहते हैं कि हे बिलासिनी ! आसपास उनके सौन्दर्य का परम प्रकाश फैला है। उसकी शोभा कुछ कही नहीं जा सकती। हे

भामिनी ! तेरा यह भाँति भाँति से सुसज्जित और नया भवन उनकी सुन्दर स्वाभाविक शोभा धारण कर रहा है। हे मानिनी। मान समेत अनेक मानिनी नायिकाओं को वश में करने वाला मेरा यह श्रीकृष्ण रूपी दीपक तेरे मन को प्रदीप्त कर रहा है।

उदाहरण (२)

कवित्त

दच्छिण पवन दच्छि यच्छनि रमण लगि,
लोलन करत लौंग लवली लता को फरु।
'केशौदास' केसर-कुसुम-कोश रसकण,
तनु तनु तिनहू को सहत सकल भरु।
क्यों हूँ कहूं होत हठि साहस बिलासवश,
चंपक चमेली मिलि मालती सुवास हरु।
शीतल सुगन्ध मंद गति नँद नँद की सौं,
पावत कहाँ न तेज तोरिबे को मान तरु ॥२६॥

दच्छिणी पवन-रूपी यच्छिण नायक यच्छिणी स्त्रियों के रमने के स्थान-हिमालय-तक, लौंग और लवली लताओं के फलों को हिला देता है। 'केशवदास' कहते हैं कि केसर के कुसुम कोषों के जो छोटे छोटे रसकण हैं। उनका भी पूरा भार सहन करता है। कहीं-कहीं, किसी प्रकार हठपूर्वक तथा साहस से, विलाश वश होकर, चम्पक चमेली और मालती से मिलकर उनकी सुवास को हरता है। श्रीकृष्ण की शपथ, यह शीतल सुगन्ध और मंद गति वाला दच्छिण पवन, न जानें कहां से मानरूपी वृच्छ को तोड़ने की सामर्थ्य पाजाता है।

२—मालादीपक

दोहा

सबै मिलै जहँ बरणिये, देशकाल बुधिवन्त।
मालादीपक कहत हैं, ताके भेद अनन्त ॥ २७ ॥

जहाँ पर देश और काल के अनुसार बुद्धिमत्तापूर्वक अनेक बातों का वर्णन एक में मिलाकर वर्णन किया जाय, उसे माला दीपक कहते हैं। उसके बहुत से भेद है।

उदाहरण

सवैया

दीपक देहदशा सों मिलै, सुदशा मिलि तेजहि ज्योति जगावै।
जागिकै ज्योति सबै समुझै, तमशोधि सु तौ शुभता दरशावै॥
सो शुभता रचै रूपको रूपक, रूप सु कामकला उपजावै।
काम सु केशव प्रेम बढ़ावत, प्रेमलै प्राणप्रियाहि मिलावै॥ २८॥

देह एक दीपक है। वह दशा (युवावस्था और बत्ती) से मिलता है। दशा तेज और ज्योति (प्रकाश तथा ज्ञान) को जगाती है। ज्योति (प्रकाश और ज्ञान) जगने पर सब बातें समझ में आती हैं और दिखलाई पड़ने लगती हैं और वह तम (अंधकार तथा अज्ञान) को दूर करके शुभता (सौंदर्य तथा प्रकाश) प्रदर्शित करती है वह शुभता (सौंदर्य और प्रकाश) रूप का रूपक रचती है अर्थात् सौंदर्य की ओर अधिक रुचि उत्पन्न करती है और वह रूप काम कला को उत्पन्न करता है (अथवा काम से प्रेम कराता है)। 'केशवदास' कहते हैं कि वह काम प्रेम को बढ़ाता है और प्रेम प्राणप्रिया से मिला देता है

उदाहरण (२)

कवित्त

घनन की घोर सुनि, मोरन के सोर सुनि,
सुनि सुनि केशव अलाप आली गन को।
दामिनि दमक देखि, दीप की दिपति देखि,
देखि शुभ सेज, देखि सदन सुमन को।

कुंकुम की बास, घनसार की सुबास, भयें,
फूलनि की बास मन फूलिकै मिलन को।
हँसि हँसि मिले दोऊ, अन ही मिलाये, मान,
छूटि गयो एकै बार राधिका रवन को ॥२९॥

'केशवदास' कहते हैं कि बादलों की घोर ध्वनि, मोरों का शोर, और सखियों का गान सुनकर, बिजली की चमक, दीपक का प्रकाश तथा फूलों के भवन में फूलों ही की सेज देखकर, कुंकुम, कपूर, तथा फूलों की सुगन्ध को सूंघकर श्रीकृष्ण का मन उमंग में आकर मिलने की इच्छा करने लगा अतः दोनों [राधा-कृष्ण] बिना मिलाये ही हँस हँस कर मिल गये और एक ही बार में राधा और श्रीकृष्ण का मान छूट गया।

३३—प्रहेलिका अलंकार

दोहा

बरणत वस्तु दुराय जहँ, कौनहु एक प्रकार।
तासों कहत प्रहेलिका, कविकुल सुबुधि विचार ॥ ३० ॥

जहां किसी वस्तु का, किसी ढंग से, छिपाकर वर्णन किया जाता है, वहाँ बुद्धिमान कविगण उसे विचार पूर्वक 'प्रहेलिका' कहते हैं।

उदाहरण (१)

प्रभाकर मण्डल वर्णन

दोहा

शोभित सत्ताईस सिर, उनसठि लोचन लेखि।
छप्पन पद जानों तहां, बीस बाहु वर देखि ॥ ३१ ॥

जहां सत्ताइस सिर (श्री ब्रह्माजी के चार, श्री विष्णुजी का एक श्री शङ्करजी के पांच, सरस्वती जी लक्ष्मी जी, पार्वती जी हँस, गरुड़,

बैल, सूर्य और अरुण के एकएक कुल आठ, सूर्य के घोड़ों के सात, सूर्य के दो स्त्रियों के दो) उनसठ आंखें, (क्योंकि श्री शङ्करजी के तीन नेत्र प्रतिमुख के हिसाब से ५ अधिक) ५६ चरण (क्योंकि सूर्य के घोड़ों के केवल मुख ही सात हैं, चरण केवल चार हैं) और बीस भुजायें (क्योंकि हँस, गरुड़, बैल और घोड़े भुजा रहित हैं और ब्रह्माजी, आदि देवताओं की चार चार भुजायें हैं । निवास करती हैं, वह सूर्य मंडल है ।

उदाहरण (२)

प्रभाकर मण्डल

दोहा

चरण अठारह, बाहुदस, लोचन सत्ताईस ।
भारत है प्रति पालि कै, शोभित ग्यारह शीश ॥ ३२ ॥

जहां अठारह चरण (श्रीविष्णु के दो, श्री लक्ष्मी जी के दो; गरुड़ के दो, श्री शङ्करजी के दो, उनके बृषम के चार, श्री पार्वतीजी के दो उनके सिंह के चार) दस भुजाएँ (चार श्रीविष्णु की दो श्रीलक्ष्मी जी की दो, श्री शङ्करजी की और दो श्री पार्वती जी की) सत्ताईस नेत्र (श्री शङ्करजी के पाँच मुखों को तीन-तीन नेत्रों के हिसाब से १५ और सब के दो, दो) और ग्यारह (श्री शङ्करजी के पांच तथा और सब के एकएक) शिर हैं, वह प्रभाकर मण्डल सारे संसार को जिलाता और मारता है ।

उदाहरण (३)

दोहा

नौ पशु, नवही देवता, द्वै पक्षी, जिहि गेह ।
केशव सोई राखि है, इन्द्रजीत सै देह ॥ ३३ ॥

'केशवदास' कहते हैं कि जिसके घर में नौ सूर्य के सात घोड़े. एक श्री शङ्करजी का बैल १ श्री पार्वती जी का सिंह) पशु, नौ देवता

(श्री ब्रह्माजी. श्री विष्णुजी, श्री शङ्करजी, श्री सावित्री, श्रीलक्ष्मी, श्रीपार्वती, सूर्य, चन्द्रमा, और श्री शङ्करजी के मस्तक के अग्निदेव) तथा दो पक्षी (श्रीविष्णु जी का गरुड़ और श्री ब्रह्माजी का हंस) हैं, राजा इन्द्रजीत सिंह के शरीर की रक्षा करेगा।

उदाहरण (४)

दोहा

देखै सुनै न खाय कुछ, पांय न, युवती जाति।
केशव चलत न हारई, वासर गनै न राति ॥ ३४ ॥

'केशवदास' कहते हैं कि एक वस्तु कौन सी है जो न देखती है, न कुछ खाती है, न उसके पैर हैं और वह स्त्री जाति की है। वह चलते-चलते नहीं थकती, न दिन गिनती है न रात। [उत्तर—राह (मार्ग)]

उदाहरण (५)

दोहा

केशव ताके नामके, आखर कहिये दोय।
सूधे भूषण मित्रके, उलटे दूषण होय ॥३५॥

'केशवदास कहते हैं कि उस शब्द के दो अक्षर कहे जाते हैं, जिसके सीधे रहने से मित्र की शोभा होती है और उलट देने से दोष हो जाता है।

[उत्तर—राज जिसे उलटने से जरा (बुढ़ापा) बनता है]

उदाहरण ६)

दोहा

जाति लता दुहुँ आखरहि, नाम कहै सब कोय।
सूधे सुख मुख भक्षिये, उलटे अम्बर होय ॥३६॥

एक वस्तु ऐसी है जो जाति की लता है और उसके अक्षरों का नाम सभी कहते हैं। जब वह सीधी रहती है तो आनन्द से मुख में खाई जाती है और उसे उलट देने पर वस्त्र हो जाता है।

[उत्तर—दाख जिसे उलटने पर खदा (खद्दर वस्त्र) बनता है]

उदाहरण (७)

दोहा

सब सुख चाहे भोगिबो. जो पिय एकहिबार।
चन्द्र गहै जहँ राहुको, जैयो तिहि दरबार ॥३५॥

हे पति। जो आप सब सुखों को एक ही बार में भोगना चाहते हैं, तो उस दरबार में जाइएगा जहाँ चन्द्र राहु को पकड़ता है।

[उत्तर-राजा बीरबल का दरबार जहाँ 'चन्द्र' नामक द्वारपाल रहता था जो जाने वालों को, बिना आज्ञा के, नहीं जाने देता था।]

उदाहरण (८)

दोहा

ऐसी मूरि देखाव सखि. जिय जानत सब कोय।
पीठ लगावत जासु रस, छाती सीरी होय। ३८॥

हे सखी ऐसी बूटी दिखलाओ, जिसे सब कोई जानता है और जिसके पीठ में लगते ही मारे आनन्द के हृदय शीतल हो जाता है।

[उत्तर—पुत्र-जो पीठ से लगकर खेलते हैं तब बड़ा आनन्द होता है]

३४—परिवृत्तालंकार

दोहा

जहां करत कछु औरई, उपजि परत कछु और।
तासों परिवृत जानियहु, केशव कविशिरमौर ॥३९॥

'केशवदास' कहते हैं कि जहाँ और कुछ करते हुए और कुछ स्थिति उत्पन्न हो जाय, श्रेष्ठ कविगण उसे 'परिवृत' अलंकार कहते हैं।

उदाहरण (१)

सवैया

हँसि बोलतहीं सु हँसै सब केशव, लाज भगावत लोक भगै।
कछु बात चलावत घेरु चलै, मन आनतहीं मनमत्थ जगै॥
सखि तूं जू कहै सु हुती मन मेरेहू, जानि इहै न हियो उमगै।
हरि त्यों निकुडीठि पसारतहीं, अंगुरीनि पसारन लोग लगै॥४०॥

'केशवदास' (किसी नायिका की ओर सखी से) कहते हैं कि मैं जब हँसती बोलती हूं, तो सब लोग हसते हैं और लज्जा को भगाती हूँ तो लोग मुझसे भागते हैं अर्थात् लज्जा छोड़ कर देखती हूं तो मारे घृणा के मुझसे दूर-दूर रहते हैं। कुछ बातें करती हूँ तो निन्दा होने लगती है, जो मन चलाती हूं तो कामोद्दीपन होता या काम जागृत होता है। इसीलिए हे सखी! जो तू मुझसे कहती थी (कि प्रेम मतकर) वह मेरे मन में भी थी, और यही जानकर मेरा हृदय उत्साहित नहीं होता, क्योंकि हरि (श्रीकृष्ण) की ओर तनिक भी दृष्टि करते ही लोग उँगली उटाने लगते हैं।

उदाहरण—२

सवैया

हाथ गह्यो, व्रजनाथ सुभावही, छूटिगई धुरि धीरजताई।
पान भखै मुख नैन रचोरुचि, आरसी देखि कह्यो हम ठाई॥
दै परिरंभन मोहन कोमन, मोहि लियो सजनी सुखदाई।
लाल गुपाल कपोल नखक्षत, तेरे दिये तें महाछबि छाई॥४१॥

जब ब्रजनाथ (श्रीकृष्ण) ने तेरा हाथ प्रेम से पकड़ा, तब तो मानो उनका धैर्य छूट गया। तूने पान तो मुख में खाये हैं, परन्तु उनका रंग नेत्रों पर चढ़ा है। न हो, तो दर्पण देख ले कि मैं ठीक ही कह रही हूं हे सुखदायनी सजनी (सखी) तूने आलिङ्गन देकर मोहन (श्रीकृष्ण) का मन मोह लिया और गोपाल लाल ने तेरे गालों पर नख-क्षत दिया है, उससे तेरी बड़ी शोभा हो गई है।

उदाहरण (३)

सवैया

जीव दियो जिन जन्म दियो, जगी जाहो की जोति बड़ी जग जानैं।
ताहो सो वैर मनो वच काय करै कृत केशव को उरआनैं।
मूषक तौ ऋषि सिंह करयो फिरि ताही कों मूरुख रोष बितानैं।
ऐसो कछू यह कालहै जाको भलो करिए सु बुरो करि मानैं ॥४२।

'केशवदास' कहते हैं कि जिस (भगवान्) ने यह जीव और जन्म दिया और जिसकी बड़ी भारी ज्योति को सारा संसार जानता है, उसीसे तू मन, वचन और कर्म से वैर करता है तथा उसके किये हुए उपकारों को नहीं मानता। ऋषि ने तो चूहे को सिंह बनाया पर उस मूर्ख ने उन्हीं के सामने क्रोध प्रकट किया। यह समय ही कुछ ऐसा है कि जिसका भला करो वही बुरा करके मानता है।

—:*:—

चौदहवाँ प्रभाव

३५--उपमालंकार

दोहा

रूप, शील, गुण होय सम, ज्यों क्योंहूँ अनुसार।
तासों उपमा कहत कवि, केशव बहुत प्रकार॥ १॥

केशवदास' कहते हैं कि जब किसी वस्तु या व्यक्ति का रूप, शील और किसी अन्य वस्तु या व्यक्ति के अनुरूप होता है, तब कविलोग उसे उपमा कहते हैं। इसके बहुत से प्रकार हैं।

उपमा लंकार के भेद

दोहा

संशय हेतु, अभूत. अरु, अद्भुत, विक्रिय जान।
दूषण, भूषण, मोहमय, नियम गुणाधिक आन॥ २॥
अतिशय, उत्प्रेक्षित. कहौं. श्लेष, धर्म. विपरीत।
निर्णय, लाक्षनिकोपमा. असंभावित. मीत॥ ३॥
बुध विरोध, मालोपमा, और परस्पर रीस।
उपमा भेद अनेक हैं. मैं बरणे इकबीश॥ ४॥

संशय, हेतु, अभूत, अद्भुत, विक्रय, दूषण, भूषण, मोह, नियम, गुणाधिक, अतिशय, उत्प्रेक्षित, श्लेष. धर्म, विपरीत, निर्णय, लाक्षणिक, असंभावित, विरोध, माल और परस्पर ये इक्कीस भेदही मैंने वर्णन किये हैं, यद्यपि उपमा के बहुत से भेद हैं।

१—संशयोपमा

दोहा

जहां नहीं निरधार कछु, सब सन्देह सुरूप।
सो संशय उपमा सदा. बरणत हैं कविभूप ॥ ५ ॥

जहाँ कुछ निश्चित न होकर सभी सन्देह स्वरूप हो, उसे संशयोपमा कहते हैं।

उदाहरण

सवैया

खंजन है मनरंजन केशव, रंजननैन किधौं, मतिजीकी।
मीठी सुधाकि सुधाधर की द्युति, दंतनकी किधौं, दाड़िम हीकी ॥
चन्द भलो मुखचन्द कधौं, सखि सूरति कामका कान्हकी नीकी।
कोमलपंकज कै, पदपंकज, प्राणपियारे कि मूरति पीकी ॥ ६ ॥

'केशवदास, (सखी की ओर से) पूछते हैं कि खंजन अच्छे हैं या श्रीकृष्ण के नेत्र ? तू ही अपनी बुद्धि से निश्चय कर के बता। अमृत मीठा है या उन के अमृत जैसे ओठ ? उनके दाँतों की चमक अच्छी है या अनार के दानों की ? हे सखी ! चन्द्रमा अच्छा है या उनका मुख चन्द्र ? कामदेव की सूरत अच्छी है या श्रीकृष्ण की मूर्त्ति ? कमल कोमल हैं या उनके चरण-कमल ? प्राण अधिक प्यारे हैं या श्रीकृष्ण की मूर्त्ति ?

२—हेतूपमा

दोहा

होत कौनहू हेतुतें, अति उत्तम सों हीन।
ताही सों हेतूपमा, केशव कहत प्रवीन ॥ ७ ॥

'केशव दास' कहते हैं कि जहाँ उपमान उपमेय से हीन होता है, उसी को प्रवीण लोग 'हेतूपमा' कहते हैं।

उदाहरण

कवित्त

अमल, कमल कुल कलित, ललित गति,
वेल सों बलित, मधु माधवी को पानिये।
मृगमद मरदि, कपूर धूरि चूरि पग,
केसरि के 'केशव' विलास पहिचानिये।
झेलिकै चमेली, करि चंपक सों केलि, सेइ,
सेवती, समेत हेतु केतकी सों जानिये।
हिलि मिलि मालती सों आवत समीर जब,
तब तेरे सुख मुख बास सो बखानिये ॥ ८॥

स्वच्छ होकर, कमलों की सुगन्ध से सुवासित, सुन्दर चाल वाला, वेले की सुगंध से युक्त और माधवी के मकरंद को पीकर, कस्तूरी का मर्दन करके, कपूर की धूल को पैरों से कुचल कर चूर करके, और केशवदास कहते हैं कि केसर के साथ विलास करता हुआ, चमेली, को झेल कर, चंपक से केलिकर के, सेवती की सेवा करके, और केतकी से प्रेम करता हुआ, और मालती से हिलमिल कर जब वायु आवे तब कहीं तेरे मुख की स्वाभाविक सुगन्ध जैसा कहा जा सकता है।

३—अभूतोपमा

दोहा

उपमा जाय कही नहीं, जाको रूप निहारि।
सो अभूत उपमा कही, केशवदास बिचारि ॥ ९॥

'केशवदास' कहते हैं कि जहाँ पर सौन्दर्य को देख कर उसकी उपमा न कही जासके वहाँ अभूतोपमा कही जाती है।

उदाहरण

कवित्त

दुरि है क्यों भूषन बसन दुति यौवन की,
देह ही की जोति होति द्यौस ऐसी राति है।
नाह की सुबास लागै ह्वै है कैसी 'केसव',
सुभाव ही की बास भौंरभीर फारखाति है।
देखि तेरी मूरति की, सूरति बिसूरति हौं,
लालन को द्दग देखिबे को ललचाति है।
चलिहैं क्यों चन्द्रमुखी, कुचनि के भारभये,
कचन के भार ते लचकि लंकजाति है ॥१०॥

तेरे यौवन की द्युति भूषण और वस्त्रों से कैसे छिपेगी, जब तेरी देह की ज्योति से ही रात दिन के समान हो जाती है। 'केशवदास' (सखी की ओर से) कहते हैं कि पति की सुगन्ध लगने से क्या दशा होगी, जब तेरी स्वाभाविक सुगन्ध को भौंरों की भीड़ खाये डालती है (अर्थात् इतनी सुगन्ध है कि भौंरों के झुंड के झुंड मंडराया करते हैं)। इसीलिए मैं तो तेरी सूरत को देख-देख कर ऐसे सोचा करती हूँ और तू श्रीकृष्ण के मुख को देखने को ललचाती है। हे चन्द्रमुखी। कुचों का भार होने पर तू कैसे चलेगी, जब बालों के भार ही से तेरी कमर लचकी सी जाती है।

४—अद्भुतोपमा

दोहा

जैसी भई न होति अब, आगे कहै न कोय।
केशव ऐसी बरणिये, अद्भुत उपमा होय ॥ ११ ॥

'केशवदास' कहते हैं कि जहाँ ऐसा वर्णन किया जाय कि जो न तो कभी पहले हुआ हो, य वर्तमान हो रहा हो और न भविष्य में होने ही वाला हो, उसे अद्भुतोपमा कहते हैं।

उदाहरण

सवैया

पीतमको अपमान न माननि ज्ञान सयाननि रीझिरिझावै।
बंकबिलोकनि बोल अमोलनि तौ बोलि केशव मोद बढ़ावै॥
हावहू भाव विभाव के भाव प्रभाव के भावनि चित्त चुरावें।
ऐसे विलास जो हायँ सरोज में तौ उपमा मुख तेरे कि पावै॥ १॥

'केशवदास' कहते कि जो मान करके अपमान न करे और सयानता के साथ गान करके स्वयं भी प्रसन्न हो और उसे भी प्रसन्न करे। तिरछी चितवन तथा मीठे बचनों से उसके मन के प्रसन्नता को बढ़ावे। हाव, भाव, विभाव तथा प्रेम के प्रभाव से उसका मन चुरावे। जब इतने गुण कमल में हों, तब कहीं वह तेरे मुख की समता को पासके।

५—विक्रियोपमा

दोहा

क्योंहू क्योंहू वर्णिये, कौनहु एक उपाइ।
विक्रय उपमा होत तहँ, बरणत केशवराइ॥ १३॥

'केशवराय' कहते हैं कि जहाँ उपमेय के एक होने पर उपमान को, कभी एक प्रकार और कभी दूसरी प्रकार वर्णन किया जाय, वहाँ विक्रियोपमा' होती है।

उदाहरण

कवित्त

'केशोदास' कुंदन के कोशतें प्रकाश मान,
चिंतामणि ओपनि सों ओपिकै उतारी सी।

इन्दु के उदोत तें उकीरी ही सी काढ़ी, सब,
सारस सरस, शोभासार तें निकारी सी।
सोंधे की सी सोधी, देह सुधासों सुधारी, पावँ,
धारी देवलोक तें कि सिंधु ते उबारी सी।
आजु यासों हँसि खेलि बोलिचाल लेहुलाल,
काल्हि एक बाल ल्याऊँ काम की कुमारी सी ॥१४॥

'केशवदास' (किसी दूती की ओर से श्रीकृष्ण से) कहते हैं कि जो कुन्दन के ढ़ेर से भी अधिक चमकीली है और जो चिंतामणि की आभा से चमकाकर उतारी गई सी है। जो चन्द्रमा के प्रकाश अर्थात् चाँदनी से खोदकर निकाली गई सी है और जो सब कमलों से सुन्दर है तथा शोभा के सार से निकाली हुई सी है। सुगन्ध से शुद्ध की गई जिसकी देह है, जो देवलोक से आई है या समुद्र से निकाली गई है। हे लाल। (श्रीकृष्ण) आज तो इस बाला के साथ हँस-बोल कर मन बहला लो, कल मैं एक कामदेव की कुमारी जैसी बाला लाऊँगी।

६—दूषणोपमा

दोहा

जहँ दूषणगण बर्णिये, भूषण भाव दुराय।
दूषण उपमा होति तहँ, बुधजन कहत बनाय ॥१५।

जहां पर उपमानों के गुणों को छिपाकर केवल दोषों का वर्णन किया जाय, वहाँ बुद्धिमान लोग दूषणोपमा कहते हैं।

उदाहरण

सवैया

जौं कहूँ केशव सोम सरोज सुधा सुरभृङ्गनि देह दहे हैं।
दाड़िम के फल श्री फल विद्रुम, हाटक कोटिक कष्ट सहे हैं॥

कोक कपोत करी अहि केसरि कोकिल कीर कुचील कहे हैं।
अंग अनूपम वा तिय के उनकी उपमा कहँ वेइ रहे हैं ॥१६॥

'केशवदास' कहते हैं कि यदि मैं कहूं कि चन्द्रमा और कमल उसके मुख जैसे हैं तो ठीक नहीं है, क्योंकि चन्द्रमा का राहु ने और कमलों का भौरों ने शरीर जला डाला है। यदि दाँतों को अनार के दानों जैसा, कुचों को श्रीफल बेल) जैसा, ओठों को मूंगे जैसा तथा रंग को सोने जैसा कहूँ तो इन सबने भी करोड़ों कष्टों को सहन किया है। रहे कुचों की उपमा के लिए चक्रवाक, गर्दन के लिए कबूतर, चाल के लिए हाथी, भुजाओं के लिए सांप, कमर के लिए सिंह, वाणी के लिए कोयल, और नाक के लिए तोते, सो ये सभी मैले और कुरूप होते हैं। इसलिए उस प्रिया के सभी अग अनूपम हैं। उसके अंगों की उपमा उसी के अंगों से दी जा सकती है।

७ भूषणोपमा

दोहा

दूषण दूरि दुराय जहँ, बरणत भूषण भाय।
भूषण उपमा होत तहँ. बरणत सब कविराय ॥१७॥

जहां उपमानों के अवगुणों को छिपाकर केवल उनके गुणों का वर्णन किया जाता है, वहाँ सभी कविगण उसे भूषणोपमा कहते हैं।

कवित्त

सुबरण युत, सुरबरन कलित, पुनि,
भैरव सो मिलि, गति ललित, बितानी है।
पावन, प्रकट दुति द्विजन की देखियत,
दीपति दिपति अति, श्रुतिसुखदानी है।

सोभा सुभसानी, परमारथ निधानी, दीह,
कलुष कृपानीमानी, सब जग जानी है।
पूरब के पूरे पुण्य, सुनिये प्रवीणराय,
तेरी वाणी मेरी रानी गंगा को सो पानी है ॥१८॥

हे मेरी रानी प्रवीण राय ! तेरी वाणी गंगा की पानी जैसी है। क्योंकि जैसे गंगा का पानी सुवरण युत अर्थात् सुन्दर रंग का होता है, वैसे ही तेरी वाणी सुवरण युत अर्थात् अच्छे अक्षरों वाली है। जिस प्रकार गङ्गा जल सुरवरन कलित अर्थात् श्रेष्ठ देवताओं से युक्त होता है, उसी प्रकार तेरी वाणी भी सुरवरन युक्त अर्थात् श्रेष्ठ स्वरों से भरी है। जिस प्रकार गङ्गा जल भैरव जी (श्रीशङ्कर जी) से सम्बन्ध रखता है, उसी प्रकार तेरी वाणी में भैरव राग है। जैसे गङ्गा जल ललितगति (मोक्ष) देने वाला है, वैसे ही तेरी वाणी में ललित गति (सुन्दर प्रवाह) है। जैसे गङ्गाजल वितानी (विस्तृत भूमि में बहने वाला है) वैसे ही तेरी वाणी भी वितानी अर्थात् विशेष तानों वाली है। जैसे गङ्गाजल पवित्र है, उसी तरह तेरी वाणी भी व्याकरण से शुद्ध है। गङ्गाजल में जिस प्रकार द्विज (ब्राह्मण) स्नान करते दिखलाया पड़ते हैं, उसी प्रकार तेरी वाणी में भी द्विजों (दाँतों) की चमक दिखलायी पड़ती है। जैसे गंगाजल श्रुति सुखदानी अर्थात् वेद सम्बन्धी कार्यों के लिए शुभ है, उसी प्रकार तेरी वाणी भी श्रुति सुखदानी (कानों के लिए सुख देने वाली) है। गंगाजल जैसे शोभा से सना हुआ है वैसे ही तेरी वाणी भी परम अर्थ मय है। जैसे गंगाजल कलुषदीह (पापों के समूह) को कृपानी (तलवार के समान काटने वाला) है, वैसे ही तेरी वाणी भी (भजनादि से पूर्ण होने के कारण) कलुषनाशिनी मानी गई है। जिस प्रकार गंगाजल को सारा संसार जानता है, उसी प्रकार तेरी वाणी भी जगत में प्रसिद्ध है।

State Museum,
LUCKNOW.

८—मोहोपमा

दोहा

रूपक के अनुरूप ज्यों, कौनहु विधि मन जाय।
ताहीसों मोहोपमा, सकल कहत कविराय ॥१९॥

जहाँ रूपक अर्थात् उपमेय को किसी प्रकार अनुरूप (उपमान) समझ लिया जाय उसे सभी महाकवि लोग मोहोपमा कहते हैं।

उदाहरण

कवित्त

खेल न खेल कछू, हांसी न हँसत हरि,
सुनत न गान कान तान बान सी बहै।
ओढ़त न अंबरन, डोलत दिगंबर सो,
शंबर ज्यों शंबरारि दुःख देह को दहै।
भूलिहू न सूघै फूल, फूल तूल कुम्हलात,
गात, खात बीरा हू न बात काहू सों कहै!
जानि जानि चंदमुख केशव चकोर सम,
चंदमुखी चंद ही के बिंब त्यों चितैरहै ॥ २० ॥

(एक सखी नायिका से कहती है कि) हे चंदमुखी ! श्रीकृष्ण न तो कोई खेल खेलते हैं, न हँसी ही करते हैं, न गान ही सुनते हैं, क्योंकि गाने की तान तो उनके कानों में बाण सी लगती है। वह कपड़े भी नहीं ओढ़ते, दिगंबर (नंगे) से घूमा करते हैं और शंबरारि (काम) पीड़ा तो उनको उसी प्रकार उनके शरीर को कष्ट देती है जैसे स्वयं काम ने शंकर को कष्ट दिया था। वह भूलकर भी फूल नहीं सूंघते, क्योंकि फूल के समान शरीर उसके सूंघने से मुर्झा जाता है। वह पान भी नहीं खाते और न किसी से बातें करते हैं। 'केशवदास' (सखी की ओर से) कहते हैं कि वह तो मुख

को चन्द्रमा जैसा समझ कर, चकोर की भाँति, उसी ओर देखते रहते हैं।

९—नियमोपमा

दोहा

एकहि क्रम जहँ बरणिये, मन क्रम वचन विशेष।
केशवदास प्रकास बस, नियमोपमा सुलेष ॥ १२ ॥

'केशवदास' कहते हैं कि जहाँ किसी उपमेय का एक वही उपमान बतलाया जाय जिसपर वर्णन करने वाले का मन, क्रम और वचन से विशेष प्रेम हो, वहाँ इस तरह के प्रकाशवश (वर्णन के कारण), उसे नियमोपमा समझना चाहिए।

उदाहरण

कवित्त

कलित कलक केतु, केतु अरि, सेत गात,
भोग योग को अयोग, रोग ही को थल सो।
पूनो ही को पूरन पै आन दिन ऊनो ऊनो,
छिन छिन छीन छवि, छीलर के जल सो।
चन्द सो जु बरनत रामचन्द्र की दुहाई,
सोई मतिमन्द कवि केशव मुसल सो।
सुन्दर सुबास अरु कोमल अमल अति,
सीता जू को मुख सखि! केवल कमल सो ॥२२॥

वह कलंक का केतु है अर्थात् कलंकी है। केतु (राहु से तात्पर्य है) उसका बैरी है, श्वेत शरीर वाला (कोढ़ी जैसा) है, भोग-योग के अयोग्य है और रोग (क्षय) का तो घर ही है। केवल पूनो ही को पूरे आकार से निकलता है और अन्य दिनों में कम होता जाता है। छिछले तालाब के जल के समान दिन-दिन उसकी छवि क्षीण

होती जाती है। इसलिए, ('केशवदास' सखी की ओर से कहते हैं कि) ईश्वर की शपथ, जो कवि सीता जी के मुख को कमल जैसा वर्णन करता है. वह मूसलसा अर्थात् जड़ या मूर्ख है। वह तो केवल कमल सा है क्योंकि वह सुन्दर सुगन्ध से युक्त है और कोमल तथा निर्मल या स्वच्छ है।

१०—गुणाधिकोपमा

दोहा

अधिकनहूँ तें अधिकगुण. जहाँ बरणियतु होय।
तासों गुण अधिकोपमा, कहत सयाने लोय ॥२३॥

जहाँ अधिक से अधिक गुणवाले उपमानो के साथ उपमेय का वर्णन करके उसे सबसे अधिक प्रमाणित किया जाता है वहाँ उसे चतुर लोग गुणाधिकोपमा कहते हैं।

उदाहरण

कवित्त

वे तुरंग सेत रंग संग एक, ये अनेक,
है सुरंग अंग-अंग पै कुरंग मीत से।
ये निशंक यज्ञ अंक, वे सशंक 'केशौदास'
ये कलंक रंक. वे कलंक ही कलीत से।
वे पिये सुधाहि, ये सुधानिधीश के रसै जु,
सांचहू पुनीत ये, सुनीत वे पुनीत से।
देहिं ये दिये बिना, बिना दिये न देहिं वे,
भये न, है न, होंहिगे न इन्द्र, इन्द्रजीत से।

उनके पास सफेद रंग का एक घोड़ा (उच्चैःश्रवा) है, इनके पास अनेक रंगों के, कुरङ्ग (हिरनों) के मित्र अर्थात् चाल में वैसे ही तेज अनेक घोड़े हैं। 'केशवदास' कहते हैं कि ये यज्ञ चिन्हों से निडर रहते हैं

वे सब डरते हैं (कि कोई यज्ञ करके मेरा आसन न छीन ले)। ये कलंक रंक (कलंक से दरिद्र) अर्थात् निष्कलंक हैं, वे कलंक (अहल्या-गमन के कारण) से युक्त हैं। वे अमृत पान किये हुए हैं और इन्होंने श्री शङ्कर जी महाराज की भक्ति का रस पान किया है। ये सचमुच पवित्र हैं और वे पवित्र जैसे सुने भर जाते हैं । ये बिना दिये दान देते हैं, वे बिना दिये कुछ देते नहीं अतः इन्द्र महाराज इन्द्रजीत के समान न तो कभी थे, न हैं और न होंगे ही।

११—अतिशयोपमा

दोहा

एक कछू एकै बिषे, सदा होय रस एक।
अतिशय उपमाहोति तहँ, कहत सुबुद्धि अनेक ॥२५॥

जहाँ किसी उपमेय का एक ही विषय में (सभी उपमानों से) बढ़ कर वर्णन किया जाता है, वहाँ अतिशय उपमा होता है, इस बात को अनेक सुबुद्धि वाले कहते हैं।

उदाहरण

कवित्त

'केशौदास' प्रगट अकास में प्रकास मान,
ईश हू के शशि, रजनीश अवरेखिये।
थल थल, जल जल अमल अचल अति.
कोमल कमल बहु वरण विशेखये।
मुकुर कठोर बहु. नाहि नै अचल यश,
बसुधा सुधाहू तिय अधरन लेखिये।
एक रस. एक रूप, जाकी गीता सुनियत,
तेरो सो बदन सीता। तोही विषे देखिए॥ २६॥

'केशवदास' कहते हैं कि यदि चन्द्रमा को आपके मुख के समान कहें तो वह आकाश में प्रकट ही कलंकी रूप में) प्रकाशित हो रहा है दूसरा रूप (जो निष्कलंक है) वह श्री शङ्कर जी के शिर पर (क्षीण रूप में), यदि कमल सा मुख बतलाऊँ तो वे स्थान-स्थान पर, जलाशय, जलाशय में निर्मल, अचल और कोमल रूप के अनेक रंगों के दिखलायी पड़ते हैं अर्थात् बहुत से हैं और मुख अपनी शोभा का एक ही हैं। यदि दर्पण जैसा बतलाऊँ तो वह बहुत कठोरहैं और उसका यश भी अचल नहीं है अर्थात् कुछ समय पश्चात् बिगड़ जाता है। यदि अमृत जैसा कहूँ, तो अमृत तो इस पृथ्वी पर की अनेक स्त्रियों के ओठों में पाया जाता है। इसलिए हे सीता जी! जो सदा एक रस और एक रूप रहता है और जिसकी बड़ी प्रशंसा सुनी जाती है, ऐसा आपका मुख आपही जैसा है।

१२—उत्प्रेक्षितोपमा

दोहा

एकै दीपति एककी, होय अनेकनि माह।
उत्प्रेक्षित उपमा सुनो, कही कविनके नाह ॥२७॥

जहाँ उपमेय का गुण अनेक उपमानों में भी पाया जाय वहां उत्प्रेक्षितोपमा कही जाती है। इसको अनेक कविसम्राटों ने बतलाया है।

उदाहरण

कवित्त

न्यारो ही गुमान मन मीननि के मानियत,
जानियत सबही सु कैसे न जनाइये।
पंचबान बाननि के आन आन भांतिगर्व,
बाढ्यौ परिमान बिनु कैसै सो बताइये।

'केशौदास' सविलास गीत रंग रंगनि,
कुरंग अंगनानि हू के अंगनानि गाइये।
सीता जी की नयन-निकाई हम हीं में हैसु,
झूठि है नलिन, खंजरीट हू में पाइये ॥२८॥

श्रीसीताजी के नेत्रों की शोभा हम ही में है—यह अभिमान मछलियों के मन में रहता है, सो मैं सब रहस जानती हूं कैसे न बतलाऊँ। उधर कामदेव के बाणों को भी इस बात का बड़ा अभिमन न हो गया है, सो कैसे बतलाया जाय। केशवदास' (सखी की ओर से) कहते हैं कि उधर हिरणियों के नेत्रों की शोभा के) गीत भी अनेक प्रकार से आंगन आंगन अर्थात् घर-घर में गाये जाते हैं। सब लोग जो यह धारणा बनाये हुए हैं कि 'श्रीसीताजी के नेत्रों की शोभा हमहीं में हैं' सो झूठ है। वैसी शोभा तो कमलों और खंजनों में भी पाई जाती है।

१३—श्लेषोपमा

दोहा

जहाँ स्वरूप प्रयोगिये, शब्द एकही अथ।
केशव तासों कहत हैं, श्लेषोपमा समर्थ ॥२९॥

'केशवदास कहते हैं कि जहां ऐसे शब्दों का प्रयोग कया जाय जो उपमेय और उपमान में समान अर्थ में लग सकें, वहां उसे समर्थ लोग (विद्वान) श्लेषोपमा कहते हैं।

उदाहरण

कवित्त

सगुन, सरस, सब अंग राग रंजित है,
सुनहु सुभाग बड़े भाग बाग पाइये।

सुन्दर, सुबास तनु, कोमल अमल मन,
षोड़स बरस मय हरष बढ़ाइये।
बलित ललित बास, 'केशौदास' सबिलास,
सुंदरि सँवारि लाई गहरु न ल्याइये।
चातुरी की शाला मानि, आतुर ह्वै नन्दलाल,
चंपे की सी माला, बाला उर उरझाइये ॥३०॥

जो सगुन (गुणवती और डोरायुक्त) है, सरस (सुन्दर) है। जिसके अंग अंग रंजित (शोभित या रंगीन) हैं। हे भाग्यवान सुनो, ऐसी बड़े भाग्य से मिलती है। जो सुन्दर है, सुबास तनु (सुन्दर वस्त्रों वाली और सुगन्ध युक्त) है, जो कोमल है, निर्मल मन वाली है, सोलह वर्ष की है (चंपा पुष्प भी सोलह वर्ष में अति सुगंधित होता है , और आनन्द को बढ़ाने वाली है जो ललित (सुन्दर) बास (वस्त्र तथा गन्ध) से बलित (युक्त) है, और (केशव दास कहते हैं कि) सविलास (आनन्द और शोभा वाली) भी है जिसे कोई सुन्दरी स्त्री संवार कर (सज्जित करके और अच्छी तरह गूंथकर) लाई है। अतः देर न लगाइये और उस स्त्री को (जो उसे लाई है) चतुराई की शाला (बुद्धिमती) मानकर, हे नन्दलाल (श्री कृष्ण) उस चंपे की माला के समान बाला को अपने गले में पहना लीजिए।

१५–धर्मोपमा

दोहा

एक धर्मको एक अँग, जहां जानियतु होय।
ताहीसों धर्मोपमा, कहत सयाने लोय॥ ३१ ॥

जहाँ किसी धर्म अर्थात् वस्तु के एक ही अंग (गुण) का वर्णन हुआ हो, वहाँ उसे चतुर लोग धर्मोपमा कहते हैं।

उदाहरण

कवित्त

ऊजरे उदार उर बासुकी विराजमान,
हार के समान आन उपमा न टोहिये।
शोभिजै जटान बीच गंगाजू के जल बिंदु,
कुन्द कलिका से 'केशौदास' मन मोहिये।
नख कोसी रेखा चंद, चंदन सा चारु रज,
अंजन सिंगार हू गरल रुचि रोहिये।
सब सुख सिद्धि शिवा सोहैं शिवजू के साथ,
जावक सो पावक लिलार लाग्यो सोहिये ॥३२॥

उजवल और विशाल वक्षस्थल पर, हार के समान वासुकी सुशोभित हो रहे थे, जटाओं के बीच गंगाजी के जल-बिन्दु सुशोभित हो रहे थे। "केशवदास" कहते हैं कि वे कुन्दकली के समान मनको मोहे लेते थे। नखकी रेखा जैसा (क्षीण) चन्द्रमा चन्दन जैसी सुन्दर भस्म, शृंगार में काम आनेवाले अंजन जैसी विष की काली आभा विद्यमान थी। इस प्रकार सब सुखों और सिद्धियों को स्वरुप श्री पार्वतीजी श्री शङ्कर जी के साथ सुशोभित थीं और महावर जैसी अग्नि प्रभा उनके मस्तक पर विराज मान थी।

१५—विपरीतोपमा

दोहा

केशव पूरे पुण्यके. तेई कहिये हीन।
तासों विपरीतोपमा, केशव कहत प्रवीन ॥ ३३ ॥

'केशवदास' कहते हैं कि जब पूर्व पुण्य के कारण भाग्यवान हों उन्हें हीन वर्णन किया जाय तब प्रवीणजन उसे विपरीतोपमा कहते हैं।

उदाहरण

सवैया

भूषितदेह विभूति, दिगम्बर, नाहिंन अम्बर अंग नवीनो।
दूरिकै सुन्दर सुन्दरी केशव, दौरी दरीन में मन्दिर कीनो॥
देखि विभंडित दंडिनसों, भुजदंड दुवो असि दण्ड विहीनो।
राजनि श्रीरघुनाथ के राज, कुमण्डल छोड़ि कमण्डल लीनो॥३४।

उनके शरीर विभूति (भस्म) से भूषित (सुशोभित) हैं। वह दिगम्बर हैं और उनके शरीर पर नये वस्त्र नहीं हैं। 'केशवदास' कहते हैं कि सुन्दरी स्त्रियों को छोड़कर उन्होंने दौड़ कर पहाड़ों की गुफाओं में घर बनाया है। उनके भुजदण्ड दण्डियों (संन्यासियों) के दण्डों से सुशोभित है और दोनों दण्डों अर्थात् तलवार तथा राजदण्ड से विहीन हैं। श्री रघुनाथ जी के राज्य में, राजाओं ने पृथ्वी मण्डल को छोड़कर कमण्डल ले लिया है अर्थात् सन्यासी हो गये हैं।

१६–निर्णयोपमा

दोहा

उपमा अरु उपमेय को, जहँ गुण दोष विचार।
निर्णय उपमा होत तहँ, सब उपमनि को सार॥३५॥

जहाँ उपमान के दोषों पर तथा उपमेय के गुणों पर विचार करके, समता दी जाती है, वहाँ निर्णयोपमा होती है, जो सब उपमाओं का सार है।

उदाहरण

कवित्त

एकै कहैं अमल कमल मुख सीता जू को,
एकै कहैं चन्द्र सम आनँद को कंदरी।

होय जो कमल तो रमनि में न सकुचै री,
चन्द जो तो बासर न होय दुति मंदरी।
बासर ही कमल, रजनि ही में चन्द, मुख,
बासरहू रजनि बिराजै जग बन्दरी।
देखे मुख भावै, अनदेखेई कमल चन्द,
ताते मुख मुख, सखि कमल न चन्दरी ॥३६॥

हे सखी ! कोई तो सीताजी के मुख को स्वच्छ चन्द्रमा जैसा कहता है और कोई उसे आनन्द के कंद चन्द्रमा जैसा कहता है। यदि वह कमल जैसा होता तो रात में संकुचित क्यों न होता ? और यदि चन्द्रमा सदृश होता दिन में उसकी आभा मंद न होती ? कमल तो दिन ही में खिलता है, चन्द्रमारात में ही सुशोभित होता है और यह जगत वन्दनीय सीताजी का मुख रात-दिन सुशोभित रहता है। मुख देखने में अच्छा लगता है और कमल तथा चन्द्रमा बिना देखे अर्थात् केवल सुनने में अच्छे लगते हैं। इसलिए हे सखि ! मुख मुख ही है। न तो वह कमल है और न चन्द्रमा।

१७—लाक्षणिकोपमा

दोहा

लक्षण लक्ष्य जु बरणिये, बुधि बल बचन बिलास।
है लक्षण उपमा सु यह, बरणत केशवदास ॥ ३७ ॥

'केशवदास' कहते हैं कि जहाँ लक्षण (उपमान) और लक्ष्य (उपमेय) का वर्णन अपने बुद्धि बल या वचन चातुर्य से किया जाता है. वहाँ लांक्षणिकोपमा' कही जाती है।

उदाहरण

कवित्त

वासों मृग अंक कहैं, तो सों मृगनैनी सबै,
वह सुधाधर, तुहूँ सुधाधर मानिये।

वह है द्विजराज, तेरे द्विजराजी राजै, वह
कलानिधि, तुहूँ कलाकलित बखानिये।
रत्नाकर के हैं दोऊ केशव प्रकाश कर,
अंबर बिलास, कुवलय हितु गानिये।
वाके अति सीतकर, तुहूँ सीता! सीतकर,
चन्द्रमा सी चन्द्रमुखी सब जग जानिये ॥३८॥

(कोई ग्राम वासिनी स्त्री सीता जी से कहती है कि) चन्द्रमा से मृगाङ्क कहते हैं तो आपको सब मृगनैनी कहते हैं। वह सुधाधर है तो आप भी सुधा जैसे अधर रखने वाली हैं। वह द्विजराज कहलाता है तो आपके द्विज (दाँत) की राजी (पंक्ति) सुशोभित होती है। वह कलानिधि है तो आप भी चौंसठ कलाओं से युक्त मानी जाती हैं। 'केशव दास' (ग्रामीण स्त्री की ओर से) कहते हैं कि वह और आप दोनों ही रत्नाकर के प्रकाशक हैं। वह अंबर (आकाश) में विलास करता है तो आप में अंबर (वस्त्र) विलास करते हैं। चन्द्रमा कुवलय (कुमोदिनी) का हित् है तो आप कु-वलय (पृथ्वी मंडल) कि हितू हैं। हे सीता जी! उसके अति शीतल करने का गुण है तो आपके भी (दर्शकों तथा भक्तों) को (संताप हटाकर) शीतल करने का गुण है। इसलिए हे चन्द्रमुखी आप चन्द्रमा के समान ही हैं। इसे सब जग जानता है।

१८—असंभवितोपमा

दोहा

जैसे भाव न संभवै, तैसे करत प्रकास।
होत असंभवित तहां उपमा केशवदास ॥ ३९ ॥

'केशव दास' कहते कि जहाँ ऐसे भावों का वर्णन किया जाता है जो सम्भव न हों, वहाँ उसे असंभावित उपमा कहते हैं।

उदाहरण

कवित्त

जैसे अति शीतल सुबास मलयज माहिं.
अमल अनल बुद्धिबल पहिचानिये।

जैसे कौनो काल वश, कोमल कमल माहिं,
केशरैई 'केशौदास' कंटक से जानिये।

जैसे विधु सधर मधुर मधुमय माहिं,
मोहै मोहरुख, विष विषम बखानिये।

सुन्दरि, सुलोचनि, सुबचनि, सुदति तैसे,
तेरे मुख आखर परुषरुख मानिये ॥ ०॥

जिस प्रकार अत्यन्त शीतल और सुगन्धमय चन्दन में बुद्धिबल से अग्नि पहचानी जाती है केशवदास कहते हैं जिस प्रकार किसी काल-वश (विरह के समयाधीन) को कोमल कमल में केसर भी काँटों जैसी जान पड़ती है, जैसे पूर्ण चन्द्रमा को मधुर तथा मधुमय होते हुए भी मोह से मोह रुख (मूर्छा से मुर्छित प्रायः) विषय विषमय (कठोर विष से भरा) कहा करता है, उसी प्रकार हे सुन्दरी, सुलोचनी तथा सुन्दर दाँतों वाली, तेरे मुख में कठोर-वचनों को मानना चाहिए अर्थात् ऊपर लिखी बातें असम्भव हैं उसी प्रकार तेरे मुख में कठोर बचनों का होना असम्भव हैं।

१९—विरोधोपमा

दोहा

जहँ उपमा उपमेयसों, आपस मांहि विरोध।
सो विरोध उपमा सदा, बरणत जिनहि प्रबोध ॥ ४१ ॥

जहाँ उपमा और उपमेय में आपस का विरोध प्रदर्शित किया जाय, वहाँ उसे जानकार लोग सदा विरोधोपमा कहा करते हैं।

उदाहरण

कवित्त

कोमल कमल, कर कमला के भूषण को,
'केशौदास' दूषण शरद शशिठाई है।
शशि अति अमल अमृतमय मणिमय,
सीता को बदन देखि ताको मतिनाई है।
सीता को बदन सब सुख को सदन, जाहि,
मोहत मदन, दुख कदन निकाई है।
आधो पल माधो जू के देखे बिनु सोई शशि,
सीता के बदन कहँ होत दुखदाई है ॥४२॥

'केशवदास' कहते हैं कि कमला (श्रीलक्ष्मी जी) के भूषण स्वरूप कोमलकरों के लिए शरद ऋतु का चन्द्रमा दूषण स्वरूप ही है। चन्द्रमा अत्यन्त निर्मल, अमृत पूर्ण, तथा कांति वाला है, परन्तु फिर भी श्री सीता जी के मुख को देखकर उसमें मलिनता आ जाती है। श्री सीताजी का मुख सब सुखों का घर है, जिसे देखकर काम भी मोहित हो जाता है तथा दुखों को दूर करने वाली जिसकी शोभा है वही चन्द्रमा श्रीरामचन्द्र को आधे पल के लिए भी बिना देखे, सीता जी के मुख को दुखदाई हो जाता है।

२०—मालोपमा

दोहा

जो जो उपमा दीजिये, सो सो पुनि उपमेय।
सो कहिये मालोपमा, केशव कविकुल गेय ॥४३॥

'केशवदास' कहते हैं कि जहाँ उपमान, उपमेय और उपमेय, उपमान बनते चले जाँय वहाँ उसे कवि लोगों के द्वारा 'मालोपमा कहा जाता है।

उदाहरण

कवित्त

मदन मोहन ! कहौ रूप को रूपक कैसो,
मदन बदन ऐसो जाहि जग मोहिये ।
मदन बदन कैसो शोभा को सदन श्याम,
जैसो है कमल रुचि लोचननि जोहिये ।
कैसो है कमल ? शुभ ! आनन्द को कन्द जैसो,
कैसो है सुकंद ? चन्द उपमान टोहिये ।
कैसो है जु चन्द वह ? कहिये कुँवर कान्ह,
सुनौ प्राण प्यारी जैसो तेरो मुख सोहिये ।।४४।।

श्री राधा जी ने पूछा कि—'हे मदनमोहन ! सुन्दरता का रूपक (उपमान) क्या है ? श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया—'कामदेव का मुख. जिसपर संसार मोहित होता है ।' उन्होंने फिर प्रश्न किया है 'हे श्याम ! मदन का मुख कैसा शोभावान् है ?' तो श्रीकृष्ण बोले कि 'जैसा कमल है, उसकी शोभा आँखों से देख लो ।' तब उन्होंने पुनः पूछा कि 'कमल कैसा सुन्दर है ? हे शुभ ! बतलाइए ।' तब वह बोले कि 'जैसा आनन्द पूर्ण बादल ।' उन्होंने पुनः प्रश्न किया—'बादल कैसा सुन्दर है ?' तब उन्होंने उत्तर दिया कि 'उसके समान तो खोजने पर चन्द्रमा ही मिलता है । राधा जी फिर बोलीं कि हे कुँवर कृष्ण —'वह चन्द्रमा कैसा सुन्दर है ?' तब उन्होंने उत्तर दिया कि हे—'प्राणप्यारी ! सुनो, जैसा तुम्हारा मुख सुन्दर है ।'

२१—परस्परोपमा

दोहा

जहाँ अभेद बखानिये, उपमा अरु उपमान ।
तासों परस्परोपमा, केशवदास बखान ।।४४।।

'केशवदास' कहते हैं कि उपमान और उपमेय में अभेद वर्णन किया जाय, वहाँ उसे परस्परोपमा' कहते हैं।

उदाहरण

कवित्त

बारे न बड़े न वृद्ध. नाहिनै गृहस्थ सिद्ध,
बावरे न बुद्धिवंत, नारी और नर से।
अंगी न अनंगा तन, ऊजरे न मैले मन,
स्यार ऊ न शूरे रन, थावर न चर से।
दूबरे न मोटे, राजा रंक ऊ न कहे जायँ.
मर न अमर अरु आपने न पर से।
वेद हू न कछु भेद पावत हैं 'केशवदास'
हरि जू से हेरे हर. हरि हेरे हर से।४६॥

न तो वे बारे (छोटे) से हैं, न बड़े से न वृद्ध से, न गृहस्थ से, न सिद्ध से, न पागल से, न बुद्धिमान से, न नारी से और नर से हैं। न वे शरीरधारी से हैं, न अंगर हित से हैं, न उजले से हैं, न मैले से हैं, न कायर मन कैसे हैं, न युद्ध वीर से हैं, न स्थावर से है और न जंगम से हैं। न दुबले से हैं, न मोटे जैसे हैं, न राजा से और रंक से भी कहे जा सकते हैं, न मरणशील से हैं न अमर से हैं। न अपने से हैं और न पराये जैसे हैं। 'केशवदास' कहते हैं, कि जिनका भेद वेद तक नहीं पाते, वे हरि (श्री विष्णु जी) श्री शङ्कर जी के समान देखे और श्री शंकर जी को विष्णु के समान पाया।

इक्कीस भेदों का वर्णन करने के बाद श्री केशवदास ने उपमा का एक भेद संकीर्णोपमा भी लिखा है।

३०—संकीर्णोपमा

दोहा

बन्धु, चोर, बादी, सुहृद, कल्पपृच्छ प्रभु जान।
अंगी, रिपु, सोदर आदिदै, इनके अर्थ बखान ॥४६॥

बन्धु, चोर, बादी, सुहृद (मित्र), कल्प (शरीर), पृच्छ (विवादी), प्रभु, अंगी, रिपु (शत्रु) तथा सोदर (सगा भाई) आदि संकीर्णोपमा के वाचक समझने चाहिए।

उदाहरण

कवित्त

विधु को सो बंधु, किधौं चोर हास्य रस कोकि,
कुन्दन को वादी, किधौं मोतिन को मति है।
कल्प कल हँस को कि छीन निधि छवि प्रच्छ,
हिमगिरि-प्रभा-प्रभु प्रगट पुनीत है।
अमल अमित अंगी गंगा के तरंगन को,
सोदर सुधा को, रिपु रूपे को अभीत है।
देस देस दिस दिस परम प्रकाशमान,
किधौं 'केशौदास' रामचन्द्र जू को गीत है ॥४८॥

चन्द्रमा का भाई है कि हास्यरस का चोर है कि कुन्दन (सोने) का वादी है, कि अमृत का सगा भाई है अथवा मोतियों का मित्र है। सुन्दर हँस का शरीर है कि क्षीर निधि का प्रति द्वन्द्वी है कि हिमालय की शोभा का स्वामी अथवा प्रत्यक्ष पवित्रता है। गङ्गा जी की निर्मल तरंगों का साथी है कि अमृत का सगा भाई है कि चांदी का निडर शत्रु है अथवा केशवदास' कहते हैं कि देश देशान्तरों में प्रकाशमान यह श्री रामचन्द्र जी का गीत है।

—:※:—

पन्द्रहवाँ प्रभाव

२६—यमक अलंकार

दोहा

पद एकै नाना अरथ, जिनमें जैतो वित्त।
तामें ताको काढ़िये, यमक मांहि दै चित्त ॥१॥

जहाँ शब्द एक ही हो अर्थ अनेक हों, वहाँ यमक होता है। इस यमक में चित्त लगाकर, जिसमें जितनी प्रतिभा शक्ति होती है, उतने ही अर्थ निकाल सकता है।

आदि पदादिक यमक सब, लिखे ललित चितलाय।
सुनहु सुबुद्धि उदाहरण, केशव कहत बनाय ॥२॥

केशवदास कहते हैं कि मैंने यमक के आदि पदादिक अनेक सुन्दर भेद मन लगाकर लिखे हैं। हे सुबुद्धि ! अब उनके उदाहरणों को सुनों, जो मैंने बनाये हैं।

आदिपत यमक

दोहा

सजनी सज नीरद निरखि, हरषि नचत इत मोर।
पीय पीय चातक रटत, चितवहु पिय की ओर ॥३॥

हे सजनी ! बादलों की सज (सजावट) को देख ! यहाँ मोर हर्षित होकर नाच रहे हैं, अतः तू भी पति की ओर देख।

[इसमें सजनी-सजनी में यमक हैं जो आदि में है, इसीलिए आदि-पद यमक नाम रखा गया है]

यमक के भेद

दोहा

अव्ययेत सव्ययेत पुनि, यमक बरन दुइ देत।
अव्ययेत बिनु अंतरहि, अन्तर सो सव्ययेत ॥४॥

यमक के फिर दो भेद और होते हैं। जहाँ पदों में अन्तर नहीं होता अर्थात् जो जुड़े हुए रहते हैं, वह अव्ययेत कहलाता है और जहाँ अन्तर होता है अर्थात् जहाँ बीच में दूसरा पद आ जाता है, वह सव्ययेत कहलाता है।

द्वितीयपद यमक

दोहा

मान करत सखि कौनसों, हरि तू हरितू आहि।
मान भेद को मूल है, ताहि देखि चित चाहि ॥ ५ ॥

हे सखी तू किससे मान करती है। तू तो हरि (श्रीकृष्ण) ही है अर्थात् वे और तू एक ही हैं, इसलिए आहि अर्थात् दुःख भरी श्वांस को हरण कर ले या दूर कर दे मान ही तो भेद की जड़ है अतः उन्हें प्रेमपूर्वक देख।

[इसमें द्वितीय पद में हरितू हरितू पदो में यमक है, अतः द्वितीय पद यमक नाम पड़ा]

तृतीय पदयमक

दोहा

शोभा शोभित आँगनरु, हय हींसत हयसार।
बारन बारन गुंजरत, बिन दीने संसार ॥ ६ ॥

शोभा से सुशोभित आंगन, हींसते हुए घोड़ों से भरी घुड़साल (स्तबल) और दरवाजे पर चिंघाड़ते हुए हाथी।

इस संसार में बिना दिये अर्थात् पूर्वजन्म में बिना दान किये न तो शोभा से युक्त आंगन या घर मिलता है, न घुड़साल में घोड़े हींसते है और न दरवाजे पर हाथी चिंघाड़ते हैं

[इसमें बारन, बार न पदो में तीसरे पद का यमक है]

चतुर्थपद यमक

दोहा

राधा! केशव कुँवर की, बाधा हरहु प्रवीन।
नेकु सुनावहु करि कृपा, शोभन बीन नवीन॥ ७॥

हे प्रवीण राधा। श्रीकृष्ण की बाधा दूर करो और उन्हें तनिक कृपा करके, नई सुन्दर वीणा सुना दो।

[इसमें नवीन-नवीन में यमक है जो चतुर्थ पद में है]

अतः चतुर्थपाद यमक है।

यमक आद्यंतय

दोहा

हरिके हरि केवल मनहिं, सुनि वृषभानुकुमारि।
गावहु कोमलगीत द्वै, सुख करता करतारि॥ ६॥

हे वृषभान् कुमारी (राधा) सुनो। हरि (श्रीकृष्ण) के बल और मन को हरि के (हरण करके) तुम यहां (करतारि दै) ताली बजाकर (सुख करता) आनन्द दायक कोमल गीत गा रही हो। (वहां वह तुम्हारे वियोग में तड़प रहे हैं)।

[इसमें आदि में हरि के-हरिके 'शब्दों में, तथा अन्त में 'करता, करता' शब्दों में यमक है अतः आद्यन्त यमक हुआ]

द्विपादयमक (प्रथम और तीसरे में)

दोहा

अलिनी अलि नीरज बसे, प्रति तरुवरनि विहंग ।
है मनमथ मनमथन हरि, बसै राधिका संग ॥ ९ ॥

जिस प्रकार भ्रमरी और भ्रमर कमल में बसते हैं और जिस प्रकार प्रति वृक्षपर पक्षियों के जोड़े रहते हैं, उसी प्रकार मनमथ (कामदेव) के मन को मथने वाले श्रीकृष्ण श्रीराधाजी के साथ रहते हैं ।

[इसमें पहले चरण में 'अलिनी अलिनी' में यमक हैं और तीसरे चरण में 'मनमथ-मनमथ' में यमक है]

त्रिपद यमक

दोहा

सारस सारसनैन सुनि, चन्द्र चन्द्रमुखि देखि ।
तू रमणी रमणीयतर, तिनते हरिमुख लेखि ॥१०॥

हे सारस नैन (कमलवत नेत्र वाली) सुन ! हे चन्द्रमुखी ! सारस (कमल) और चन्द्रमा को देख ! हे रमणी ! तू इनसे भी रमणीयतर (बढ़कर) है ! उनसे भी बढ़कर हरिमुख (श्री कृष्ण के मुख) को समझ ।

[इसमें पहले चरण में 'सारस-सारस' में, दूसरे में 'चन्द्र, चन्द्र' में और तीसरे में 'रमणी, रमणी' में यमक है अतः त्रिपाद यमक हुआ]

पादान्तपादादियमक

दोहा

आप मनावत प्राणपिय, मानिनि ! मान निहार ।
परम सुजान सुजान हरि, अपने चित्त विचार ॥११॥

State Museum, LUCKNOW.

हे मानिनी ! तुझे तेरा प्राण प्यारा स्वयं मना रहा है, देख और मान जा। हरि (श्रीकृष्ण) को सुजान जानकर अपने चित्त में इसका विचार कर

[इसमें 'माननि-माननि', तथा 'सुजान' में यमक है। एकपादान्त है, दूसरा पादादि]

द्विपादांत यमक

दोहा

जिन हरि जगको मन हर्यो, बाम बानदृग चाहि।
मनसा वाचा कर्मणा, हरि बनिता बनि ताहि ॥१२॥

हे वाम ! जिन हरि (श्रीकृष्ण) ने वाम दृग (तिरछी दृष्टि) से देखकर सारे संसार का मन हर लिया है, उन हरि की तू मन, वचन और कर्म से बनिता (स्त्री) बन जा।

[इसमें 'बाम बाम' तथा 'बनिता-बनिता' में यमक है]

उत्तरार्द्ध यमक

दोहा

आजु छबीली छबि बनी, छांड़ि छलिन के संग।
तरुनि, तरुनि के तर मिलौ, केशव के सब अंग ॥१३॥

आज (श्रीकृष्ण) की शोभा अच्छी बनी है। अतः छलियों का संग छोड़कर, हे तरुणि ! वृक्षों के नीचे, श्रीकृष्ण के सब अंगों से लिपट कर मिल

[इसमें उत्तराई के दोनों चरणों में 'तरुनि-तरुनि' तथा 'केशव, केसब' में यमक है]

त्रिपाद यमक

दोहा

देखि प्रबाल प्रबाल हरि, मन मनमथरस भीन।
खेलन वह सुन्दरि गई, गिरि सुन्दरी दरीन ॥ १४ ॥

वृक्षों के नये पत्ते तथा युवक हरि (श्रीकृष्ण) को देखकर वृथा काम में लीन होकर, वह सुन्दरी पहाड़ों की सुन्दर गुफाओं में खेलने को गई।

[इसमें तीसरे पद को छोड़कर शेष तीनों में यमक है। पहले में 'प्रबाल-प्रबाल' में दूसरे में 'मन-मन' में और चौथे में 'दरी-दरी' में।]

दोहा

परमानद पर मानदहि, देखति बन उतकण्ठ।
यह अबला अब लागिहै, मन हरि हरि के कण्ठ ॥ १५ ॥

अत्यन्त आनन्द स्वरूप तथा दूसरों को मान देने वाले (श्रीकृष्ण) को देख कर, बन में यह अबला, हरि (श्रीकृष्ण) का मन हर कर, उनके कण्ठ से अब लगेगी।

[इसमें 'परमानद-परमानद', 'अबला-अबला', तथा 'हरि-हरि' पदों में यमक है।]

जूझि गयो संग्राम में, सूर जु सूरजु लेखि।
दिविरमणी रमणीय करि, मूरति रति सम देखि ॥ १६ ॥

हे सूर ! सूर्य संग्राम में जूझ चुके हैं अर्थात् अस्त हो चुके हैं अतः स्वर्ग की रमणी अर्थात् अप्सरा जैसी रमणीय तथा रति के समान मूर्त्ति वाली को चलकर देखो।

[इसमें 'सूरजु-सूरजु', 'रमणी-रमणी' तथा 'रति रति' में यमक है]

चतुष्पाद यमक

दोहा

नहीं उरबसी उरबसी, मदत मदन वश भक्त।
सुर तरुवर तरुवर तजैं, नंद-नंद आसक्त॥ १७॥

जो भक्त होते हैं, उनके मन में उरवसी वास नहीं करती और न वे काम के नशे के वश में होते हैं। जो नंद-नंद (नन्द के पुत्र श्रीकृष्ण) पर आसक्त रहते हैं वे कल्पवृक्ष को भी साधारण वृक्ष की भाँति छोड़ देते हैं।

[इसके चारों पदों में यमक है]

दोहा

अव्ययेत जमकनि सदा, बरणहु इहिविधिजान।
करो व्ययेत विकल्पना, जमकनिकी सुखदान॥ १८॥

अव्ययेत यमकों सदा इसी तरह से वर्णन करना चाहिए। अब मैं व्ययेत यमकों का आनन्द दायी वर्णन करता हूँ।

सव्ययेत यमक

दोहा

माधव सो धव राधिका, पावहु कान्हकुमार।
पूजौ माधव नियम सों, गिरिजा को भरतार॥ १९॥

हे राधिका। यदि तुम इस बात की अभिलाषा करती हो कि तुम्हें माधव (विष्णु) के समान श्रीकृष्ण पति रूप में मिलें तो नियम से वैशाख मास में श्री शङ्कर जी को पूजो।

[इसमें 'धव, धव' तथा 'माधव, माधव' में जो यमक है, उसके आगया है। ये पद सटे हुए नहीं है. अतः सव्ययेत बीच में दूसरा पद कहलाते हैं।]

आदिअन्त यमक

दोहा

सीयस्वयम्बर मांझ जिन, बनितन देखे राम।
ता दिनतें उन सबन सखि, तजे स्वयम्बर धाम ॥ २० ॥

श्री सीता जी के स्वयम्बर में जिन स्त्रियों ने श्री राम को देखा, उसी दिन से उन सबों ने, हे सखि! अपने पतियों के घर छोड़ दिये (कि वन में जाकर तपस्या करें और श्रीराम सा वर पावें)

अथ पादांत निरन्तर यमक

दोहा

पाप भजत यों कहत ही, रामचन्द्र अवनीप।
नीप प्रफुल्लित देखि त्यों, विरहा प्रिया समीप ॥२१॥

राजा रामचन्द्र कहते ही जिस प्रकार पाप भाग जाते हैं, उसी प्रकार कदम्ब को फूला हुआ देखकर विरही प्रिया के पास भागता है।

[इसमें 'नीप, नीप' में यमक है, जो एक पद के अन्त में है और दूसरा चरण के आरम्भ में]

दोहा

जैसे छुवे न चन्द्रमा, कमलाकर सविलास।
तैसेही सब साधुबर, कमला करन उदास ॥२२॥

जैसे चन्द्रमा फूले हुए कमलों को नहीं छूता. वैसे ही सब साधुजन लक्ष्मी को हाथ से नहीं छूते

[इसमें दूसरे तथा चौथे चरण के 'कमलाकर-कमलाकर' पदों को मिलाकर यमक बनता है।]

पूर्वोत्तर यमक

दोहा

परम तरुणि यों शोभियत, परमईशअरधंग।
कल्पलता जैसी लसै, कल्पवृत्त के संग ॥२३॥

परम तरुणी (श्री पार्वती जी) परमईश (श्री शङ्कर जी) के अर्द्धाङ्ग में इस प्रकार शोभित हो रही हैं, जिस प्रकार कोई स्वेत लता कल्पवृत्त में लिपटी हो।

[इसमें पूर्व पदों में 'परम-परम' और उत्तर पदों में 'कल्प-कल्प' का यमक है]

त्रिपादादि यमक

दोहा

दान देत यों शोभियत, दान रतन के हाथ।
दान सहित यों राजहीं, मत्तगजनि के माथ ॥२४॥

दान देते समय दान रत्नों अर्थात् श्रेष्ठ दानियों के हाथ इस प्रकार सुशोभित होते हैं जिस प्रकार मतवाले हाथियों के मस्तक दान (मद) सहित सुशोभित होते हैं।

[इसमें 'दान' शब्द का यमक है]

चतुष्पदादि यमक

दोहा

नरलोकहि राखत सदा, नरपति श्री रघुनाथ।
नरक निवारण नाम जग, नर वानर को नाथ ॥२५॥

यमक के भेद

दोहा

सुखकर दुखकर भेद द्वै, सुखकर बरणे जान।
यमक सुनो कविराय अब, दुखकर करौंबखान ॥२६॥

यमक के सुखकर और दुखकर दो भेद फिर हैं। अब तक सुखकर अर्थात् सरल यमकों का वर्णन किया गया है। हे कविराय। सुनो, अब मैं दुखकर (कठिन) यमकों का वर्णन करता हूँ।

दुखकर यमक

दोहा

मानसरोवर आपने. मानस मानस चाहि।
मानस हरिके मीन को, मानस बरणेताहि ॥२७॥

हे मान-सरोवर (अभिमान के सरोवर) मनुष्य। अपने मानस (मन) में मा (लक्ष्मी) को नस अर्थात् नश्य समझ। हरिरूपी मान-सरोवर की मछली अर्थात् हरिभक्ति में डूबने वालों को तू मानस (साधारण) मनुष्य कहता है।

दुखकर यमक—२

दोहा

बरणी बरणी जातक्यों, सुनि धरणीकेईश।
रामदेव नरदेव मणि. देव देव जगदीश ॥२८॥

हे धरणी के ईश अर्थात् हे राजन्। मुझसे वरणी (यज्ञ में वरण किये हुए ब्राह्मणों को दिया हुआ दान) कैसे वर्णन किया जा सकता है। क्योंकि श्रीरामचन्द्रजी नरदेव अर्थात् राजाओं में श्रेष्ठ, देव-देव अर्थात् देवताओं में श्रेष्ठ और जगत के स्वामी हैं।

दुखकर यमक—३

दोहा

राजराज सङ्ग ईशद्विज, राजराज सनमान।
विषविषधर अरु सुरसरी, विष विषमन उर आन ॥२९॥

ईश अर्थात् श्रीशङ्कर जी के साथ राजराज (कुबेर) हैं, द्विज (चन्द्रमा) हैं और बड़े-बड़े राजा उनका सम्मान करते हैं। उनके साथ विष, विषधर (साँप) और सुरसरी (श्री गंगाजी) भी हैं। इन्हें विषम (बेजोड़) न समझो।

दुखकर यमक—४

प्रमानिका छन्द

प्रमान मान नाचेही, अमान मान राचही।
समान मान पावही, विमान मान धावही ॥ ३० ॥

तू अपने प्रमान (ताल) पर नाचता है। उस को अमान (असीम) मान (ज्ञान) समझता है। अतः उसी के समान तू मान (आदर) पाता है। फिर भी मान (अभिमान) के विमान पर दौड़ता है।

दुखकर यमक—५

दोहा

कुमतिहारि संहारि हठ, हितहारिनी प्रहारि।
कहा रिसात विहारि वन, हरि मन, हारि निहारि ॥ ३१ ॥

कुमति को हरादे, हठ को मार दे, हितहारिणी (हानि पहुँचाने-वाली) सखियों को प्रहारि अर्थात् भलीभाँति दण्ड दे। तू रिसाती क्यों है अर्थात् मान क्यों करती है। हरि की मनुहारि (विनती) को देख और उन्हीं के साथ वन में विहार कर।

दुखकर यमक—६

दोहा

सुरतरवर में रंभा बनी, सुरतरवर मे रंभा बनी।
सुरतरंगिनी करि किन्नरी, सुरतरंगिनी करि किन्नरी ॥३२॥

मैने सुरतरुवर (पारिजात) युक्त रंभावनी (कदली की वनी या बगीची) में, सुरतरव अर्थात् अपने संगीत में लीन घूमती हुई और रंभा जैसी बनी-ठनी, सुरतरंगिनी स्वरों की नदी स्वरुपिणी किन्नरी (सारंगी) लिए, सुरत (सुन्दरता में रंगिनी अनुरक्त करने वाली किन्नरी देखी।

दुखकर यमक—७

दोहा

श्रीकंठ उर वासुकि लसत, सर्वमंगलामार।
श्रीकंठ उर वासुकि लसत, सर्वमंगलामार ॥ ३३ ॥

श्रीकंठ अर्थात् श्रीशङ्कर जी महाराज के हृदय पर वासुकि नाग सुशोभित होता है और वह सर्व मंगलामार (सर्व मंगल + अमार) अर्थात् मंगलमूर्त्ति और काम रहित हैं। सर्वमंगला (श्री पार्वतीजी) श्रीकंट (सुशोभित कंठ वाली) हैं तथा मा (लक्ष्मी) और (अग्नि) स्वरूपिणी हैं।

दुखकर यमक—८

सवैया

दूषण दूषण के यश भूषण, भूषणअंगनि केशव सोहै।
ज्ञान सँपूरण पूरणकै, परिपूरण भावनि पूरण जोहै॥
श्री परमानँद की परमा, परमानँद की परमा कहि कोहै।
पातुरसी तुरसी मतिको अवदात रसी तुलसीपति मोहै ॥३४॥

'केशवदास' कहते हैं कि जो 'दूषण-दूषण' अर्थात दूषण राक्षस के वैरी श्रीरामचन्द्र जी के यशरूपी भूषणों (शंख, चक्रादिकों को) अपने अंगों पर धारण करके सुशोभित होता है, जो ज्ञान से भरी हुई भावनाओं के द्वारा ईश्वर को संसार व्यापी देखती है। जो परमानंद (श्री भगवान) की परमा (शोभा) पर मुग्ध है अर्थात् उनमें लीन है, उसके लिए आनन्द की परमा (अधिकता) क्या है। अर्थात् वह आनन्द को कुछ नहीं समझता। उसकी मति में (उसके विचार में) वेश्याएं तुरसी (खट्टी या बुरी) हैं, उसकी बुद्धि अवदातरसी (शांत रस में सनी हुई) रहती है तथा वह तुरसी पति (तुलसीपति) श्री विष्णु पर मोहित होती है।

दोहा

इहिंविधि औरहु जानिये, दुखकर यमक अनेक।
बरणत चित्रकवित्त अब, सुनियो सहित विवेक ॥३५॥

इसी तरह और बहुत से दुखकर यमक हो सकते हैं। अब मैं चित्र अलंकार के कवित्तों (छन्दों, रचनाओं) में वर्णन करता हूँ। जो विवेक वान हैं, वे सुनें।

ये नीचे लिखे छन्द प्रक्षिप्त से ज्ञात होते हैं; क्योंकि यमकालंकार से इनका कोई सम्बन्ध नहीं है।

१—अनुप्रास

छन्द

जो तू सखि न कहै कछु चालहि, तौहौं कहूँ इकबात रसालहि
तो कहुँ देहुँ बनी बनमालहि, मोकहँ तू मिलवै नँदलालहि ॥३६॥

पुनः—२

जैसे रचै जय श्री करवालहि । ज्यों अलिनी जलजात रसालहि ।
ज्यों बरषा हरषै बिन कालहि । त्यों दृग देखन चहत गुपालहि ॥३७॥

सवैया

स्यंदन हांकत होत दुखी दिन दूरि करै सबके दुखदंदन ।
छंदनि जानी नहीं जिनकी गति नाम कहावत हैं नँदनंदन ॥
फंदनपंडुके पूतनिकी मति काटि करै मनमोह निकंदन ।
चंदनचेरीके अंग चढ़ावत देव अदेव कहैं जगवंदन ॥३८॥

—:※:—

सोलहवाँ प्रभाव

३७—चित्रालंकार

दोहा

केशव चित्र समुद्र में, बूड़त परम विचित्र।
ताके बूंदक के कणै, बरनत हौं सुनि मित्र॥ १ ॥

'केशव दास' कहते हैं कि चित्रालंकार के समुद्र में बड़ी अद्भुत प्रतिमा वाले भी गोता खाने लगते हैं। हे मित्र! सुनो, मैं उसी समुद्र की एक बूंद के एक क़ण का वर्णन करता हूँ।

दोहा

अधऊरध बिन बिंदुयुत, जति, रसहीन, अपार।
बधिर, अंध, गन अगन को, गनिय न नगन विचार॥ २॥

इन चित्रालंकारों में, विसर्ग अनुस्वार, यति भंग, रसहीनता, बधिर, अंध, तथा गण अगण का विचार नहीं किया जाता।

दोहा

केशव चित्रकवित्त में, इनके दोष देख।
अक्षर मोटो पातरो, बव जय एको लेख॥ ३॥

'केशवदास' कहते हैं कि चित्रालंकार युक्त रचनाओं में इन दोषों का विचार न कीजिए। (इतना ही नहीं यदि आवश्यकता पड़े तो) दीर्घ अक्षर को लघु, मान लीजिए तथा 'ब' और 'व' एवं 'ज' और 'य' को एक ही समझिए।

दोहा

अतिरति मतिगति एककर, बहु विवेक युतचित्त।
ज्यों न होय क्रमभंग त्यों, बरनो चित्रकवित्त ॥ ४ ॥

बड़े प्रेम के साथ, मति (बुद्धि) की गति को एकत्र करते हुए, अर्थात् जहाँ तक बुद्धि जा सके वहाँ तक, अपने चित्त को विवेक युत करके, चित्रालंकार युक्त रचना करो, जिससे पहले लिखे हुए नियमों का (जहाँ तक हो सके) क्रम भंग न हो। [भाव यह है कि यद्यपि चित्रालंकार में, दोषों पर ध्यान नहीं देने का अधिकार प्राप्त है, परन्तु फिर भी जहाँ तक हो सके दोषों से बचना ही चाहिए]

१—निरोष्ठ

दोहा

पढ़त न लगै अधर सों, अधर बरण त्यों मांड।
और बर्ण बरणौं सबै, उ पवर्ग को छंडि ॥ ५ ॥

'निरोष्ठ' में ऐसे अक्षरों को रखो कि उसे पढ़ते समय, और ओठ से ओंठ न छूने पावें। इस तरह की रचना में उ' ऊ' पर्वग (प, फ, ब, भ, म) को छोड़ कर, सभी अक्षरों का प्रयोग करो।

उदाहरण

कवित्त

लोक लीक नीकी, लाज ललित है नंदलाल,
लोचन ललित लोल लीला के निकेत हैं।
सौं हन को सोच न सकोच लोका लोकनि को,
देत सुख, ताको सखीं दूनो दुख देत हैं।
'केशौदास' कान्हर कनेर ही के कोरक से,
बाह्य रंग राते अंग, अंतस में सेत हैं।

देखि देखि हरि की हरनता हरिन नैनी,
देखत ही देखा नहीं हियो हरि लेत हैं ॥ ६ ॥

हे सखी ! श्रीकृष्णा लोक मर्यादा तथा लज्जा को छुड़ा देते हैं। उनके सुन्दर नेत्र हैं तथा वह लोला के घर हैं। न तो उन्हें शपथ खाने का कुछ शोच है और न सांसारिक निंदा ही का कुछ ध्यान है। जो उन्हें सुख देता है उसे वह दूना दुख देते हैं। केशवदास (उस सखी की ओर से) कहते हैं कि श्रीकृष्ण कन्हेर के फूल की भाँति बाहर रङ्गबिरङ्ग और भीतर सफेद है। अर्थात् उनका बाहर-भीतर एक सा नहीं है; मन में कुछ रखते हैं और ऊपर दूसरा व्यवहार करते हैं। हे हरिण नैनी ! श्रीकृष्ण की हरण करने की शक्ति तो देख ! वह देखते ही देखते क्या हृदय को हरण नहीं कर लेते ?

२—मात्रारहित वर्णन

दोहा

एकैस्वर जहँ बरणियें, अद्भुतरूप अवर्ण।
कहिये मात्रारहित जहँ, मित्र चित्र आभर्ण ॥ ७ ॥

हे मित्र ! जहाँ किसी रचना में केवल एक ही स्वर 'अ' का अद्भूत रूप से प्रयोग किया जाता है, वहाँ, उसे मात्रा रहित चित्रालंकार कहते हैं।

उदाहरण

कवित्त

जग जगमगत भगत जन रस बस,
भव भयहर कर, करत अचर चर।
कनक बसन तन, असन अनल बड़,
बटदल बसन, सजलथल थलकर।

अजर अमर अज बरद चरन धर,
परम धरम गन, बरन शरन पर।
अमल कमल वर वदन, सदन जस,
हरन मदन मद, मदन-कदन हर ॥८॥

जो भक्तों की भक्ति के वश में होकर जग में जगमगाते रहते हैं अर्थात् भक्तों का कष्ट दूर करने के लिए संसार में अवतरित होकर शोभा धारण करते हैं। जो संसार के भय को दूर करके, अचर को चर करने वाले हैं। जो शरीर पर कनक अर्थात् सोने के रंग का कपड़ा धारण करते हैं, जिन्होंने बड़ी भारी अग्नि को भोजन बना डाला अर्थात् दावाग्नि को पी गये। जो वट के पत्तेपर निवास करते हैं तथा जिन्होंने समस्त पृथ्वी को सजल अर्थात् जलमय कर दिया था। चिरंजीव देवता गण तथा श्री ब्रह्माजी एवं श्रीशंकर जी जिनके चरण छूते हैं। जो अत्यन्त धर्म परायणों को शरण देने वाले हैं। जिनका निर्मल कमल जैसा श्रेष्ठ मुख है, जो कीर्ति के घर हैं, जो अपनी सुन्दरता से कामदेव के गर्व को भी हरण कर लेते हैं, ऐसे काम के नाश को दूर करने वाले अर्थात् काम को (प्रद्युम्न के रूप में) पुनः उत्पन्न करने वाले श्रीकृष्ण हैं।

४ एकाक्षर रचना

दोहा

एकादिक दै वर्ण बहु, वर्णों शब्द बनाय।
अपने अपने बुद्धिबल, समुझत सब कविराय ॥९॥

एक से लेकर दो, तीन, चार आदि अनेक वर्णों की रचना की जा सकती है। कवि सम्राट अपने अपने बुद्धिबल से उसे समझ लेते हैं।

उदाहरण

४—एकाक्षर

दोहा

गो० गो० गं० गो० गी० अ० आ०, श्री० धी० ही० भी० भा० न।
भू० वि०ष० स्व० ज्ञा०द्यौ०,हि० हा०, नौ०ना० सं०,भं० मा० न।१०।

सूर्य, चन्द्र, श्रीगणेश, गाय, सरस्वती, श्रीविष्णु, श्रीब्रह्मा, और श्री लक्ष्मीजी को धारण कर लज्जा और भय न कर। इससे पृथ्वी और आकाश तेरे लिए अपने समझ पड़ेंगे। तेरा हृदय प्रकाशित होगा। तुझे नया कष्ट न मिलेगा तथा तू प्रकाशित होगा और तेरी मृत्यु न होगी।

५—द्वयाक्षर शब्द रचना

दोहा

रमा, उमा, बानी, सदा, हरि, हर, विधि, सँग वाम।
क्षमा, दया, सीता, सती, कीनी रामा० राम ॥११॥

श्री लक्ष्मी जी, पार्वतीजी और सरस्वती जी सदा श्रीविष्णु, श्री शंकरजी तथा श्री ब्रह्माजी के साथ रहने वाली हैं, परन्तु श्री रामजी की पत्नी सती साध्वी सीताजी ही क्षमा और दया से युक्त हैं।

६—त्रयाक्षर शब्द रचना

दोहा

श्रीधर, भूधर, केसिहा, केशव, जगत, प्रमाण।
माधव, राघव, कंसहा, पूरन, पुरुष, पुराण ॥१२॥

'केशवदास' कहते हैं कि श्रीकृष्ण श्री (शोभा) को धारण करने वाले, गोवर्द्धन पर्वत धारी, केशी को मारने वाले, माधव, राघव, कंश को मारनेवाले तथा पूर्ण पुरुष हैं, इसका जगत साक्षी है।

७—चतुराक्षर रचना

कवित्त

सीतानाथ, सेतुनाथ, सत्यनाथ, रघुनाथ,
जगनाथ, ब्रजनाथ, दीनानाथ देवगति।
देवदेव, यज्ञदेव, विश्वदेव, व्यासदेव,
वासुदेव, वसुदेव, दिव्यदेवदीन रति।
रणवीर, रघुवीर, यदुवीर, ब्रजवीर,
बलवीर, वीरवर, रामचन्द्र चारुमति।
राजपति, रमापति, रामापति, राधापति,
रसपति, रसापति, रासपति, रागपति।१३॥

दोहा

अक्षर षटबिंसति सबै, भाषा बरनि बनाव।
एकएक घटि एक लगि, केशवदास सुनाव॥ १४॥

'केशवदास' कहते हैं कि अब मैं छब्बीस वर्णों के दोहे से आरम्भ करके, एक एक वर्ण घटते हुए एकाक्षर तक की रचना सुनाता हूँ।

छब्बीस वर्ण की रचना

दोहा

चोरीमाखन दूध, ध्यो, ढूंढ़त हठि गोपाल।
डरो न जल थल भटकि फिरि, झगरत छवि सों लाल॥१५॥

कोई गोपी श्री कृष्ण से कहती है कि हे गोपाल! तुम मक्खन, दूध और घी की हठपूर्वक चोरी करने के लिए, जल, स्थल सभी जगह भटकते फिरते हो और डरते नहीं। साथ ही बड़ी छवि से अर्थात बड़े अभिमान से लड़ने को भी उद्यत होते हो।

पचीस वर्ण की रचना

दोहा

चेरी चंदन हाथ कै, रीझ चढ़ायो गात।
विह्वलांद्वितधर डिर्भशिशु, फूले वपुष नमात ॥ १६ ॥

जब चेरी (कुवरीदासी) ने, रीझ कर, श्रीकृष्ण के शरीरपर चंदन लगाया, तब राजा कंस बहुत विह्वल (व्याकुल) हुआ और बालरूप धारी कृष्ण फूले न समाये।

चौबीस वर्ण की रचना

दोहा

अघ, वक, शकट, प्रलंब हनि, मारयो गज चाणूर।
धनुषभंजि दृढ़दौरि पुनि. कंसमथ्यो मद मूर ॥१७॥

(श्री कृष्ण ने अघासुर, वकासुर; शकटासुर और प्रलंबासुर को मारकर गज (कुवलया हाथी) और चाणूर का संहार किया। फिर दौड़कर मतवाले कंस के दृढ़ धनुष को तोड़ते हुए, उसे भी मार डाला।

तेईस वर्ण की रचना

दोहा

सूधी यशुमति नन्द पुनि, भोरे गोकुलनाथ।
माखनचोरी झूठ हठ, पढ़े कौन के साथ ॥१८॥

यशोदा जी सीधी हैं, और गोकुलनाथ नंद भी भोले-भाले हैं, फिर बताओ मक्खन की चोरी करना, झूठ बोलना, तथा हठ करना, किनके साथ रहकर सीखा है ?

बाईस वर्ण की रचना

दोहा

हरि दृढ़ बल गोविंद विभु, मायक सीतानाथ।
लोकप विट्ठल शंखधर, गरुड़ध्वज रघुनाथ ॥१९॥

इक्कीस वर्ण की रचना।

दोहा

जैसे तुम सब जग रच्यो, दियो कालके हाथ।
तैसे अब दुख काटि, करमफन्द हृद नाथ ॥२०॥

जैसे आपने सारी सृष्टि रचकर, काल के हाथ में (नाश करने के लिए) दे दी है, वैसे ही, हे नाथ ! मेरे दुःखों तथा कर्म फंदों को भी काट दीजिए।

बीस अक्षर की रचना।

दोहा

थके जगत समुझाय सब, निपट पुराण पुकारि।
मेरे मनमें चुभिरहे, मधुमर्दन मुरहारि ॥२१॥

जगत के सब लोग मुझे समझा समझाकर हार गये और पुराण भी पुकार पुकारकर रह गये, परन्तु मेरे मन में तो मधुराक्षस को मारनेवाले तथा मुरारि (श्रीकृष्ण) ही चुभे हुए हैं।

उन्नीस अक्षर की रचना।

दोहा

को जानै को कहिगयो, राधा सों यह बात।
करी जु माखनचोरिबलि, उठत बड़े परभात ॥२२॥

पता नहीं, राधा से यह बात कौन कह गया कि मैं बलि जाऊँ, बड़े प्रातः उठते ही मैंने देखा है कि किसी ने तुम्हारे यहाँ मक्खन की चोरी की है।'

अठारह अक्षर की रचना।

दोहा

यतन जमायो नेहतरु, फूलत नंदकुमार।
खंडत कस कत जा न अब, कपट कठोर कुठार ॥२३॥

हे नन्द कुमार ! यत्न से जमाए हुए प्रेम-वृक्ष को, फूलते देखकर, कपट के कठोर कुल्हाड़े से उसे काटने में आपका मन दुखी नहीं होता ?

सत्रह अक्षर की रचना

दोहा

बालापन गोरस हरे, बड़े भये जिमिचित्त।
तिमि केशव हरि देहहू, जो न मिलो तुम मित्त।।२४।।

हे मित्र, यदि तुम मिलना नहीं चाहते हो जिस प्रकार बचपन में गोरस चुराया, और बड़े होने पर मन की चोरी की, उसी प्रकार हे श्रीकृष्ण ! मेरी देह को भी अब हरण कर लो।

सोरह अक्षर

दोहा

तुम घरघर मड़रात अति, बलिभुक से नँदलाल।
जाकी मति तुमहीं लगी, कहा करै वह बाल।२५।।

हे नंदलाल ! तुम तो घर-घर पर कौए की तरह मँडराते रहते हो, पर जिसका मन तुम्हीं मे लगा हुआ है, वह बेचारी बाला क्या करे ?

पंद्रह अक्षर

दोहा

जो काहूपै वह सुनै, ढूँढ़त डोलत सांझ।
तौ सिगरो ब्रज डूबिहै. वाके अँसुवन मांझ।। २६ ।।

(कोई एक गोपो श्रीकृष्ण से कहती है कि) यदि वह राधा किसी से यह सुन लेगी कि 'तुम संध्या होते ही किसी अन्य स्त्री को खोजते फिरते हो, तो उसके आँसुओं से सारा ब्रज डूब जायगा ' अर्थात् वह इस समाचार को सुनकर बहुत रोवेगी।

चौदह अक्षर

दोहा

ढूका ढाकी दिनकरौ, टकाटकी अरु रैनि।
यामें केशव कौन सुख, घेरुकरैंपिकबैनि ॥२७॥

तुम दिन में तो लुक-छिपकर और रात में टकटकी लगाकर देखा करते हो हे कृष्ण इसमें भला कौन सा सुख मिलता है ! इसकी तो बहुत सी पिक बैनी स्त्रियां निन्दा ही करती हैं।

तेरह अक्षर

दोहा

कह्यो और को मैं सुन्यों, मन दीनो हरिहाथ।
वा दिनतें बन में फिरै को जानै किहि साथ॥ २८॥

मैंने दूसरों का कहना मान कर, अपना मन श्रीकृष्ण के हाथ में देदिया। उसी दिन से वह मन, न जानें, किसके साथ, बन-बन में घूमता फिरता है।

बारह अक्षर

दोहा

काहू बैरिन के कहे, जी जुरि गयो सनेहु।
तोरेते टूटै नहीं, कहा करों अलेहु॥ २९॥

किसी बैरिन के कहने से, मेरे मन में स्नेह जुड़ गया। अब वह तोड़ने पर भी नहीं टूटता। लो अब मैं क्या करूँ।

ग्यारह अक्षर

दोहा

वे सब सोहैं कालकी, बिसरी गोकुल राज।
मुख देखो लै मुकुरकर, करी कलेवा लाज॥ ३०॥

हे गोकुल राज (कृष्ण) तुम्हें कल की सब शपथें भूल गईं ? तनिक दर्पण लेकर अपना मुँह तो देखो। तुम तो जैसे लज्जा का कलेवा कर गए हो।

दश अक्षर

दोहा

लै ताके मनमानिकहि, कत काहूपै जात।
जब कहूँ जिय जानिहै, तब कैहै कह बात॥३१॥

उसके मनरूपी माणिक्य को लेकर अब किसी और के पास क्यों जाते हो ? इस बात को जब वही किसी तरह जानेगी, तब भला क्या कहेगी ?

नव अक्षर

दोहा

वंचू चुँगै अँगारग जाको कर जियजोर।
सोऊ जो जारै हिये, कैसे जियै चकोर॥ ३२॥

जिसके बल को हृदय में धारण करके, चकोर अंगारों को चुंगा करता है, वही यदि हृदय को जलाने लगे, तो चकोर बेचारा कैसे जीवित रह सकेगा ?

आठ अक्षर

दोहा

नैन नवावहु नेकहू, कमलनैन नवनाथ।
बालन के मनमोहिलै, बेचे मनमथ हाथ॥ ३३॥

हे नये स्नेही ! हे कमल नयन ! तनिक आँखें नीची करो। तुमने स्त्रियों के मनों को मोहित करके, (अपने पास न रख कर) कामदेव के हाथ उन्हें बेच डाला।

सात अच्तर

दोहा

राम काम वशशिव करे, विबुध काम मब साधि।
राम काम बरबस करे, केशव सिय आराधि॥ ३४॥

जिन श्रीराम ने श्रीशंकर जी को काम वश करके, देवताओं के समस्त कार्यों को सम्पन्न किया, उन्ही कामवत् सुन्दर श्रीराम को सीता जी ने, सेवा करके, अपने वश में करलिया।

षट् अच्तर

दोहा

काम नाहिंनै कामके, सब मोहनके काम।
वश कीनो मन सबनको, का वामा का बाम॥ ३५॥

यह कामदेव काकाम नहीं प्रत्युत मोहन (श्रीकृष्ण) का काम है कि उन्हों ने सभी के मनों को वशमें करलिया है। चाहे वह सुन्दर हो या कुरूप।

पंच अच्तर

दोहा

कमलनैन के नैनसों, नैननि कौनो काम ?
कौन कौन सो नेमकै, मिले न श्याम सकाम॥ ३६॥

कमल-नयन (श्रीकृष्ण) के नेत्रों से मेरा कौन काम है ? वह कामी श्याम भला किन-किन से प्रतिज्ञा कर कर के नही मिले ?

चारि अच्तर

दोहा

बनमाली बनमें मिले, बना नलिन बनमाल।
नैन मिली मनमनामिली, बैनन मिली न बाल॥३७॥

बनमाली (श्रीकृष्ण) बन में (श्रीराधा) से मिले। उनके गले में कमलों की सुन्दर बनमाला सुन्दर लगती थी। राधा जी उनसे नेत्रों तथा मन से तो मिलीं, परन्तु बचनों से नहीं मिलीं अर्थात् कुछ बोली नहीं।

तीन अक्षर

दोहा

लगालगी लोपौंगली, लगे लाग लै लाल।
गैल गोप गोपी लगे, पालागों गोपाल ॥ ३८ ॥

'आज मैं इसकी गली अर्थात् लज्जा शीलता को लुप्तकर दूँगा' इस लाग (प्रतिज्ञा) को लेकर श्रीकृष्ण उसके पीछे-पीछे लगे। तब उसने कहा कि—'हे गोपाल! मैं पैरों पड़ती हूँ, मार्ग में बहुत गोप गोपी लगे हुए हैं।'

दुइ अक्षर

दोहा

हरि हीरा राही हरयो, हेरि रही ही हारि।
हरि हरि हौं हाहा ररौं, हरे हरे हरि रारि ॥ ३९ ॥

श्रीकृष्ण ने मेरा मन मार्ग में हरण करलिया। उसी को खोजते-खोजते मै हार गई। तब मैं बार-बार उनसे (हृदय लौटाने के लिए) हा हा खाने लगी अर्थात् बिनती करने लगी कि हे हरि! इस झगड़े को बचाओ (और मेरा हृदत लौटा दो।

एकाक्षर

दोहा

नोनी नोनी नौनि नै, नोनै नोनै नैन।
नाना नन नाना ननै, नाना नूने नैन ॥४०॥

आधा एकाक्षर

दोहा

केकी केका की कका, कोक कीकका कोक।
लोल लालि लोलै लली, लाला लीला लोल ॥ ४१॥

मोर की ध्वनि क्या है चक्रवाक और मेंढकों की ध्वनि भी क्या है। क्योंकि वह नायिका पुत्र प्रेम में भरी हुई घूमती रहती है और उसी की चंचल लीलाओं पर मुग्ध रहती है।

प्रतिपदाअक्षर

दोहा

गो गो गीगो गोगगज, जीजै जीजी जोहि।
रूरे रूरे रेरु रुरि, हाहा हूहू होहि ॥४२॥

हे जलमें डूबते हुए गज। तुम 'गो, गा, की पुकार करो अर्थात् यह कहो कि 'मैं तुम्हारी गऊ हूं'। भाव यह है कि दीन स्वर से पुकारो। प्राणों के भी प्राण उन (श्रीकृष्ण) को देख कर तुम जी जाओगे। उन अच्छे सहायक की रट लगाओ तथा उन्हीं से हा हा खाओ अर्थात् विनती करो, क्योंकि तुम्हें पकड़ने वाला 'हू हू' गन्धर्व है।

युगलपद एक अक्षर

दोहा

केकी केका कीक का, कोक कुकि का कोक।
काक कूक कोकी कुकी कूके केकी कोक ॥४३॥

बहिर्लापिका अन्तर्लापिका

दोहा

उत्तरबरण जु बाहिरै, बहिरलापिका होइ।
अन्तर अन्तरलापिका, यह जानै सब कोइ ॥४४॥

जिस रचना में प्रश्नों का उत्तर बाहर से निश्चित करना पड़े, उसे बहिर्लापिक तथा जिसमें उत्तर रचना के भीतर ही निकल आवे, उसे अन्तर्लापिक कहते हैं।

उदाहरण

बहिर्लापिका

दोहा

अच्छर कौन विकल्प को, युवति बसत कींहि अंग
बलिराजा कौने छल्यो, सुरपति के परसंग ॥४५॥

प्रश्न—(१) विकल्प का अच्छर कौन है ? (२) स्त्री का स्थान शरीर के किस ओर है ? (३) इन्द्र के लिए राजा बलि को किसने छला था ? उत्तर— १) 'वा' (२) वाम (३) वामन।

[ये सभी अच्छर छंद में सम्मिलित नहीं हैं प्रत्युत बाहर से लाने पड़े हैं, अतः बहिर्लापिका अलंकार है]

उदाहरण

अन्तर्लापिका

दोहा

कौन जाति सीतासती, दई कौन कहँ तात।
कौन ग्रन्थ वरण्यो हरी, रामायण अवदात ॥४६॥

प्रश्न—(१) सती सीताजी किस जाति की स्त्री थीं ? (२) उनके पिता ने उन्हें किसको दिया ? (३) उनका हरण किस ग्रन्थ में वर्णन किया गया है ? उत्तर (१) रामा (२) रामाय (३) रामायण।

[इसमें उत्तर के सभी अच्छर छन्द के अन्तर्गत ही आ गये हैं, अतः अन्तर्लापिका अलंकार हैं।]

गूढ़ोत्तर

दोहा

उत्तर जाको अतिदुरयो, दीजै केशवदास।
गूढ़ोत्तर तासों कहत, बरणात बुद्धिविलास ॥४७॥

'केशवदास' कहते हैं कि जहाँ प्रश्न का उत्तर छिपे हुए रूप में दिया जाय, उसे बुद्धिमान लोग गूढ़ोत्तर अलंकार कहते हैं।

उदाहरण—१

सवैया

नखते शिखलौं सुखदैके सिंगारि सिंगार न केशव एक बच्यो।
पहिराइ मनोहर हार हिये पियगात समूह सुगन्ध सच्यो॥
दरसाइ सिरी कर दर्पण लै कपिकुञ्जर ज्यों बहु नाच नच्यो।
सखि पान खवावतही किहिं कारण कोप पिया परनारि रच्यो ४८॥

'केशवदास' कहते हैं कि नायक ने नखसे शिख तक अपनी नायिका का ऐसा शृङ्गार किया कि कोई शृङ्गार बाकी न बचा। फिर सुन्दर हार गले में पहना कर, शरीर में सब प्रकार की सुगन्ध लगाई। तब उसने एक दर्पण लेकर उसकी शोभा दिखलाई। परन्तु जब वह पान खिलाने लगा, तब तो उसने बड़े बन्दर की भाँति अनेक नाच नाचे अर्थात् बड़ी उछल कूद मचाई। यह देख एक सखी पूछने लगी कि 'बताओ तो सखी अपने नायक पर स्त्री क्यों क्रुद्ध हुई ?' [इसका उत्तर—अंतिम चरण के 'पिया पर नारि रूच्यों' में छिपा हुआ है। अर्थात् उसने पान खिलाते समय ऐसे चिन्ह देखे जिससे उसे ज्ञात हो गया कि मेरा नायक पर स्त्री से सम्बन्ध रखता है. इसीसे वह क्रुद्ध हुई]

उदाहरण—२

सवैया

हास विलास निवास है केशव, केलि विधान निधान दुनी में।
देवर जेठ पिता सु सहोदर है सुखही युत बात सुनी में॥
भोजन भाजन, भूषण, भौन भरे यश पावन देवधुनी में।
क्यों सब यामिनि रोवत कामिनि कंत करै सुभगा न गुनी में॥४९॥

'केशव' कहते हैं कि कोई सखी अपनी सहेली से किसी नायिका के बारे में प्रश्न करती हुई पूछने लगी कि 'वह नायिका हास-विलास की तो मानो घर ही है अर्थात् हास-विलास खूब जानती है। संसार में सब प्रकार के केलि विधानों की जानकारी भी उसे है। उसके देवर, जेठ, पिता, तथा सगे भाई सब कोई हैं और मैंने सुना है कि उसको सब प्रकार के सुख हैं उसका घर भोजन, वर्त्तन तथा भूषणों से भरा है और गंगा जैसा पवित्र यश भी उसे प्राप्त है। उसका पति गुणीजनों में उसकी प्रशंसा भी करता है। तब क्या कारण है कि वह स्त्री रात भर रोया करती है? [इसका उत्तर अंतिम चरण के 'सुभगा न गुनी मैं' शब्दों में छिपा हुआ है अर्थात् मैंने समझ लिया है कि 'वह सुभगा (सुन्दर) नहीं है]

उदाहरण—३

सवैया

नाह नयो, नित नेह नयो, परनारि तो केशौ केहूँ न जोवै।
रूप अनूपम भूपर भूर सो, आनँदरूप नहीं गुन गोवै॥
भौन भरी सब संपति दंपति, श्रीपति ज्यों सुखसिंधुमें सोवै।
देव सो देवर प्राण सो पूत सु कौन, दशा सुदती जिहि रोवै॥५०॥

'केशवदास' कहते हैं कि उसका नायक युवा है, स्नेह भी नया है, और वह दूसरी स्त्री की ओर (स्वप्न में भी) नहीं देखता। अनुपम उसकी

सुन्दरता है, पृथ्वी पर राजा के समान आनन्द रूप है तथा के गुण उससे छिपा नहीं है। घर में सब प्रकार की सम्पत्ति भरी हुई है और दोनों ही पति पत्नी लक्ष्मी समेत क्षीर समुद्र में सोने वाले श्री विष्णु भगवान् की भाँति सुख के समुद्र में सोया करते हैं। उसका देवता स्वरूप देवर तथा प्राण जैसा प्रिय पुत्र हैं। फिर ऐसी कौनसी परिस्थिति है, जिसके वश होकर वह सुदती सुन्दर दाँतों वाली) रोया करती है। [इसका उत्तर अंतिम वाक्यांश 'नद सासु दती जेहि रोवै' में निकलता है अर्थात् नन्द और सास कष्ट देती है, इसलिए रोती है।]

एकानेकोत्तर

दोहा

एकहि उत्तर में जहाँ, उत्तर गूढ़ अनेक।
उत्तर नेकानेक यह, बरणत सहित विवेक ॥५१॥

जहाँ एक ही उत्तर में अनेक गूढ़ अर्थ निकल आवें, विवेकी (बुद्धिमान) लोग, उसे 'एकानेकोत्तर' अलङ्कार कहते हैं।

दोहा

उत्तर एक समस्त को, व्यस्त अनेकन मानि।
जोर अन्त के वर्ण सों. क्रमहीं बरण बखानि ॥५२॥

परन्तु वह समस्त उत्तर, अनेक अक्षरों में व्यस्त (सम्मिलित) रहता है, अतः अंतिम अक्षर में आरम्भ से लेकर क्रमशः एक एक अक्षर जोड़ते हुए उत्तर निकालना चाहिए।

उदाहरण

छप्पय

कहा न सज्जन बुवन कहा, सुनि गोपी मोहित।
कहा दास को नाम, कवित में कहियत कोहित ॥

को प्यारो जगमाहिं, कहा व्रत लागे आवत।
को बासर को करत, कहा संसारहि भावत॥
कहु काहि देखि कायर कँपत, आदि अन्त को है शरन।
तहँ उत्तर केशवदास दिय 'सबै जगत शाभाधरन' ॥५३॥

सज्जन लोग क्या नहीं बोते ? गोपियाँ क्या सुनकर मोहित होती हैं ? दास का क्या नाम है ? कवित्त के लिए हितकारी कौन कहलाता है ? संसार में प्यारा कौन है ? घाव लगने पर क्या आता है ? दिन को कौन करता है ? संसार को क्या अच्छा लगता है ? कायर लोग किसे देखकर कँपने लगते हैं ? आदि और अन्त में कौन शरण है ? 'केशवदास' इन सबों का उत्तर 'सबै जगत शोभा धरन' में देते हैं। [यहाँ 'सबै जगत शोभा धरन' वाक्य का अंतिम अक्षर 'न' है। इसी 'न' में इसी वाक्य के आदि से एक-एक अक्षर क्रम से जोड़ते चलिए तो सभी प्रश्नों के उत्तर इस प्रकार निकलेंगे। पहला अक्षर से है उसमें 'न जोड़ा तो 'सन' बना। यह पहले प्रश्न का उत्तर हुआ। इसी तरह 'जन, गन' (कविता के शुभगण) 'तन 'शोन (रक्त), 'भान' (सूर्य), 'धन' और रन' (रण) शब्दों के बनने से सभी प्रश्नों के उत्तर निकल आते हैं। अंतिम प्रश्न 'आदि अन्त का शरण कौन है ?' का उत्तर अन्त का पूरा वाक्य 'सबै जगत शोभा धरन' है अर्थात् सारे संसार की शोभा को धारण करनेवाले श्रीकृष्ण ही आदि अन्त में प्राणियों की शरण हैं।

व्यस्त समस्तोत्तर

दोहा

मिलै आदि के बरणसों, केशव करि उच्चार।
उत्तर व्यस्त समस्तसो, साँकर के अनुहार ॥५४॥

'केशवदास' कहते हैं कि 'आदि के अक्षर-जंजीर की कड़ियों की तरह जोड़ने से जहाँ प्रश्नों के उत्तर बनते जाते हैं, वहाँ व्यस्त समस्तोत्तर' अलङ्कार होता है।

उदाहरण

छप्पय

को शुभ अच्छर, कौन युवति योधन बस कीनी।
विजय सिद्धि संग्राम, रामकहँ कौने दीनी॥
कंसराज यदुबंस, बसत कैसे केशव पुर।
बटसों कहिये कहा, नाम जानहु अपने उर॥
कहि कौन जननि जगजगत की, कमल नयन कंचन बरणि।
सुनि वेद पुराणन में कही, सनकादिक 'शंकरतरुणि' ॥५५॥

शुभ अच्छर कौन है? योद्धों ने किस युवती को अपने वश में कर लिया है? श्रीरामचन्द्र को युद्ध में विजय प्राप्त किसने कराई? 'केशव' कहते हैं कि कंस के राज्य में यदुवंश कैसे निवास करता था? वट से क्या कहते हैं? इसे अपने हृदय में विचारो। कमल जैसे नेत्रवाली तथा कंचन जैसे रंग की समस्त जग की माता कौन कहलाती है? इन सभी प्रश्नों का उत्तर सनकादि ने, वेद और पुराणों के अनुसार 'तरुनि' वाक्य में दे दिया है। [इसमें अंतिम उत्तर 'शङ्कर तरुनि' के सबसे पहले अच्छर 'शं' को लीजिए। यह पहले प्रश्न का उत्तर हुआ। फिर उसमें आगे का अच्छर 'क' जोड़िए यह 'शंक' दूसरे प्रश्न का उत्तर हुआ। इसी तरह से शंकर, शंकरत, 'शंक तरु' और 'शङ्कर तरुणि' उत्तर बनते हैं]

उदाहरण—

कवित्त

कोल काहि धरा धार धीरज धरमहित,
मारयो केहि सूत बलदेव जोर जब सों।
जाँचै कहा जग जगदीश सों 'केशवदास',
गायो कौने रामायण गीत शुभरव सों।

जब अंग अवदात जात वन तातन स्यों,
कही कौन कुन्ती मात बात नेह नव सों।
बाम ग्राम दूरि करि, देव काम पूरि करि,
मोहे राम कौन सों संग्राम कुशलव सों ॥५६॥

वाराह भगवान् ने, धर्म के लिए, धीरज धारण करके किसको धारण किया? श्री बलदेव जी ने, किससे बड़े वेग से सूत को मारा? 'केशवदास' कहते हैं कि जगदीश अर्थात् भगवान से सारा संसार क्या माँगता है? 'रामायण' को किसने शुभ राग से गाया था? जब श्रेष्ठ अंग वाले (युधिष्ठिर) वन भाइयों सहित को जाने लगे थे, तब माता कुन्ती ने प्रेम पूर्वक कौन सी बात कही थी? अपनी स्त्री सीता को निकालकर, देवताओं का कार्य पूर्ण करके, श्रीरामचन्द्र जी किनके द्वारा मूर्छित किये गये थे? इन सबका उत्तर है 'कुशलवसों [इसमें भी पहले उदाहरण की तरह पहले 'कु' शब्द लीजिए तो वह पहले प्रश्न का उत्तर होगा अर्थात् वाराह भगवान् ने 'कु' अर्थात् पृथ्वी को धारण किया। फिर इसमें दूसरा अक्षर श' जोड़िए तो 'कुश' बना, जो दूसरे प्रश्न का उत्तर हुआ अर्थात् श्री बलदेव जी ने सूत को 'कुश' से मारा। इसी प्रकार कुशलव', 'कुशल वसों' (कुशल से रहो), और 'कुश लव सों' अर्थात् कुश और लव के साथ ये उत्तर क्रम से बनते हैं।]

व्यस्त गतागत उत्तर वर्णन

दोहा

एक एक तजि वरण को, युग युग बरण विचारि।
उत्तर व्यस्त गतागतनि, एक समस्त निहारि ॥५७॥

जब उत्तर के पहले दो अक्षर लेकर, आगे का एक एक अक्षर छोड़ते हुए अर्थ निकलता है, तब उसे 'व्यस्त' तथा उसी, को

इसी क्रम से उलटने पर जो अर्थ आता है, उसे 'समस्त' समझना चाहिए।

उदाहरण

कवित्त

कै है रस, कैसे लई लंक, काहे पति पट,
होत, 'केशौदास' कौन शोभिये सभा में जन।
भोगनि को भोगवत, कौने गनें भागवत,
जीते का यतीन, कौन हैं प्रनाम के वरन।
कौन करी सभा, कौन युवती अजीत जग,
गावैं कहा गुणीं, कहा भरे हैं भुजंग गन।
कापै मोहैं पशु, कहा करैं तपी तप, इन्द्र,
जीत जी बसत कहाँ 'नवरंगराय मन' ॥५८॥

रस कितने हैं ? लङ्का कैसे ली ? पीला वस्त्र कैसे होता है ? 'केशव दास' कहते हैं कौन मनुष्य सभा में सुशोभित होता होता है ? कौन भोगों को भोगता है ? भागवत में किसको गिनते हैं ? यतियों ने किसे जीता है ? 'प्रणाम के कौन अक्षर हैं ? सभा किसने बनाई ? कौन स्त्री अजीत है ? गुणी लोग क्या गाते हैं ? साँपों में क्या भरा है ? पशु (हिरन) किस पर मोहते हैं ? तपस्वी कहाँ पर तप करते हैं ? तथा इन्द्रजीत जी कहाँ बसते हैं। 'इन सभी प्रश्नों का उत्तर 'नवरंग-राय मन' निकलता है। [ऊपर दी हुई परिभाषा के अनुसार पहले 'व्यस्त' और फिर समस्त उत्तरों का अर्थ निकालिए। पहले दो अक्षर 'नव' लीजिए। यह पहले प्रश्न का उत्तर हुआ। फिर पिछला अक्षर 'न छोड़ दीजिए और आगे का अक्षर 'र' मिला दीजिए तो वर' बना, यह दूसरे प्रश्न का उत्तर हुआ। इसी क्रम से 'रंग' 'गरा' अर्थात् गम्भीर, 'राय', 'यम' और 'मन' उत्तर निकलते हैं पहले ७ प्रश्नों के

उत्तर हैं। फिर इन्हीं को उलट दीजिए तो 'नमः' 'मय' 'यरा' (जरा = बुढ़ापा), 'राग', 'गर', 'ख' और 'बन' उत्तर किकलते हैं। ये पिछले ७ प्रश्नों के उत्तर हुए अंतिम प्रश्न 'इन्द्रजीत कहाँ बसते हैं' का उत्तर 'नवरंगराय मन' होगा। अर्थात् वह 'नवरङ्गराय' के मन में निवास करते हैं। इसमें आवश्यकतानुसार अनुस्वार छोड़ दिया गया है और 'य' को 'ज' मान लिया गया है, क्योंकि चित्रालङ्कार में यह दोष नहीं माना जाता।]

दोहा

उत्तर व्यस्त समस्तको, दुवो गतागत जान।
केशव दास विचारिके, भिन्न पदारथ आन ॥ ५९ ॥

'केशवदास' कहते हैं कि इसमें व्यस्त और समस्त दोनों अर्थ होते हैं, जिनमें व्यस्त उत्तर गतागत (सीधे-उलटे) होते हैं और समस्त सीधे ही होते हैं परन्तु उनमें पदों का अर्थ भिन्न हो जाता है।

उदाहरण

सवैया

दासनसों, परसों, परमानकी, बातसों बात कहा कहिये नय।
भूपनसों उपदेश कहा, किहि रूपभले, किहि नीति तजै भय ॥
आपु बिषैनसों क्यों कहिये, बिनकाहि भये, छितिपालन के छय।
न्याय कै बोल्यो कहा यम केशव, को अहिमेध कियों जनमेजय॥६०॥

दासों से क्या कहते हैं ? शत्रु से क्या कहना चाहिए ? प्रमाण की बात को नीति पूर्ण ढंग से क्या कहना चाहिए ? राजाओं को क्या उपदेश देना उचित है ? किससे रूप अच्छा लगता है ? नीति को छोड़ देने पर क्या भय है ? अपने से संबंध रखने वालों से क्या कहना चाहिए ? क्या न होने से राजाओं का छय होता है ? 'केशवदास' कहते हैं कि पापियों का न्याय करके यमराज क्या कहते हैं ? तथा सर्पमेध

यज्ञ किसने किया ? इन सभी प्रश्नों का उत्तर 'जनमेजय' में है। [पहले प्रश्नों के उत्तर व्यस्त गतागत ढंग से निकालिए तो पहले प्रश्न का उत्तर 'जन' निकलेगा। दूसरे का 'नमे', तीसरे का 'मेय' (ठीक-ठीक) और चौथे का 'जय'। इसके बाद पिछले प्रश्नों के उत्तरों के लिए क्रम को उलटिए तो 'यज', जमे' अर्थात् यमे या यम-राज का, मैन' और नय' [नीति उत्तर निकलेंगे। फिर समस्तोत्तर भिन्न पदार्थ से निकालिए ता जनमे जय' अर्थात् जन्म धारण करने से जीत होगी तथा 'जनमे जय' ने ये उत्तर निकलेंगे]

विपरीत व्यस्त समस्त

उदाहरण (१)

रोला छन्द

कै ग्रह, कै मधु हत्यो, प्रेम केहि पलुहत प्रभुमन।
कहा कमल को गेह, सुनत मोहत किहि मृगगन॥
कहाँ बसत सुखसिद्ध, कविन कौतुक किहि बरनन।
किहि सेये पितु मातु कहो, कवि केशव 'सरवन, ॥६१॥

ग्रह कितने हैं ? श्रीविष्णु ने मधु को कैसे मारा ? प्रभु के मन में प्रेम कैसे पल्लवित होता है ? कमल का घर कौन सा है ? किसको सुनकर मृग मोहित हो जाते हैं ? सिद्ध लोग आनन्द पूर्वक कहाँ रहते हैं। कवि कौतुक के साथ किसका वर्णन करते हैं ? माता-पिता की सेवा किसने की ? 'केशव कहते हैं कि इनका उत्तर 'सरवन'।

[पहले प्रश्न का उत्तर अंत की ओर से आरम्भ कीजिए तो पहले प्रश्न का उत्तर 'नव हुआ। फिर 'न' छोड़ कर आगे का अक्षर लीजिए तो 'वर' बना। इसी तरह तीसरे का उत्तर 'रस हुआ। अब सीधी ओर से चलिए तो चौथे प्रश्न का उत्तर 'सर' निकला। अब आगे का अक्षर मिलाइए तो 'रव' बना। यह पाँचवे प्रश्न का

उत्तर हुआ। इसी तरह से छठे प्रश्न का उत्तर 'वन' निकला। अंतिम दो प्रश्नों के उत्तरों के लिए पूरे शब्द 'सरवन को पहले उलटिए तो 'नवरस' उत्तर मिलेगा। फिर सीधे पढ़िए तो ८ वें प्रश्न का उत्तर सरवन' अर्थात् श्रवण कुमार निकल आवेगा।]

उदाहरण—२

सोरठा

कंठबसत को सात, कोक कहा बहुविधि कहै।
को कहिये सुर तात, का कामीहित 'सुरतरस' ॥ ६२ ॥

कंठ में कौन सात बसते हैं? कोकशास्त्र अनेक विधि से क्या कहता है? देवताओं का प्यारा कौन कहलाता है? कामी का हितैषी कौन है? उत्तर 'सुरतरस'। [इसमें भी पहले उदाहरण की भाँति उत्तर निकालने पर पहले प्रश्न का उत्तर 'सुर' होगा। दूसरे का 'सुरत' तीसरे का 'सुरतर' (कल्प वृक्ष) और चौथे का 'सुरत रस,। इसमें एक विशेषता और है कि उलटने पर भी यही शब्द बनते हैं]

दोहा

उत्तर व्यस्त समस्त को, दुवो गतागत जान।
एकहि अर्थ समर्थ मति, केशवदास बखान ॥ ६३ ॥

व्यस्त समस्त का उत्तर गतागत (उलटा-सीधा) दोनों प्रकार से किया जाता है। परन्तु 'केशवदास कहते हैं कि जो समर्थ मति अर्थात् प्रतिभा शाली होते हैं, वे ऐसी रचना करते हैं जिसमें उलटा-सीधा दोनों प्रकार से पढ़ने पर एक ही अर्थ निकलता है [ऊपर लिखे सोरठा के 'सुरतरस' उत्तर में यही बात है। दोनों ओर से एक ही अर्थ में पढ़ा जा सकता है]

शासनोत्तर

दोहा

तीनि शासननि को, एकहि उत्तर जानि ॥
शासनउत्तर कहत हैं, बुधजन ताहि बखानि ॥६४॥

जहाँ तीन-तीन बातों क उत्तर एक ही वाक्य में दिया जाता है, वहाँ बुद्धिमान लोग उसे शासनोत्तर अलंकार कहते हैं।

छप्पै

चौक चारु करु, कूप ढार, घरियार बाँध घर।
मुक्तमोल करु खग्ग खोल, सींचहि निचोल बर ॥
हय कुदाव, दै सुरकुदाव, गुणगाव रंकको।
जानुभाव, सिवधाम धाव, धन ल्याव लंकको ॥
यह कहत मधूकरशाहि के, रहे सकलदीवानदबि।
तब उत्तर केशवदास दिय, घरी न, पान्यी, जान, कबि, ॥ ६५ ॥

(१) सुन्दर चौक लगा (२) कुएं से पानी निकाल (३) घड़ियाल बाँध। (४) मोतियों का मोलकर (५) खड्ग निकाल (६) सुन्दर कपड़े को धो। (७) घोड़े को कुदा दे (८) स्वर से धोखा दे (९) रंक का गुण गा। (१०) भावों का जान (११) सबके घर जा (१२) लंका का धन ले आ। इन प्रश्नों को राजा मधुकर शाह ने किया तो सभी सभा चुप हो गई, अर्थात् कोई उत्तर न दे सका। यह देख 'केशवदास' ने (ऊपरलिखे) तीन-तीन प्रश्नों का एक-एक उत्तर 'घरीन' 'पानीन' 'जान न' और 'कविता' में दे दिया। [पहले तीन प्रश्नों का उत्तर है कि छटी नहीं है। अर्थात् चौक पूरने के लिए घड़ी या मुहूर्त नहीं है पानी खींचने के लिए धरी या गराड़ी नहीं है और घड़ियाल बाँधने के लिए घड़ी नहीं है। इस तरह आगे के तीन प्रश्नों का उत्तर 'पानी नहीं है। अर्थात् मोती में आब नहीं है, तलवार पानी-

दार नहीं है और कपड़ा धोने के लिए पानी नहीं है। फिर तीन प्रश्नों का उत्तर, जान नहीं हैं। अर्थात् घोड़ा कुदाने के लिए जानु अर्थात् ज़ंघा नहीं है, वह लंगड़ा है, शब्दों से धोखा देने का मुझे जान अर्थात् ज्ञान नहीं है और रंक मे गुण बताने की मुझे जान कारी नहीं है। अंतिम तीन प्रश्नों का उत्तर 'कवि नही' है। अर्थात् भावों को जानने के लिए मैं कवि नहीं हूँ, सब के घर जाने के लिए भी कवि हूँ, जो सब जगह पहुँच सकूँ, प्रत्येक घर में आदर हो और लंका का धन लाने के लिए भी मैं कवि अर्थात् शुक्राचार्य नहीं हूं जो अपने यजमान रावण से धन माँग लाऊँ।]

प्रश्नोत्तर

दोहा

जेई आखर प्रश्न के, तेई उत्तर जान।
यहि विधि प्रश्नोत्तर सदा, कहै सुबुद्धिनिधान ॥६६॥

जहाँ जो अक्षर प्रश्न के होते हैं, वे ही उत्तर के भी बन जाते हैं। इस तरह की रचना को बुद्धिमान लोग सदा प्रश्नोत्तर अलंकार कहते हैं।

उदाहरण —१

दोहा

को दण्डग्राही सुभट, को कुमार रतिवंत।
को कहिये शशिते दुखी, को कोमल मन सन्त ॥६७॥

कौन सुभट दण्ड ग्राही (कर वसूलनेवाला) होता है? कौन कुमार रतिवंत (प्रेमी) होता है? चन्द्रमा से कौन दुखी कहलाता है? और हे सन्त! कोमल मन वाला कौन होता है? इन प्रश्नों के उत्तर प्रश्न के शब्दों में ही निकल आते हैं। पहले का उत्तर है 'को दण्ड ग्राही' अर्थात् धनुषधारी, दूसरे का उत्तर 'को कुमार रतिवंत' है अर्थात् कोक-

शास्त्र और काम से प्रेम रखने वाला। तीसरे का उत्तर 'को कहिये शशि तें दुखी' निकलता अर्थात् चकवा का हृदय चन्द्रमा से दुखी रहता है! अंतिम प्रश्न का उत्तर 'कोमल मन सन्त' है अर्थात् सन्त कोमल मन वाले होते हैं।

उदाहरण—२

दोहा

कालि काहि पूजै अली, कोकिलकंठहि नीक।
को कहिये कामी सदा, काली काहै लीक ॥६८॥

हे सखी कल किसे पूजा था? किसका कंठ अच्छा होता है? कौन सदा कामी कहलाता है और लीक अर्थात् वास्तव में काली कौन है? इनका उत्तर भी पहले उदाहरण की भाँति प्रश्नों के अक्षरों से ही निकल आता है। पहले का उत्तर है कि 'कलिका हि पूजै अली' अर्थात् हे सखी मैंने कालिका की पूजा की। दूसरे का अर्थ है कि 'कोकिल कंठहि नीक' अर्थात् कोयल का कंठ अच्छा होता है। तीसरे का उत्तर 'को कहिये कामी सदा' अर्थात् चकवा का हृदया सदा कामी-संयोग का इच्छुक रहता है और अंतिम प्रश्न का उत्तर 'काली का है लीक' अर्थात् काजल की रेखा काली है।

गतागत

दोहा

सूधो उलटो बांचिये, एकहि अथ प्रमान।
कहत गतागत ताहि कवि, केशवदास सुजान ॥६९॥

केशवदास कहते हैं कि हे सुजान! जहाँ सीधा और उलटा पढ़ने पर एक ही अर्थ निकलता है, उसे कवि लोग 'गतागत' कहते हैं।

व्यस्त गतागत

दोहा

सूधो उलटो बाँचिये, औरै औरै अर्थ।
एक सवैया में सुकवि, प्रकटत होइ समर्थ ॥१०॥

जहाँ सीधा और उलटा पढ़ने में दूसरे दूसरे अर्थ निकलें उसे व्यस्त गतागत कहते हैं। ऐसे एक भी सवैया में कवि की सामर्थ्य प्रकट हो जाती है।

उदाहरण

गतागत

सवैया

मासम सोह, सजै वन, वीन नवीन वजै, सहसोम समा।
मार लतानि वनावत सारि रिसाति वनावनि ताल रमा॥
मानव हीरहि मोरद मोद दमोदर मोहि रही वनमा।
मालबनी बल केशवदास सदा वशकेल बनीबलमा ।७१॥

तू मा (लक्ष्मी) जैसी सुशोभित है. वन सजा हुआ है नवीन वीणाएं बज रह रही हैं। सोम अर्थात् चन्द्रमा समां (छटा) सहित सुशोभित हो रहा है।

तू मा अर्थात् श्री लक्ष्मी जी के समान सुशोभित है। वन सजा हुआ है, नवीन वीणाएं बज रही हैं और चन्द्रमा युक्त चाँदनी छिटकी हुई हैं। मार (कामदेव) की लता जैसी सुन्दरियां को, वीणा की धोरियां जैसा जड़वत बना अर्थात् उन्हें अपनी राग के आगे तुच्छ बना दे और श्रीताल की बनावट पर रिसा जा अर्थात् क्रोध प्रकट कर (कि वे अच्छी नहीं बनतीं । मनुष्य के हृदय रूपी मोर को आनन्द देने वाले दामोदर (श्रीकृष्ण) उसी वन में हैं। वन की मा अर्थातू शोभा उनपर मोहित हो रही है। मैं बलिहारी जाती हूं केशव अर्थात् श्रीकृष्ण सदा तेरे

वश में ही हैं और दास हैं अतः वही केलि (क्रीड़ा) वनी है अर्थात् क्रीड़ा स्थली है और बलमा (प्रियतम) भी वहीं हैं।

व्यस्त गतागत

सवैया

सैनन माधव, ज्यों सर के सबरेख सुदेश सुवेश सबै।
नैनवकी तचि जी तरुणी रुचि चीर सबै निमिकाल फलै।
तैं न सुनी जस भीर भरी धार धीरऽबरीत सु का न वहै।
मैनमनी गुरुचाल चलै शुभसा बन में सरसी व लसै ॥७२॥

माधव को सैन (शयन, नींद) नहीं आती। सुदेश (सुन्दर) और सुवेश (अच्छे वेशवाली) सभी स्त्रियाँ उन्हें बाण सम ज्ञात होती हैं। उन्होंने जी में तचकर (दुखी होकर. जलकर) नैनव अर्थात् नयी नीति को अपनाया है। अन्य तरुणियों की रुचि (शोभा) और चीर (वस्त्र) उन्हें नीम तथा कालफल (इन्द्रायण) जैसे कटु लगते हैं। वहाँ स्त्रियों की जितनी भीड़ रहती है, उसे क्या तूने नहीं सुना ? वे स्त्रियाँ इतनी सुन्दर हैं कि उन्हें देखकर रीति अर्थात् कुल मर्यादा का वहन कौन कर सकता है ? भाव यह है कि उन्हें देख लेने पर कुलमर्यादा का निर्वाह करना कठिन है— विचलित हो जाने की सम्भावना है। पर वह मैनमणि अर्थात् कामदेव जैसा सुन्दर नायक गुरुचाल (मर्यादा की चाल) पर चलता है और वह शुभ नायक (श्रीकृष्ण) इस समय वन में सरसी (जलाशय) के निकट बैठा है।

इसे उलट कर पढ़ने से जो सवैया बनेगा वह इस प्रकार है :—

सवैया

(४) शैल बसा रसमैनवशोभ सु लै चल चारुगुणी मनमैं।
(३) है बनको सु, ति, री, बर, धीर, धरी. भर, भीसजनीसुनतैं।
(२) लै फल कामिनि, वैसरची, चिरु, नीरुतजीचितकीवनने।
(१) वैससुवेशसदेसुखरेबसकैरसज्योंबधमाननसै ॥ ७३ ॥

वह नायक वैस (वयस वाला) युवा है, सुवेश (अच्छे वेश) वाला है और सदेशु अर्थात् एक ही देश का निवासी है अतः उसे खरे रूप से ऐसा वश में कर ले कि जी का घातक मान नष्ट हो जाय। हे कामिनी ! तू अपनी वैस रची युवावस्था) का फल चिरकाल तक ले। वहाँ के जीव नीरुत (मौन) हैं अतः वहीं तेरे चित की बनेगी अर्थात् मन की अभिलाषा पूर्ण होगी। वह बन एक कोस में है पर हे सजनी सुन ! तू धीर धारण किये रहना। पर्वत पर रहकर, नवीन प्रेममयी शोभा से शुशोभित होना। अब चल। मैंने मनमें यही सुन्दर (समय) समझा है।

आगे केशवदास जी ने कुछ छन्द ऐसे लिखे हैं, जिनसे तरह तरह के चित्र बन सकते हैं नीचे लिखे दोहे से चार प्रकार के जो चित्र बनते हैं वे नीचे दिये जाते हैं—

अथ कपाटबद्ध

दोहा

इन्द्रजीत संगीतलै, किये रामरस लीन।
छुद्र गीत संगीतलैं, भये कामबस दीन॥७४॥

कपाटबद्ध चक्र

इं	द्र	द्र	छु
जी	त	त	गी
सं	गी	गी	स
त	लै	लै	त
कि	ये	ये	भ
रा	म	म	का
र	स	स	व
ली	न	न	दी

गोमूत्रिका

दोहा

इन्द्रजीत संगीत लै, किये रामरस लीन।
क्षुद्रगीत संगीत लै, भये कमावस दीन ॥ ७५ ॥

गोमूत्रिका चक्र

इं	द्र	जी	त	सं	गी	त	लै	कि	ये	रा	म	र	स	ली	न
क्षु	द्र	गी	त	सं	गी	त	लै	भ	ये	का	म	ब	स	दी	न

इसका नाम गोमूत्रिका इसलिए पड़ा कि बैल के मूतते हुए चलने पर जैसी टेढ़ी मेढ़ी रेखाएं बनती है, वैसी इसमें भी बन जाती है—

अश्वगतिचक्र

दोहा

इन्द्रजीत संगीतलै, किये रामरस लीन।
क्षुद्रगीत संगीतलै भये कामबस दीन ॥ ७६ ॥

अश्वगतिचक्र

इं	द्र	जी	त	सं	गी	त	लै
कि	ये	रा	म	र	स	ली	न
क्षु	द्र	गी	त	सं	गी	त	लै
भ	ये	का	म	ब	स	दी	न

[यह घोड़े की चाल के अनुसार पढ़ा जाता है]

चरणगुप्त

दोहा

इन्द्रजीत संगीतलै, किये रामरस लीन।
चन्द्रगीत संगीतलै, भये कामबस दीन ॥७७।

चरणगुप्त चक्र

इं	जी	सं	त	कि	रा	र	ली
द्र	त	गी	लै	ये	म	स	न
चु	गी	सं	त	भ	का	व	दी

[इसमें दोहे का एक चरण लुप्त सा हो जाता है। बीच वाली पंक्ति पर तथा नीचे वाली दोनों पंक्तियों से मिल जाती है]

गतागत चतुर्पदी

रा	का	रा	ज
मा	स	मा	स
रा	धा	मी	त
सा	ल	सी	सु

राकाराज जराकारा माससमास-समासमा ।।
राधामत-तमीधारा-सालसीसु-सुसीलसा ।७८।

(वियोग में) राकाराज (पूनों का चाँद) जराकारा (ज्वर जैसा) मास-मास तथा वर्ष, वर्ष प्रतीत होता है। मति राधा को तभी अर्थात् रात, धारा (तलवार की धार) की भाँति शिर पर शालती

है तो भी वह बड़ी ही सुरीला है। (सभी कष्ट को शान्ति पूर्वक सहलेती है)

त्रिपदी

दोहा

रामदेव नरदेव गति, परशु धरन मद धारि।
वामदेव गुरदेव गति, पर कुधरन हद धारि॥ ७९॥

श्री राम तो पर ब्रह्म हैं पर उनकी गति नरदेव अर्थात् राजाओं जैसी है। उनके सामने परसुधर अर्थात् श्री परशुराम जी भी अपने मद को धारण न किये रह सके। वही शिवरूप हैं, वही गुरुदेव हैं, उनकी गति सबसे परे हैं, वही कु अर्थात् पृथ्वी को धारण करते हैं और वही मर्यादा धारी हैं।

[इस दोहे से नीचे लिखे तीन प्रकार के चित्र बन सकते हैं:—

(१)

रा	दे	न	दे	ग	प	शु	र	म	धा
म	व	र	व	ति	र	ध	न	द	रि
वा	दे	गु	दे	ग	प	कु	र	ह	धा

(२)

राम	वन	देव	तिप	शुध	नम	धा
दे	र	ग	र	र	द	रि
वाम	वगु	देव	तिप	कुध	नह	धा

(३)

राम	नर	गति	सुध	मद
दे	देव	पर	रन	धारि
वाम	गुरु	गति	कुध	हद

चरण गुप्त

दोहा

राजत अँगरस विरस अति, सरस सरस रस भेव।
पग पग प्रति द्युति बढ़ति अति, वयनवमन मतिदेव ॥८०॥
सुवरण वरण सु सुवरणनि रचित रुचिर रुचि लीन।
तन गन प्रकट प्रवीन मति, नवरँग राय प्रवीन ॥८१॥

नवरंग राय का अंगरस (प्रेम) और विरस (मान) दोनों समय में सुशोभित होता रहता है। वह सरस अर्थात् रसीली है और रस-भेव (काम-क्रीड़ा) में सरस (बढ़कर) है। उसकी (नाचते समय) पग पग पर द्युति बढ़ती है उसकी नवीन वय है और उसकी मति देवता में लगी रहती है। उसका वरण अर्थात् रंग सुवरण (सोने) जैसा है और उसकी रुचि (शोभा) में सुवरणरचित (सोने से बने) गहनों में लीन हो जाती है। उसके तन तथा मन से प्रवीण मति प्रकट होती है।

चरणगुप्त (१)

५ ४ ३

रा	ज	त	अँ	ग	र	स	वि	र
स	अ	ति	स	र	स	स	र	स
र	स	भे	व॥	प	ग	प	ग	प्र
ति	द्यु	ति	ब	ढ़	ति	अ	ति	व
य	न	व	म	न	म	ति	दे	व॥
सु	व	र	ण	व	र	ण	सु	सु
व	र	ण	नि	र	चि	त	रु	चि
र	रु	चि	ली	न॥	त	न	म	न
प्र	क	ट	प्र	वी	न	म	ति	न

(२ at right of row 4; ६ at left of row 5; १ at bottom right)

७ ८ ९

(२)

५ ४ ३

रा	जतअँ	ग	रसवि	र
स र ति	अ'तस सभेव॥ द्युतिब	र प ढ़	ससर गपग तिअति	स प्र व
य	न वम	न	मतिदे	व॥
सु व र	वरण रणनि रुचिली	व र न॥	रणसु चितरु तनम	सु चि न
प्र	गटप्र	वी	नमति	न

(६ at left of row 3; २ at right of row 3; १ at bottom right)

७ ८

[इनमें 'नवरङ्गराय प्रवीन' चरणगुप्त हो जाता है और १, २, ३, ४ आदि अंकों द्वारा सूचित अक्षरों को जोड़कर पढ़ने से प्रकट हो जाता है]

चक्रबन्ध

दोहा

मुरलीधर मुख दरसि मुख, संमुख मुख श्रीधाम ।
सुनि मारस नैनी सिखैं, जी मुख पूजै काम ॥८२॥

सर्वतोभद्र

कामदेव चित्त दाहि, वाम देव मित्त दाहि ।
रामदेव चित्त चाहि, धाम देव नित्त ताहि ॥८३॥

इसको कामधेनु भी कहते हैं

अथ कमलबन्ध

दोहा

शम राम रम क्षेम क्षम, शम दम क्रम धम वाम ।
दास काम यम प्रेम वम, यम यम दम श्रम वाम ॥८४॥

अथ धनुषबद्ध

दोहा

परम धरम हरि हेरही, केशव सुने पुरान ।
मन मन जानै नार द्वै, जिय यश सुनत न आन ॥८५॥

धनुषबद्ध

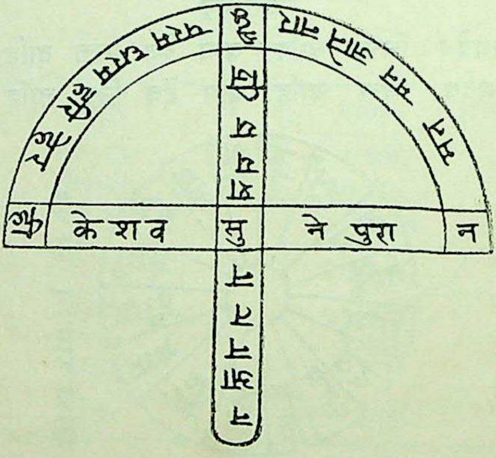

द्वितीय धनुषबन्ध

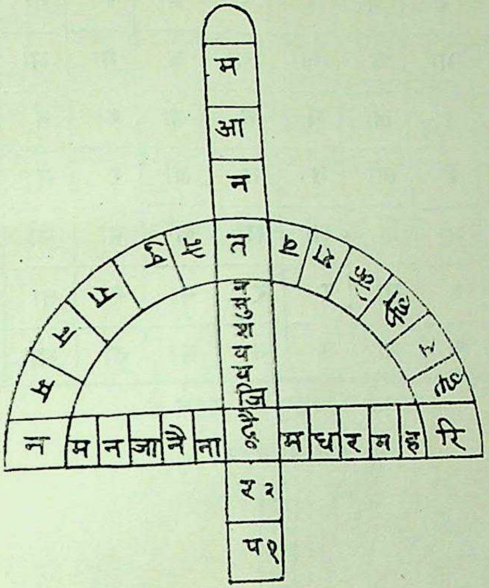

सर्वतोभद्र

अथ सर्वतोभद्र

श्लोक

सीता सी न न सीता सी तार मार रमा रता ।
सीमा कली लीक मासी नरली न नलीरन ॥८६॥

सी	ता	सी	न	न	सी	ता	सी
ता	र	मा	र	र	मा	र	ता
सी	मा	क	ली	ली	क	मा	सी
न	र	ली	न	न	ली	र	न
न	र	ली	न	न	ली	र	न
सी	मा	क	ली	ली	क	मा	सी
ता	र	मा	र	र	मा	र	ता
सी	ता	सी	न	न	सी	ता	सी

इसको कामधेनु भी कहते हैं ।

अथ पर्वतबन्ध

							१							
							या							
							श							
							य							
						रा	गे	सु						
					तौ	हि	त	चौ	र					
				टी	का	म	म	नो	ह	र				
			है	अ	भ	या	मी	त	अ	मी	त			
		नि	को	दु	ख	दे	त	द	या	ल	क	हा		
	व	त	ही	न	द	या	स	त्य	क	हो	क	हा	भू	
ठ	में	पा	व	त	दे	खो	वे	ई	जि	न	रे	खी	क	या
							स							

अथ पर्वतबन्ध चित्र

सवैया

यामय रागेसुतौ हितचौरटी काम मनोहर है अभया ।
मीत अमीतनिको दुख देत दयाल कहावत हीन दया ॥
सत्य कहो कहा झूठ में पावत देखो वेई जिन रेखी कया ।
यामें जे तुम मीत सवै ससवैस तमीमत गेयमया ॥८७॥

अथ सर्वतोमुखचित्र को मूल

सवैया

काम, अरै, तन, लाज, मरै, कब, मानि, लिये, रति, गान, गहै, रुख ।
वाम, वरै, गम, साज, करै, अब, कानि, किये, पति, आन, दहै, दुख ॥

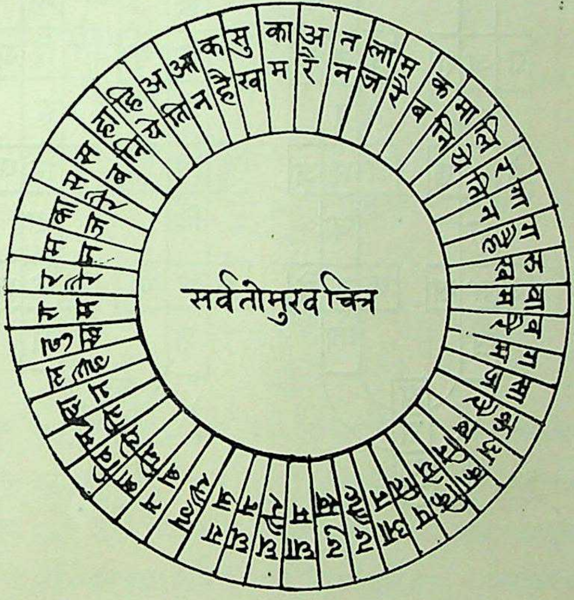

धाम, धरै, धन, राज, हरै, तब, बानि, बिये, मति, दान, लहै, दुख ।
राम, ररै, मन, काज, सरै, सब, हानि. हिये, अंत, आन, कहै, सुख॥८८॥

हारबन्ध

दोहा

हरि हरि हरि ररि दौरि दुरि, फिरि फिरि करि करि आर ।
मरि मरि जरि जरि हारि परि, परि हरि अरि तरि तारि ॥८९॥

हारबन्ध

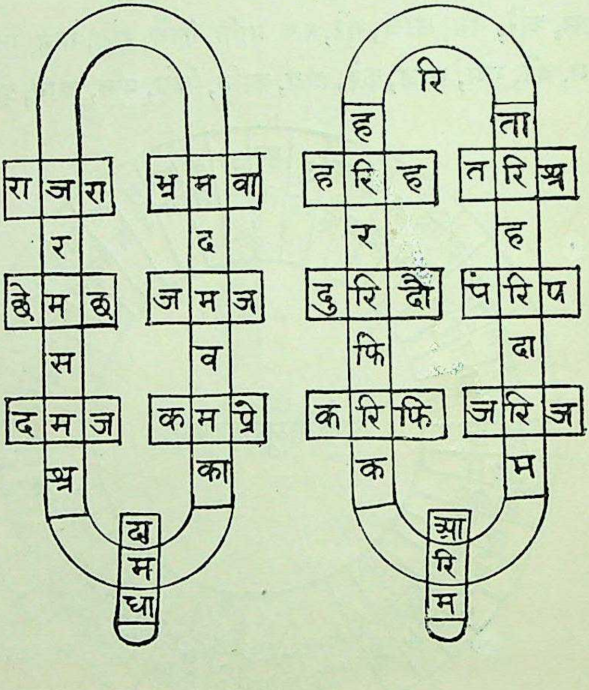

कमलबन्ध

दोहा

राम राम रम छेम छम, सम दम जम श्रम धाम ।
दाम काम क्रम प्रेम वम, जम जम दम भ्रम वाम ॥९०॥

कमलबन्ध

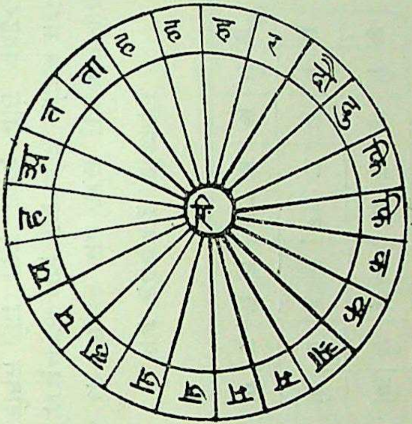

अथ मंत्रीगति

सवैया

राम कहो नर जान हिये मृत लाज सबै धरि मौन जनावत ।
नाम गहो उर मान किये कृत काज जबै करि तौन बतावत ॥
काम दहो हर आनहिये बृतराजै जबै भरि भौन अनावत ।
जाम चहो वर पान पिये धृत आज अबै हरि क्यों न मनावत ॥९१॥

अथ मंत्रीगति चित्र

रा	म	क	हो	न	र	जा	न	हि	ये	मृ	त	ला	ज	स	बै	ध	रि	मौ	न	ज	ना	व	त
ना	म	ग	हो	उ	र	मा	न	कि	ये	कृ	त	का	ज	ज	बै	क	रि	तौ	न	ब	ता	व	त
का	म	द	हो	ह	र	आ	न	हि	ये	बृ	त	रा	ज	ज	बै	भ	रि	भौ	न	अ	ना	व	त
जा	म	च	हो	ब	र	पा	न	पि	य	धृ	त	आ	ज	अ	बै	ह	रि	क्यों	न	म	ना	व	त

अथ डमरूबद्ध चौकीबद्ध

नर सरवर श्री सदातन मन सरस सुर बसि करन।
नरकसि विरसुसकल सुख दुख हीन जीवन मरन॥
नर मन जीवन हीन रदय सदय मति मतहरन।
नरहत मति मय जगत केशवदास श्रीबसकरन॥९२॥

अथ डमरूबद्ध

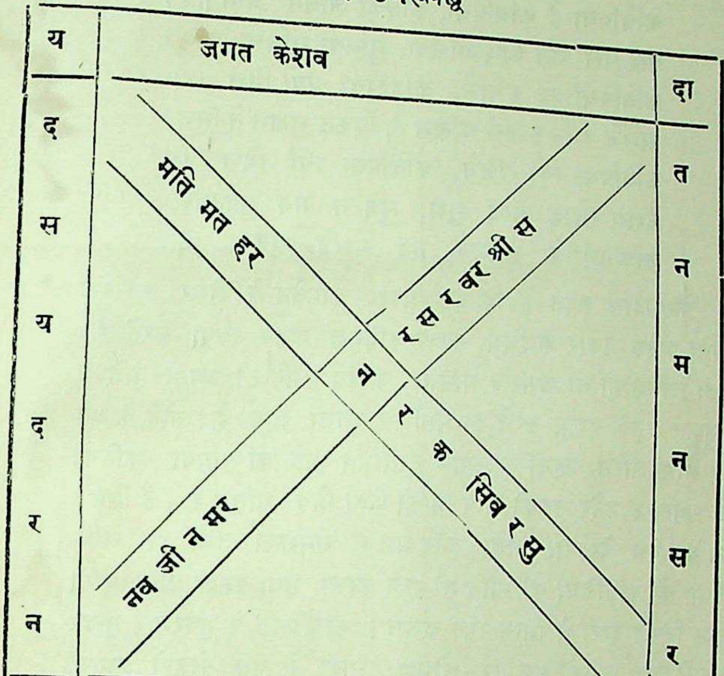

इन दोहों का डमरू भी बन सकता है—

दोहा

काम धेनु दै आदि औ, कल्प वृक्ष परयंत।
बरणत केशवदास कवि, चित्र कवित्त अनंत ॥१॥
इहि विधि केशव जानिये, चित्र कवित्त अपार।
बरणन पंथ बताय मैं, दीनों बुधि अनुसार ॥२॥

सुवरण जटित पदारथनि, भूषण भूषित मान।
कविप्रिया है कविप्रिया, कविकी जीवन जान ॥३॥
पल पल प्रति अवलोकिबो, सुनिबो गुनिबो चित्त।
कविप्रिया को रछिये, कविप्रिया ज्यों मित्त ॥४॥
अनल अनिल जल मलिन ते, विकट खलन तें नित्त।
कविप्रिया ज्यों रछिये, कविप्रिया ज्यों मित्त ॥५॥
केशव सोरह भाव शुभ, सुवरन मय सुकुमार।
कविप्रिया के जानिये, यह सोरह शृङ्गार ॥६॥

केशवदास कहते हैं कि इस प्रकार कामधेनु से लेकर कल्पवृक्ष पर्यन्त अनेक प्रकार के चित्र काव्य कविगण वर्णन किया करते हैं। अतः चित्रकाव्यों को असंख्य मानना चाहिये। मैंने तो अपनी बुद्धि के अनुकूल उनके वर्णन करने का मार्ग भर बतला दिया है। सोने के बने हुए मणि जटित गहनों के समान सुशोभित यह 'कवि प्रिया कवियों की प्यारी है और उसको कवि प्राणों जैसा प्रिय मानते हैं। हे मित्र! इस पल-पल देखना, सुनता और मन से समझता तथा इस कवि-प्रिया' को कविप्रिया की भाँति ही रक्षा करना तथा इसकी आग, पानी तथा विकट दुष्टों से नित्य रक्षा करना। 'कविप्रिया' के सुवरन (सुन्दर अक्षरों युक्त), तथा सुकुमार (कोमल) भावों से युक्त सोलहो प्रभावों को सोलह शृङ्गार के समान मानिए।